बहुरंगी मधुपुरी

राहुल सांकृत्यायन

राहुल प्रकाशन
हैपीवेली, मसूरी

मूल्य ३)

प्रकाशक—श्रीमती कमला सांकृत्यायन, राहुल प्रकाशन, हैपीवेली, मसू
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, बनारस, ४४९१–११

दो शब्द

इस संग्रहमें मेरी २१ कहानियाँ हैं, जिनमें पर्वतीय बिलासपुरियोंके जीवनको अंकित किया गया है। यद्यपि यह कहानियाँ केवल काल्पनिक नहीं बल्कि वास्तविक जीवनके आधारपर लिखी गई है, पर यह भूल होगी, यदि इनमेंसे एक-एकको किसी एक व्यक्तिकी जीवन-कथा मान लिया जाये। मैंने हरेक कहानीके चित्रणके लिये वस्तुतः बहुतसे व्यक्तियोंको लिया है, और ऊपरसे कुछ बातें कल्पित भी दी हैं।

समकालीन चित्रण होते यदि पाठकोंको इससे मनोरंजनके साथ-साथ कुछ और लाभ भी हुआ, तो मुझे इससे संतोष होगा।

अमृतसर
४-५-५४

राहुल सांकृत्यायन

कथा-सूची

		पृष्ठ
१. बूढ़े लाला	...	१
२. हाय बुढ़ापा	...	१४
३. कुमार दुरंजय	...	२७
४. मेम साहब	...	४१
५. महाप्रभु	...	५३
६. लिप्स्टिक	.	६९
७. ठाकुर जी	.	८१
८. रायबहादुर	.	९२
९. गुरु जी	.	१०६
१०. मीनाक्षी	.	१२०
११. गोल्हू	.	१३२
१२. रूपी	.	१४५
१३. राउत	.	१५७
१४. कमल सिंह	.	१७१
१५. डोरा	.	१८६
१६. बिसुन (किशन सिंह)	...	२०१
१७. पेड़ बाबा	...	२१६
१८. सुल्तान	...	२२९
१९. मास्टर जी	...	२४२
२०. चंपो	...	२५५
२१. काळका साहब	...	२६८

१. बूढ़े लाला

(१)

"लाभडालको तो मैंने अपनी आँखोंके सामने बसते देखा"—बूढ़े लालाने सफेद भौंहोंके पीछे गहराईमें छिपी दोनों आखोंको मेरी ओर गड़ाते हुए कहा। सभी देशों और सभी जगहोंके विदेशी भाषाओंसे अपरिचित लोगोंकी तरह, बूढ़े लाला अंग्रेजी नामोंको तोड़-मरोड़कर बोला करते हैं। जब आदमी किसी रोजमर्राके इस्तेमाल होनेवाले शब्दका अर्थ नहीं समझ पाता, तो उसमें अर्थ डालनेके लिए वह तोड-मरोड करनेकी कोशिश करता है। बूढ़े लालाने भी "लव् डेल" को इसी तरह तोड-मरोडकर लाभडाल बना दिया था—वस्तुतः यह बदलना उन्होंने स्वयं नहीं बल्कि किसी या किन्हीं अज्ञात पुरुषोंने किया होगा, जैसे कि उन्होंने मधुपुरीके और भी कितने ही नामोंका पुनः-संस्कार किया है। मधुपुरी क्या हिमालयकी सभी विलासपुरियोंमें इस तरहका हस्त-क्षेप देखा जाता है, जैसे मसूरीमें हैपीवैली जनसाधारणके कंठमें पहुँचकर हापावाला हो गई। लाभडालके हरेक घरको देखकर लोग यही समझते हैं, कि वह सतयुगमें बने हैं, यद्यपि यह मालूम है कि मधुपुरीका सबसे पुराना मकान आजसे १३० वर्ष पहले (१८२० ई० के आसपास) बना था। लाला जिस जगह बैठकर बातें कर रहे थे, उसके पड़ोसमें ही किन्तु ऊपरकी ओर माटी होटल है, जिसके बारेमें वह और भी अच्छी तरहसे कह सकते थे, क्योंकि आजसे ७० वर्ष पहले जब दस-बारह वर्षकी उमरमें वह मधुपुरीमें आये थे, तो अभी मार्टिन होटल पूरी तौरसे बनकर तैयार नहीं हुआ था। वह बतला रहे थे, कि इसका बनानेवाला माटी साहब था, जिसका बाप पासकी रियासत-के जंगलोंका ठेकेदार था। लालाने अपनी बातको और भी पक्का करनेके लिए यह भी बतलाया, कि माटी साहबका बाप पक्का अंग्रेज था, अधगोरा नहीं। बूढ़े लालाका इतिहासका ज्ञान वही था, जिसे उन्होंने अपनी आँखोंके सामने बनते-बिगड़ते देखा था, साल बीतनेके साथ जिसमें स्मृति भी अपनी ओरसे जोड़-घटाव करती आई थी। उन्हें यह नहीं मालूम था, कि पड़ोसकी रियासत-

कि जिस ठेकेदार साहबकी वह बात कर रहे थे, वह जंगलोंका ही ठेकेदार नहीं था, बल्कि वही पहला आदमी था, जिसने गंगा और जमुनाकी पहाड़ी धाराओं-को लकड़ी बहानेके साधनके तौरपर इस्तेमाल किया, हिमालयके इस भाग-में उसीने पहले पहल आलूकी खेतीका प्रचार किया और करीब एक शताब्दी पहले देवदारका बनाया उसका विशाल बंगला अब भी गंगोत्रीके रास्तेपर मौजूद है, जो अब केवल अपनी काठकी मजबूतीके कारण ही खड़ा है। यदि मार्टिन होटलकी तरह वह भी मधुपुरीके किसी कोनेमें खड़ा होता, तो आज से दस वर्ष पहलेतक तो वह जरूर ही लकोदक रहता, चाहे दूसरे महायुद्ध बादके इन पिछले वर्षोंमें, खासकर अंग्रेजोंके चले जानेके बाद, मधुपुरीके ऊपर जो साढ़े-साती शनि-दृष्टि पड़ रही है, उसका शिकार हुए बिना वह भी न रहता।

बूढ़े लाला मीलोंतक फैली और बिखरी मधुपुरीके इस भागके सजीव इतिहास हैं। उनसे पहले उनके चचा यहाँ पहुँचे थे, शायद उसी समय, जब मधुपुरी-निर्माणका काम जोर-शोरसे हो रहा था। हजारों मजदूर काममें लगे हुए थे। उनके खानेकी चीजें बेचनेवाले दूकानदारोंकी जरूरत थी। मधु-पुरीके काफी मकान अंग्रेज स्वयं बना रहे थे, जिनको इमारतोंके बनानेके लिए ठेकेदारोंकी भी जरूरत थी। उस समय अभी भारतके दूसरे लोग चाहे अखबारोंसे ज्यादा सरोकार न रखते हों, लेकिन यहाँके शासक अंग्रेज तो प्रायः एक शताब्दी पहले ही से अपनी भाषामें अखबार पढ़ते थे, जिनमें अनेक बार मधुपुरी जैसे हिमालयके सौन्दर्य भरे स्थानों और खासकर उनकी युरोपियन आबो-हवाकी प्रशंसा छप चुकी थी; इसीलिए जिस तेजीसे लोग गर्मियोंके बिताने-के लिए हिमालयकी ओर दौड़े आ रहे थे, उस तेजीसे मकान नहीं बन पा रहे थे। लाला आजके ५ रु० सेर घीकी शिकायत करते हुए कह रहे थे—"क्या पूछते हैं, रुपयेका ढाई सेर घी बिकता था, जिस भाव गेहूँ भी तो आज नहीं मिलता। मजूरी कम थी, मुनाफा भी कम था, लेकिन उसमें बरकत थी।" पश्चिमी हिमालयकी विलासपुरियोंमें अधिकतर दूकानदार हरियाना केहैं। हरियाना मारवाड़से लगा हुआ और कितनी ही बातोंमें मारवाड़ी व्यापारियों-के-सा ही देश है। मारवाड़ी व्यापारी डोरी-लोटा, मैली-कुचैली धोती लिये

आसाम तथा बर्मातक पहुँच गये, और धीरे-धीरे उनकी तीसरी चौथी पीढ़ी करोड़पति नहीं, बल्कि सालमें करोड़ों रुपया लाभ उठानेवाले धन्नासेठोंके रूपमें परिणत हो गयी। हरियानाके बनिये न उतनी उडान कर सके, और न उतनी सफलता प्राप्त कर सके। कुछ यदि उनमेंसे धनी बन गए भी हैं, तो लोग उन्हे हरियानी नहीं बल्कि मारवाड़ी समझते हैं। बूढ़े लालाके भाई-बन्द, जो इन विलासपुरियोंमे ही नहीं, बल्कि कभी-कभी सडकोंपर अच्छे खासे गॉवोंमें भी अपनी दूकानें खोलकर कारोबार करते हैं, अधिकतर कौरव-पाण्डवके युद्धक्षेत्र—जिसे गीतामें धर्मक्षेत्र कहा गया है—के आसपासके रहनेवाले हैं। मधुपुरीमें शहरके भीतर जिनकी दूकानें हैं, वह तो अब केवल दूकानदारी करते है, लेकिन आसपासके गॉवोंके आनेवाले रास्तोंके छोरोंपर जिनकी दूकानें हैं, वह दूकान भी करते हैं, दूकानकी चीज गॉववालोंको उधार पर भी देते हैं, और कड़े सूदपर रुपया भी लगाते हैं। यह उनकी ही हिम्मत है, जो अब भी बिना कागज-पत्रके हजारो रुपया लोगोंको कर्ज देते है। कुछ सालों पहलेतक पहाड़के लोग अपनी ईमानदारीके लिए बहुत प्रसिद्ध ही नहीं, बल्कि कुख्यात भी थे। एक साहब एक पहाडीकी ईमानदारीकी तारीफ करते हुए यह भी बतला रहे थे, कि अठन्नी दरीपर गिर गई थी। नौकर झाडू देने आया, तो उसे अठन्नीमें हाथ लगाना भी पाप मालूम हुआ। उसने अठन्नी भर दरी काटकर उसे वहीं रहने दिया और सारे कमरेमें झाड़ू लगा दिया। दरीका नुकसान अठन्नीसे कहीं ज्यादाका हुआ था, क्योंकि वह नई और सारे कमरेमें बिछ जानेवाली बडी दरी थी। बूढ़े लाला भी पहाड़ियोंकी इस ईमानदारीके कायल थे। वह भी उनके साथ लेन-देन का व्यापार करते रहे। लेकिन, आजकी बातोंको देख करके निराश थे। कह रहे थे :—

"पिंडतजी, क्या बुझो हो, इब तो ये पहाडी बी चलाक हो गये। किनस्टर का किनस्टर डालडा ढो ले जावें और फिर घीके भाव साढ़े चार रुपया सेर बेच जावें।"

बूढ़े लालाकी बोली अब पूरी हरियानी नहीं, खिचड़ी बन गई है, यद्यपि उनका लिखना-पढ़ना इतना ही है, कि वह अपना बहीखाता स्वयं लिख लेते हैं।

उनकी ऑखोंकी रोशनी अभी उतनी मन्द नहीं है, लेकिन स्मृति अवश्य

मन्द हो चली है और बीच-बीचमें उनकी बातका सिलसिला टूट जाता है, लेकिन याद दिलानेपर फिर उनकी स्मृति जाग उठती है। मधुपुरीके इस मोहल्लेमें अब भी प्रायः रोज बघेरा फेरा डाल जाता है। कुत्तोंसे उसे बहुत शौक है। कह सकते हैं, कुत्ता बघेरेके लिए रसगुल्ला जैसा ही मधुर और आकर्षक है। पिछले तीन वर्षोंमें आठ कुत्तोंको वह ले जा चुका है, इसलिए आजसे साठ-सत्तर वर्ष पहले बूढ़े लालाके कहनेके अनुसार यदि इस जंगलमें बघेरोंके रेवड़ चरा करते हों, तो इसे बहुत बड़ी अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता। लेकिन मधुपुरीके दूसरे बूढ़ोंकी तरह बूढ़े लाला भी कहते हैं—"भगवान्का वरदान है, जिनावरपर हाथ भले ही चिलाया हो, लेकिन आदमीपर बघेरेने आजतक कभी चोट नहीं की।" चाहे फटकर बिखर गये पन्नोंवाली पोथी की तरह बूढ़े लालाके इतिहास-ज्ञानको क्रमबद्ध करना मुश्किल हो, और चाहे उसमें जाने या अनजाने काफी नमक-मिर्च भी लग गई हो, लेकिन यह तो कहना ही पड़ेगा, कि इन जैसोंके उठ जानेके साथ-साथ मधुपुरीके इतिहासके भी बहुतसे पन्ने हमेशाके लिए लुप्त हो जायेंगे। बूढ़े लालाके स्मृति-पटलपर अभी भी आजसे साठ-सत्तर वर्ष पहले इन हरे-भरे वृक्षोंसे ढँके पहाड़ोंमें घूमनेवाले अंग्रेजों और उनकी बीबियोंके चित्र अंकित हैं। वह उनका नख-शिख वर्णन भी कर सकते हैं, लेकिन किसी तूलिकासे कागजपर उतारना तो प्रत्यक्षदर्शी ही कर सकते थे, दुर्भाग्यसे ये लोग हाथसे तूलिका पकड़ना भी नहीं जानते। नये चित्रोंके बनानेकी किसे फिकर है, जब कि मधुपुरीके साठ-सत्तर वर्ष पहले बने मकानोंमें समकालीन कितने ही चित्रोंको हम हर साल कीड़ोंको खाते और वर्षासे सड़ते देखते हैं।

लालाके कहनेके अनुसार उस समयकी मधुपुरी देवताओंकी स्वर्गपुरी थी, जहाँतक खाने-पीने और रोजगार-बातका सम्बन्ध था। वैसे उन्हें भी गरीब काला आदमी होनेसे अंग्रेजोंकी झिड़की खानी पड़ती थी, लेकिन उन जैसे लोगोंने बचपन हीसे पाठ पढ़ लिया था, जिससे उन्हें गोरोंकी ठोकर खानेकी नौबत नहीं आती थी—वह पहले ही पूँछ हिलाकर गुसैल साहबको मना लेते थे। लालाके कहनेसे मालूम होता है, कि हिन्दुस्तानी राजा-महाराजाओं या बड़े-बड़े लोगों की इज्जत को अंग्रेज तीन कौड़ी के समझते थे। तो भी

इससे छोटे पहाड़ी या देशवाली लोगोंको गुस्सा नहीं, बल्कि एक तरहकी आत्मतुष्टि मिलती थी। यह वही लोग थे, जो अपने कम-नसीब देशवासियोंके सामने अकड़कर चलते और बात-बातमें गाली निकालते थे। "छोटे" लोगोंको यह देखकर संतोष होता था, कि इनके ऊपर भी कोई है, जो इन्हें चार गालियाँ सुना सकता है, ठोकरें लगा सकता है, और यह उसके सामने चीं तक नहीं कर सकते।

लाला बतला रहे थे—हम लोग तो मधुपुरीके अंग्रेजोंवाले इस मोहल्लेमें बराबर घूमा करते थे। साहबके आ जानेपर हम बिना जाने-पहचाने भी सलाम करके चार कदम अलग हट जाते थे, और हमें कभी गाली या झिड़की सुननेकी नौबत नहीं आती थी, लेकिन हिन्दुस्तानी बड़े लोग तो डरके मारे इस मोहल्लेमें झाँकते भी नहीं थे। वह बाजारके उधर-ही-उधर रहते थे। उस समय अंग्रेजोंके प्रताप-सूर्यका मध्यान्ह था। लाला बतला रहे थेः इस मोहल्लेमें एक बड़ी कोठी खाली थी। सफाईका क्या कहना, मजाल है कि सड़कपर कहीं एक भी कागजका टुकड़ा या सूखी पत्ती गिरी रहती, ठाँव-ठाँवपर सफाई करनेवाले जमादार तैयार थे, जो तुरन्त सड़कको साफ कर देते थे। ऐसे मोहल्लेमें अगर कोई कोठी मिल जाय, तो उसे नई शिक्षा और संस्कृतिमें अभी-अभी दीक्षित राजा या नवाब क्यों न पसन्द करते! लालाको किसी ऐसे ही राजाने एक खाली कोठीको किरायेपर ठीक करनेके लिए भेजा। कोठीका एजेन्ट भी साहब था, पर पूरा नहीं आधा ही। अधगोरोंको यद्यपि अंग्रेज नीच समझते थे और खाने-बैठनेमें अछूतों जैसा उनके साथ बर्ताव करते थे, तो भी हिन्दुस्तानियोंके मुकाबिलेमें अधगोरे ऊँचे थे। वह अपनेसे ऊपरवालों द्वारा रोज-रोज मिलते अपमानका बदला हिन्दुस्तानियोंके सिरपर निकालते थे। बनियों और ठेकेदारोंके साथ रात-दिन काम पड़ता था, भेंट-पूजा मिलती थी, इसलिए उनकी वह कदर भी करते थे। लालाका वह जवानीका समय था, जब कि राजाके लिए कोठीका किराया करने वह अधगोरे साहब के पास गये। उसने कहा:—

पाँच हजार क्या, बीस हजार साल किराया देनेपर भी मैं इस कोठीको 'काला आदमी' को नहीं दे सकता। वह बड़े गन्दे रहते हैं। हमारी कोठीको

चौपट कर देंगे और हमे उसे फिरसे सफाई कराने और सजानेमे बहुत खर्च करना पड़ेगा। साथ ही एक बार जब काला आदमी कोठीमे बैठ गया, तो साहब लोग इसे किराये पर लेना पसन्द नहीं करेंगे।

लालाको राजा साहबसे सरोकार था, उनके यहाँ सौदा पहुँचाते थे और खासा नफा कमाते थे। साहबके रूखे नही, बल्कि अपमानजनक वार्तालापको उन्होंने राजा साहबसे नही बतलाया। वह यह भी नहीं कह सकते थे, कि कोठी खाली नहीं है, क्योंकि राजा साहब अखबारमे उसका विज्ञापन देख चुके थे। उन्होंने इतना ही बतलाया—शायद कोठीमे कोई आनेवाला है। साथ-साथ यह भी कह दिया, कि सरकार क्यो इस कोठीको लेते है, यहाँ साहेब बडा जुल्म करते हैं, रास्ता चलते लोगोको ठोकर मार देते है, शराब पीकर लोगों-की इज्जत उतारते-फिरते है।

राजा साहब चाहे आधुनिकता मे कितने ही रंगे हों, लेकिन उससे तो आत्मसम्मान घटता नहीं बढता है। उन्होंने लालाके सामने कुछ शेखी जरूर बघाडी, लेकिन अन्तमे उन्हींकी रायको पसन्द किया।

एक वह जमाना था, जब मधुपुरीके इस मोहल्लेमे हिन्दुस्तानी उसी तरह रह सकते थे, जिस तरह कुत्ते-बिल्ली, और एक आज है, जब कि मार्टिन साहब-के सामने बने विशाल होटलमें ही कुछ युरोपियन स्त्री-पुरुष गर्मियोमे दीख पडते हैं। यदि अंग्रेजोंके भरोसे ही मार्टिन होटलको चलना होता, तो उसके चार कमरे भी आबाद न होते। भारतसे अंग्रेजोंके जानेके साथ-साथ दिल्ली एक स्वतन्त्र देशकी राजधानी बनी, और वहाँ देश-देशके राजदूत आकर रहने लगे, जिन्हे दिल्ली के ११६° डिग्री गर्मीवाले दिनोमे मोटर-के चार घटेके रास्तेपर ही अवस्थित मधुपुरी जैसी शीतल-मन्द-सुगंध वायु-जलवाली पुरीका नाम सुनाई पड़ा। वह अपने परिवारोंको लिये यहाँ आकर गर्मियाँ बिताने लगे। बाकी सभी बगले अब हिन्दुस्तानियोंके हैं। अंग्रेजोंमें विभाजनके समय भगदड़ मच गई थी। वह मिट्टीके मोल अपने बगले बेचकर भाग रहे थे। सेठो-महाजनोंके पास लड़ाईकी कमाईके काफी रुपये थे। उन्होंने इन बगलोको खरीद लिया। अंग्रेजोंने जिस भाव अपने बगले बेचे थे, आज छ वर्ष बाद उससे भी कम दामपर बंगले बिकनेके

लिए तैयार है, लेकिन कोई ग्राहक नही मिलता। फर्क इतना जरूर है, कि अंग्रेजोंके हाथसे लिए जानेवाले बंगलोमे नफीस फर्नीचर भरे हुए थे, वह सजे-सजाये थे; जब कि आज मिलनेवाले बँगले छ वर्षोंकी उपेक्षाके शिकार है, उनका प्रायः सारा असबाब लुट या बिक चुका है। बूढ़े लाला मधुपुरीके इस मोहल्लेमे अब अपने भारतीय भाइयोंको विराजते देखकर खुश नही हैं। आज तो हिन्दुस्तानियोंको वह घुडकी या ठोकर खाते ही नही देख रहे है, बल्कि यह भी देख रहे है, कि शुद्ध युरोपियन स्त्री-पुरुष भी अब आशा नही रखते, कि बिना परिचयके कोई हिन्दुस्तानी उनके सामने सिर झुकायेगा—परिचय होनेपर भी सिर नहीं झुकायेगा, बल्कि बराबरके तौरपर हाथ मिलायेगा।

(२)

बूढ़े लाला दस-बारह वर्षके थे, जब कि वह पहले-पहल मधुपुरी आये, यह हम बतला चुके हैं। शायद उन्हे हरियानेके कस्बेका पैतृक अपना घर अब भी याद हो, लेकिन उनके बेटोंने उस घरको कभी नहीं देखा और अब तो लालाकी चौथी पीढी भी आनेके लिए तैयार है। बूढे लालाकी औरस सन्तान होनेका उन्हे इतना ही फल मिला है, कि अधकचरी हरियानी भाषा घरमे अब भी चलती है, जिसका एक कारण यह भी है, कि अपनी जातिमे ब्याह करनेके लिए अब भी उन्हे हरियानासे सम्बन्ध रखना पड़ता है—किन्तु, अब तो कितने ही अपने प्रवासी भाइयोंके परिवारोंमे यहीं ब्याह करने लगे है। बूढे लाला मधुपुरी आनेके दस-बारह वर्ष बाद जवान हुए। अभी घरकी स्थिति ऐसी नही थी, कि इतना जल्दी ब्याह हो जाता। उसके लिए उन्हें और कुछ सालोंतक इन्तिजार करना पडा। तीस वर्षके बाद उनका ब्याह हुआ, दस वर्ष और बीते, जब कि उन्हे पहली सन्तानका सुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्तमान शताब्दीके साथ उनकी जवानी शुरू हुई थी। शिक्षा-दीक्षासे वास्ता न रखते भी लालाके चचा फिर वह स्वय मार्टिन होटलके ठेकेदार थे। खाने-पीनेकी चीजोंके पहुँचानेका काम उन्हे मिला था। सौ-सौ अंग्रेजोंके परिवारोंके रहने लायक होटलका ठेकेदार होना बड़े सौभाग्यकी बात थी। लाला अपने होटलकी तारीफ कर रहे थे—"जार्ज पंचमकी महारानी आकर हमारे होटलमे ठहरी। आज भी उस कमरेको

किरायेपर नहीं दिया जाता, जिसमे महारानी ठहरी थी। उसमे उसका फोटो टॅगा हुआ है।" लालाको यह कलकी वात मालूम होती है, जब कि इगलैंड की रानी और भारतकी साम्राज्ञी मार्टिन होटलमे कुछ समयके लिए ठहरी। उस वक्त होटलकी चारो ओर गोरोका पहरा लगा हुआ था, बड़े-बड़े फौजी अफसर कान्सटेबलकी तरह वहाँ चोकसी कर रहे थे। मोहल्लेके दूसरे कितने ही बंगले भी अग्रेज स्त्री-पुरुषोंसे भरे हुए थे। महारानी परदेमे नहीं थीं, तो भी उनका दर्शन दुर्लभ था—"गोरोकी पॉती लगी हुई थी, भला काला आदमी कैसे वहॉ पहुॅचकर महारानीका दर्शन करता।" लेकिन बूढ़े लाला अपने चचाकी जगहपर मार्टिन होटलके बनिया थे, उन्हे वहॉ रोज चीजें पहुॅचानी पडती थीं। बेरो-खानसामोंसे अच्छा सम्बन्ध रखना ठेकेदारीकी सफलताके लिए आवश्यक था ही। यद्यपि महारानी और उनके खास आदमियोंके लिए बेरे और खानसामेका काम भी अग्रेज ही कर रहे थे, लेकिन तो भी लालाको महारानीके दर्शनका सौभाग्य एक खानसामेकी सहायतासे प्राप्त हो गया।

बूढ़े लालाको बाजारकी सभी चीजे होटलमे पहुॅचानी पड़ती थी। साग-सब्जी, चावल, दूध ही नहीं, बल्कि भक्ष्याभक्ष्य मॉस भी उनके ठेकेमें था। शराब और दूसरी युरोपीय विलासकी चीजे होटल सीधे अग्रेज स्टोरसे मॅगा लिया करता था। उस समय मधुपुरीमे बडी-बडी युरोपियन फर्मोकी दूकाने थीं। अंग्रेज वहाँसे अपने लिए चीज खरीदा करते थे। बूढ़े लालाने मॉसका स्वाद कभी नहीं चखा। पीढ़ियोंसे निरामिषाहारी परिवारके होनेके कारण उसके लिए उनके मनमे एक तरहकी घृणा पैदा हो गई थी, यद्यपि पकते मॉसके मसालेकी सुगन्ध उन्हे बुरी नहीं लगती थी। उनके घरमे भी गरम मसालेका व्यवहार होता था, प्याजकी जगह हीगकी छौक दी जाती थी और पुरखोंकी तरह वह और उनकी बीवी भी यही समझते थे, कि हीग बड़ी शुद्ध चीज है। उन्हें जब बतलाया गया, कि हीग है तो एक पेडकी गोद, किन्तु वह जिस देशसे हिन्दुस्तानमे आती है, वहॉके सभी लोग मासाहारी है, और सो भी अभक्ष्य मॉसके सदा खानेवाले। जिस तरह आजकल घीमें दालदा मिला कर अधिक नफा कमानेका प्रयत्न किया जाता है, उसी तरह वहॉ हीगमे

मिलावट की जाती है और वह मिलावट होती है अभक्ष्य ताजा खूनकी। हींग भी वहाँसे दो-दो, चार-चार सेर ताजी खालमें भर सीकर भेजी जाती है। जिस समय लाला हींगकी महिमाको सुन रहे थे, उस समय उनकी बूढ़ी सेठानी भी पासमें बैठी थीं। उनको तो वहीं कै-सी आने लगी। लेकिन, यह नहीं आशा की जा सकती, कि जिस हींगको पीढ़ियोंसे पुरखा लोग शुद्ध समझकर वरतते आये हैं, उसे वह अब छोड़ देंगे। लालाके घरमें अभी भी लहसुन-प्याजका प्रवेश नहीं है और हींग पहलेकी तरह अबाध गतिसे व्यवहारमें लाई जाती है।

लालाके लिये मांस आजन्म वर्जित रहा, उनकी अगली पीढ़ीने थोड़ा आगे कदम जरूर बढ़ाया, किन्तु शराबके बारेमें लाला अपने पुरखोंके रास्तेपर कायम नहीं रह सके। उनके गुरुने, जो उनकी अपनी ही जातिके थे, समझा दिया था—"यह तो अंगूरका पानी है, इसमें मांस-मछलीवाली कोई बात नहीं है। उसी अंगूरका हम सिरका खाते हैं, जिसकी ही यह शराब है।" इतनी व्याख्याके बाद उन्होंने फिर शराबके गुण बतलाये और जवानीको और भी ताजा करनेके लिए लालाने अपने मुँहसे एक दिन प्याला लगा ही दिया। एक बार लगकर भला प्याला कब छूट सकता था, और सो भी जब कि वह उन्हें मुफ्त मिलता रहता था। मार्टिन होटलमें शराबकी धारायें बहती थीं, एक-से-एक अच्छी शराब—व्हिस्की, शम्पेन, बराडी। बैरे-खानसामोंको भी लालासे कुछ मिलता था और लालाको उनसे। होटलका छोटा मनेजर एंग्लो-इंडियन था, जिसके साथ लालाका अधिक हेल-मेल था, इसलिए जवानीमें ही शराब पीनेमें लाला पूरी तौरसे दीक्षित हो गये। अब बुढ़ापेमें अंग्रेजोंका राज्य नहीं रहा। मार्टिन होटल अब भी है, लेकिन उसके हिन्दुस्तानी मालिकोंमें उतनी साखर्ची नहीं है। ठेका भी अब बूढ़े लालाके हाथ में नहीं है, इसलिए तरुणाईमें ली हुई दीक्षाका अब पूरी तौरसे पालन नहीं हो सकता। तो भी अंग्रेजोंके शासनके भारतसे उठनेतक लालाका अभी वह युग मौजूद था, जिसे लाला चाहे सतयुग न कहते हों, लेकिन सुनहला युग छोड़ और उसे कुछ नहीं कह सकते—सचमुच उस समय सोनेकी वर्षा हुआ करती थी।

लाला ने शराबकी दीक्षा एकान्तमें ली थी और आज भी उसको उन्होंने

उसी तरह गुप्त रक्खा, लेकिन यह हो कैसे सकता था, कि घरवाले बोलचाल या मुँहकी गन्ध से न जान लेते हों, कि लालाने शराब पी है। इस बुरी लतको वह अपने ही तक सीमित रखना चाहते थे, लेकिन सुगन्ध अगली पीढ़ीतक पहुँचकर रही। एक बेटा तो शराबके पीछे पागल हो गया। बापने अलग कर दिया, उस पर भी पीने खानेके पीछे इतना उड़ाया, इतना कर्ज लिया, कि आज वर्षोंसे वह मधुपुरीसे लापता है। कुछ लोग कहते हैं, अब वह नहीं रहा और कुछ लोग कसम खानेके लिए तैयार है, कि अभी भी वह अमुक शहरमें मौजूद है। उसकी बीबीको देखकर अफसोस भी करते है। एक महिला ने हँसते हुए कहा:—ऐसे पति तो अपनी पत्नीको सदा-सुहागिन बना जाते है। चाहे वह वर्षों पहले मर भी गये हो, लेकिन स्त्रीको आजीवन विधवा होनेका डर नहीं रहता। लेकिन, सदा-सुहागको लेकर स्त्रीको भला कैसे संतोष होगा, जब कि घर छोड गये पतिके बिना उसे अपनी चार सन्तानोंके पालन-पोषणका भार उठाना पड रहा हो।

काफी समय हुआ, बूढे लालाने लडकोंको अपने वशमे न देखकर उन्हे अलग कर दिया। उनका खर्च बढा हुआ था, आमदनी थी, लेकिन उसे बाँट देनेपर अपना काम नहीं चलता। शराबमें तो बरबाद होनेका उन्हे डर नहीं था, जब कि मार्टिन होटलके वह ठेकेदार थे और उनके विश्वासके अनुसार भगवान्‌ने दया करके मार्टिन होटलको उनके हाथसे जाने नहीं दिया—सिवाय पिछले छ वर्षोंके, जब कि लाला ७० वर्षसे ऊपरके होकर अब हर वक्त मृत्यु-की बाट जोहते हैं। लोग कहते हैं, चित्रगुप्त परवाना ही काटना भूल गया है। लेकिन, शराबके अलावा एक और भी खर्चीली आदत थी, जिसको लाला-ने तरुणाईमें ही सीखा था। वह था जुआ खेलना। ब्रिजका जुआ पढे लिखे लोग खेलते हैं। अंग्रेज भी उसे खेलते थे, और मधुपुरीमे उसे हिन्दुस्तानी नर-नारी भी खेलते हैं। वह गरीबो या अशिक्षितोका जुआ नही है। कुछ लोगोने तो ब्रिजके खेलको पेशा बना लिया है, और वह उसीके बलपर बडे सुख और ऐशकी जिन्दगी बिताते है! बूढे लाला देशी जूएके एक अच्छे खिलाडी थे। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता, कि वह हमेशा जीतते ही रहते थे, लेकिन, उनके अपने पक्के मकान और थोडी-बहुत दूसरी सम्पत्तिको दिखलाकर लोग कहते हैं, कि यह सब जूएकी महिमा है।

(२)

बूढ़े लालाने दो शताब्दियोंके बहुत बड़े भागको ही नहीं देखा, बल्कि दो-दो महायुद्धोंको अपने सामने लड़े जाते देखा। पहले महायुद्धमें वह जवान थे, जिसका मतलब है, तजर्बा काफी नहीं था। उस समय भी महँगाई हुई थी, उस समय भी उन्होंने कुछ कमाया जरूर था, लेकिन अपने पूरे तजर्बेका फायदा उठानेका मौका उन्हें दूसरे महायुद्धमें ही मिला। इस वक्त व्यापारीको जीतनेवाले जुआड़ीका-सा फायदा हो रहा था। लालाने जूएकी कलाके साथ-साथ चोर-बाजारीकी कलामें भी निपुणता प्राप्त कर ली, और लड़ाईके सालोंमें उन्होंने खूब नफा कमाया। ठेकेदारीके अलावा उन्होंने जो एक छोटी-सी दूकान खोली थी, वह भी चमक उठी। मधुपुरीके दूसरे सेठोंने १०-१०, २०-२० लाखपर हाथ फेरा, वहाँतक पहुँच तो बूढ़े लालाकी नहीं हो पाई, क्योंकि उनकी दौड़ उतनी लम्बी नहीं थी, तो भी काफी पैसा कमाया। दो-एक बातोंमें साखर्ची रखते हुए भी लाला पैसोंकी कीमत जानते थे, और कम-से-कम खर्च करके ज्यादा-से-ज्यादा फायदा कमानेके पक्षपाती थे। उन्हें मकान बनानेकी इच्छा हुई, क्योंकि लड़ाईके समय उनके पास काफी पैसा आ गया था। उन्होंने यह जरूरत नहीं समझी, कि किसी इंजीनियरसे सहायता ली जाय। म्युनिसिपैलिटीमें नक्शा दिये बिना अगर मकान बनानेकी इजाजत मिल जाती, तो उनके भावी मकानका रूप कागजपर न उतरकर जमीनपर ही धीरे-धीरे खड़ा होता। लालाने किसी मामूली ड्राफ्टमैनसे बनवाकर जिस नक्शेको मजूरीके लिए पेश किया, वह भी उनके दिमागकी उपज थी। उन्होंने ठीक दियासलाइयोंके डब्बोंको अपने मकानके लिए आदर्श स्वीकार किया, और छोटी-छोटी कोठरियोंवाले डब्बा जैसे दुमहले मकानको खड़ा कर दिया। साहबोंके राज्यमें चाहे उनका यह महल्ला कितना ही भरा-पूरा था, किन्तु अब तो मार्टिन होटलको छोड़कर बाकी बंगलोंमें सालोंसे न चिराग जला और न पानीका नल खुला। मकानको बूढ़े लालाने बड़ी साधसे बनाया था, अवकाशके एक-एक इंचका उन्होंने सदुपयोग किया, और अधिक-से-अधिक कोठरियाँ बनाईं, जिसमें अधिक-से-अधिक किरायेदार रक्खे जा सकें। अपनी देख-रेखमें बनानेके कारण मकानमें चोर-बाजारसे नहीं बल्कि असली दामपर खरीदे

सीमेंट, लोहे, लकड़ी आदिका बड़ी साखर्चीसे इस्तेमाल किया गया। उसे उन्होंने नकली नहीं बल्कि सकली बंगला बनाया था। किरायेदार यदि यह शिकायत करें, कि इसमें गुसुलखानेका इन्तिजाम नहीं, पेशाब-पाखानेका ठीक प्रबन्ध नहीं, तो बूढ़े लाला यही समझते हैं, कि न लेनेवाले खरीदार ऐसा ही कहा करते हैं। लालाका दियासलाई-महल वर्षोंसे बिना किरायेका पड़ा हुआ है। मिलने-जुलनेवालोंसे कहते हैं:—कोई किरायेदार मिले तो बतलायें। किराया पूछनेपर कहते हैं—सरकारी हिसाबसे पन्द्रह सौ किराया है, हम हजारतक पर भी दे देंगे। यह देखते हुए भी उनको ख्याल नहीं होता, कि इसी मोहल्लेमें २५ सौ किरायेवाली कोठीको इसी साल ५ सौ रुपयेमें दिया गया। एजेन्टने कहा था—कम-से-कम कोठीकी मरम्मत तो हो जायगी। बूढ़े लालाकी कोठी इतनी मजबूत बनी है, कि मरम्मतकी आवश्यकता अभी वर्षों नहीं होगी। लाला बेचारे अपने इस्तेमालमें भी कोठीको नहीं ला सकते, क्योंकि तब म्युनिसिपैलिटीका टैक्स चुकाना पड़ेगा। जिस कोठीको उन्होंने अपने बुढ़ापेका सम्बल समझा था, आखिर वह बेकार खड़ी है, अपने लिये भी उसका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

लाला बूढ़े हो गये, लेकिन उनका मन तो वही है। बुढ़ापेमें भी न वह अपनी पत्नीसे दबते हैं, और न बेटोंकी मजाल है कि उनके सामने "हाँ जी" छोड़ और कुछ कहें। अब भी वह अपने पुराने जीवनको छोड़नेके लिए तैयार नहीं हैं। कह देते हैं—बहुत बीत गई, अब क्या है! खर्च कम करनेके लिए अपने कुछ लड़कोंको अलग कर दिया, लेकिन उससे क्या बननेवाला था! कर्ज बढ़ चला। कड़ा सूद और महाजनी करनेके लिए बनिये बेकार ही बदनाम हैं। मौका लगनेपर दूसरे भी उससे लाभ उठानेमें बाज नहीं आते। मधुपुरीकी कई कोठियों और बंगलोंके मालिक एक खानदानी सामन्त—राजा साहब—हैं, जो साढ़े छ सैकड़ा महीना सूदपर कर्ज देते हैं, और गैरकानूनी न हो जाय, इसके लिये पाँच वर्षका आगेका सूद पहले हीसे जोड़ कर कागज लिखवा लेते हैं। दूसरे राजा और जमींदार जमींदारी जानेके भयसे जिस समय छाती पीट रहे थे, उससे बहुत पहले हीसे राजा साहबने अपने लिये यह रास्ता निकाल लिया था। पिछले दस वर्षोंमें उनके पास कितने ही अच्छे-

अच्छे बगले और कोठियाँ आ गई हैं। यदि मकानोंका मूल्य मिट्टी के बराबर न हो गया होता, तो उनके पास पच्चीसों लाखकी सम्पत्ति है। स्थावर सम्पत्ति पास हो, तो राजा साहबका दरवाजा कर्जके लिए हरेक आदमीके वास्ते खुला हुआ है। बूढ़े लालाका उनसे पुराना परिचय है। पहले भी कर्ज देने-दिलानेमें राजा साहबकी सहायता करते थे, और जरूरत पड़नेपर रियायती दरपर खुद भी पैसे ले लिया करते थे। राजा साहबने बूढ़े लालाके दियासलाईके महल तथा और भी अचल सम्पत्तिके ऊपर कई हजार कर्ज दे रक्खा है, जिसके उतरनेकी अब आशा नहीं है। बूढ़े लाला सचमुच चन्द दिनोंके मेहमान हैं, लेकिन अगली पीढ़ीका क्या उन्होंने ठेका लिया है? आखिर वह भी तो दस-बारह सालकी उमरमें खाली हाथ मधुपुरीमें आये थे!

२. हाय बुढ़ापा !

(१)

शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा हमारे देशमें बहुत अच्छी मानी जाती है। लेकिन, इसका यह अर्थ नही कि सारी दुनिया उसे अच्छा मानती है। जो चीज जहॉ दुर्लभ होती है, उसकी वहॉ कदर होती है। यूरोप और एसियाके ३०° अक्षाश-से उत्तरवाले सर्द देशोमे कमसे कम शीतल वायुको तो कोई पसन्द नहीं करता, चाहे वह मन्द भी हो और सुगन्धित भी। हमारे देशमे भी मधुपुरी जैसे कितने ही नगर और स्थान है, जहॉके लोग शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुको उतना पसन्द नहीं करते, जितना कि मैदान के लोग। आम तौरसे चार-पॉच हजार फुटकी ऊँचाईपर जाडा बहुत दुस्सह नहीं होता और भारतमें श्रीनगर जैसे कुछ ही ऐसे स्थान हैं, जहॉ बर्फ पड़ती है। मधुपुरी जैसी विलासपुरियोंमे पॉच हजार फुटसे ऊपर होनेपर बर्फ पडती है। बर्फ पड़नेका मतलब है, वहॉका जाड़ा अनभ्यस्त मैदानी लोगोंके लिए डरने और घृणा करनेकी चीज है। तो भी, वस्तुतः सालके चार महीने—नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फरवरी—ही ऐसे होते हैं, जब कि मधुपुरीमे सर्दी अधिक और सालमे एक दो बार बर्फ पड़ जाती है। बाकी आठ महीनोंमे मधुपुरीकी शीतल-मन्द-सुगन्ध बयार सचमुच मधुर मालूम होती है। कहा जा सकता है, मधुपुरी सालके आठ महीनोंतक सैलानियोंको संतृप्त करनेके लिए तैयार है। लेकिन सभी महीनों के कदरदान सभी लोग नही होते। बम्बईवाले सेठ सबसे पहले अर्थात् अप्रैलमें यहॉ पहुँच जाते है। आधे मईसे आधे जूनतक उत्तरी भारतके गुणग्राहक लोग मधुपुरीकी ओर दौड़ते हैं। यही वस्तुतः मधुपुरीका सबसे बड़ा सीजन है। बम्बई या गुजरातके सेठ बहुत कम आते है, इसलिए बोहनीके लिए चाहे वे भले ही पसन्द किये जाते हों, किन्तु उनकी सख्या और रहाइशकी कमी मधुपुरीके चिरनिवासियोंको सन्तुष्ट नही कर सकती। मुख्य सीजनकी खुशहाली बहुत कुछ वर्षापर निर्भर करती है। यदि वर्षा किसी तरह खींच खॉचकर जून के अन्त में शुरू हुई, तो सीजन डेढ़ महीने का हो जाता है।

फिर सैलानियो के अनुजीवी मधुपुरीनिवासी उनके लिए दुआ मनाते है।यदि वर्षा ऐन समय पर—जूनके आधेमे—ही आरम्भ हो गयी, तो सब जगह देवको गाली सुननी पडती है।

बड़ा सीजन महीने डेढ महीनेका होता है, लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि उसके बाद मधुपुरी सूनी हो जाती है। पजाबके सैलानी तो वस्तुतः जुलाई-मे ही आते है। इसमे शक नहीं कि गर्मियोमे तापमान जितना ऊँचा उत्तर-प्रदेशमे देखा जाता है, उतना भारतीय पजाबमे नही। बनारस, बॉदा, आजमगढ, लखनऊके लोग जब ११५-११६ डिग्रीकी गर्मीमे लूसे झुलसते है, तो अमृतसर क्या राजपूतानेके भी जयपुर-जोधपुर ११० से नीचे ही रहते हैं। कितने ही दिनों तो बॉदा-बनारस हिन्द-पाकिस्तान के सबसे गरम स्थानो बिलोचिस्तानके सीबी, लासबेला आदिसे होड लगाते है, यद्यपि उन्हे अन्तमे परास्त होना पड़ता है। यह पॉच-सात डिग्री गर्मीकी कमी ही है, जिसके कारण पजाबी सैलानी सीजनके यौवनपर होनेके समय मधुपुरी नहीं पहुँचते। बरसातमे यद्यपि टेम्परेचर उतना ऊँचा नहीं होता, लेकिन उनको शिकायत होती है ऊमस, पसीने और उनके कारण सारे शरीरको अमहोरी—सरसोभरकी फुंसियो का ढॉकना। इसे आप अमीरोका चोचला भी कह सकते हैं। जब लू बर्दाश्त कर ली, तो ऊमससे डरनेकी क्या जरूरत? जो भी हो, जुलाई-अगस्त-मे पजाबी सैलानी ही मधुपुरीमे अधिक दिखाई देते है, जिसका यह अर्थ नहीं कि इस समय फिर सीजन जैसी चहल-पहल हो उठती है। वह नही होती, यह तो इसीसे मालूम है, कि इस समय आपको सीजनमे हजार रुपयेमे मिलने-वाली कोठी दो सौ रुपयेमे मिल सकती है। हॉ, इतना जरूर है कि मधुपुरी इनके आनेके कारण अपने सूनेपनसे बच जाती है। सितम्बरमे जब ये लोग अपने घरोको लौटने लगते है, तो बिहार-बगालवालोंकी बारी आती है। कलकत्तातकके सेठ और बाबू दुर्गापूजा मनाने मधुपुरी पहुँचते है, कुछ दिल्ली और आसपासके लोग भी आ जाते है। प्राकृतिक शोभा-के शौकीनोंके लिए आधे सितम्बरसे आधे अक्तूबरतकका यह सीजन खास तौरसे आकर्षण रखता है। बरसातके सद्यः बीतनेके कारण जमीनपर धूल नही रहती, जिसकी वजहसे हवा और आसमान भी धूसरित नही होते।

गर्मियोंमें जहाँ मैदानी अन्धड के झोकों और सूक्ष्म रजःकणोंके उड़नेसे आसमान मलिन तथा हिमालयकी रुपहली श्रेणियाँ अधिकतर अन्तर्धान रहती हैं, वहाँ इस समय वे प्रायः हर रोज चमकती रहती हैं। सामने के कितने ही नंगे तृणविहीन पहाड जो उस समय आँखोंको अरुचिकर मालूम देते हैं, वे भी हरे मखमलकी पोशाक पहन लेते हैं। संक्षेपमें मधुपुरीके छोटे-बड़े ये चार सीजन हैं, और सबमें एक-सी तो नहीं, पर तो भी माल रोड और दूसरी जगहोंपर नर-नारियोंकी चहल-पहल दिखाई देती है। नाचघरोंमें बाल डांस (यूरोपीय नाच) रोज देखनेको मिल सकते हैं। नवम्बरके आरम्भसे मधुपुरीमें वे ही लोग रह जाते हैं, जो यहाँके सदाके निवासी हैं।

(२)

मधुपुरीमें बसोंके अड्डे अलग और मोटरोंके अलग हैं। मोटर पुरीके नजदीकतक चली जाती हैं। अधिक पैसे खर्च कर सकनेवाले स्टेशनसे इस २२ मीलकी यात्राको मोटर या टैक्सीसे पूरा करते हैं और यदि वे कुछ रुपये और खर्च करनेके लिए तैयार हो तथा रहनेकी कोठीके नजदीकतक मोटर पहुँचती हो, तो लदे-फँदे अपनी कोठीतक पहुँच सकते हैं। वर्षाका सीजन शुरू हो गया था। मोटर के अड्डे पर कुली लोग असबाब के लिए लड़-झगड रहे थे। इसी समय एक महिला अपने दो लड़कोंके साथ उतरीं। ५० गज दूरसे देखने पर वह २५ के आसपासकी मालूम हो रही थीं। उन्होंने चार-पाँच कुलियोंपर अपना असबाब लदवा नौकरको उनके साथ आनेके लिए छोड दिया, यद्यपि उसकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि घोर कलियुगके हो जानेपर भी मधुपुरीमें आजतक कभी नहीं सुना गया कि मालिकके साथ न रहनेपर असबाब लेकर कोई कुली चम्पत हो गया हो। बस, अपना पता दे दीजिये और वह उस कोठीपर पहुँच जायगा। हाँ, यह जरूर है कि मधुपुरी जैसी अंग्रेजोंकी बसायी हुई पुरियोंके मकान और सडकें प्रायः सभी अंग्रेजी नामवाली हैं, जिनका हमारे अशिक्षित कुली और दूसरे लोग भी तोड़-मरोड़कर अपने समझने लायक नाम रख लेते हैं। इसके कारण कभी-कभी मकान ढूँढने-में कुछ गड़बड़ी हो सकती है, लेकिन कोई न कोई पढ़ा लिखा आदमी मिल ही जायगा, जो बतला देगा कि 'स्प्रिंग-डेल' वही है, जिसे तुम लोग गोदामवाली

कोठी कहते हो। महिला अच्छी गोरी, कदसे न अधिक लम्बी, न नाटी, शरीरसे न भारी-भरकम और न दुबली, कुछ मोटी ही कही जा सकती थीं। उनके शरीरपर गुलाबी रेशमी साड़ी बहुत फब रही थी। वर्षा के समय नफीस साड़ी पहनना समझदारीकी बात नहीं थी, लेकिन उन्हें पैदल नहीं चलना था और न आज वर्षा ही हो रही थी।

सामान भिजवाकर वह एक रिक्शेपर बैठीं, उनके साथ उनके बारह-तेरह वर्षके दो चिरजीव भी बैठ गये। रिक्शेवाले हटो-बचो कहते आगे बढ़ने लगे। पहाड़के साथ घूम-घुमानेवाली कोलतार पड़ी समतल सड़कपर वे दौड़ने लगे। रिक्शेवाले तुरत सवारीको उसकी जगहपर पहुँचा कर इस धुन मे रहते है, कि जल्दी ही लौटकर फिर दूसरी सवारी पकड़ें, यद्यपि यात्रियोंकी जरूरतसे दूने रिक्शोंके हो जानेके कारण अब उन्हे भाग्यके हाथमें खेलना पडता है। भद्र महिलाकी वेशभूषा और नख-शिखकी हरेक बनावटसे मालूम होता था, कि वह बड़ी शौकीन है। यह आश्चर्यकी बात थी, कि मधुपुरीकी रूपकी हाट माल रोड और उसकी आसपासकी कोठियोंको छोड़कर वह डेढ़ मील दूर क्यों रिक्शा भगाये जा रही है, जहाँपर उन्हें आधुनिक विलासकी बहुत-सी चीजों और मौकोंसे वञ्चित होना पड़ेगा। लेकिन दूर रहनेमें एक फायदा भी है: बरसातवाले सीजनमें जुलाईसे अक्तूबर तकके चार महीनोंके लिए आपको कोठी चौथाई किरायेपर मिल सकती है। महिला इसे जानती हैं, इसलिए इतनी दूर प्रमोद-भवनमें आकर वह कितने ही सालोंसे ठहरती है। प्रमोद-भवनका नाम सुनकर यह न समझे, कि मधुपुरीमें इसी तरह अब भवनोंके नाम हिन्दुस्तानी हो गये है। इस तरहके नामवाले इक्के-दुक्के ही बगले मिलेंगे। किसी अंग्रेजसे बगला खरीदा और घरके बड़े-बूढ़े या किसी मनचले जवानका नाम प्रमोदप्रसाद हुआ, तो अग्रेजी नाम बदलकर उसे प्रमोदभवन बना दिया गया। म्युनिसिपलिटीमें ऐसे नाम बहुत कम दर्ज हो पाये हैं, आसपासके लोग भी इन नामोंसे बहुत कम ही परिचित हैं। रिक्शा खींचनेवाले तथा दूसरे मजदूरोंके लिए तो अग्रेजोंके समय भी वह बन्दरिया कोठी थी और अब भी है।

प्रमोदवाला प्रमोद भवनके फाटकके भीतर घुसी। दोमंजिला आलीशान

कोठी, जो लड़ाईके समय तीन हजारसे कम किरायेपर नही मिलती, सो भी इसलिए कि मालिक उस समय कोई अंग्रेज था, जिसने किराया बढ़ाया तो जरूर था, लेकिन हिन्दुस्तानी मालिकों जैसा नहीं। दो साहबजादे और उनकी माँ के रहनेके लिए यह कोठी बहुत बडी थी। वह नीचेकी मंजिलके भी सब कमरों का इस्तेमाल नहीं कर सकती थीं। लेकिन इसकी चिन्ता मालिकको होनी चाहिए, किरायेदारको उसकी क्या परवा? महिलाके पहुँचनेके समय तक कुली भी वहाँ पहुँच चुके थे और नौकरसे वे मजूरीके लिए झगड़ रहे थे। डेढ़ मील डेढ़-डेढ़ मन ढोकर ले जानेवाले कुलियोंको वह आठ आना देना चाहता था और वे डेढ़ रुपया माँगते थे। कुछ देरकी झिक-झिकके बाद एक रुपया माँगते हुए वह सरकारी रेट की गवाही देने लगे। लेकिन, नौकर क्या करता? मेम साहबकी जो आज्ञा थी, उससे एक पैसा अधिक देना उसकी शक्तिसे बाहर था। मेम साहबने आते ही कुलियोंको झिडकी देते कहा—

"क्या हम नये आदमी है? तुम लोग नये आदमियोंको तो और भी लूटते होगे।"

कुली बहुत गिड़गिड़ा रहे थे, दयाकी भिक्षाके तौरपर अपनी मजदूरी माँग रहे थे। मेम साहब कुछ देर बाद आठ आनेसे दस आनेपर पहुँची। नौकर सामान ठीक करनेमें लगा हुआ था और मेम साहबको भी जल्दी नहीं थी, इसलिये वह कितनी ही देरतक दस आनेपर अड़ी रहीं। जब सामान ठीक जगहपर रख दिया गया, तो उन्होंने बारह आना देनेके लिए कहकर कोठी-के भीतर पदार्पण किया। चाहे म्युनिसिपेलिटीके कायदेके अनुसार कुलियों-को एक रुपया ही मिलना चाहिए, लेकिन कानून उन्हें मेम साहब जैसोंसे एक रुपया वसूल कराके देनेमें तो समर्थ नहीं था। रिक्शेवाले ऐसे सैलानियोंसे अपरिचित नहीं थे। उन्होंने अपने भाग्यको सराहा, जब कि मेम साहबने माकूल दरमें केवल चार आना ही कम किया।

मेम साहब (प्रमोदबाला) और साहबजादे स्टेशनपर ही चाय-पानी कर आये थे, यहाँ चाकलेटके कुछ टुकड़ोंपर वह मध्याह्नकी प्रतीक्षा कर सकते थे। मेम साहबकी सवारी आनेके साथ ही कोठीके चौकीदारने आकर खुश-खबरी दी, कि मैंने तीन नौकर ठीक कर लिए हैं। कुछ देर बाद तीनों नौकरों-

को भी लाकर उसने सामने कर दिया। मधुपुरीमें अच्छा रसोइया ४० रुपया महीना और खानेसे कममें नहीं मिल सकता, फिर सूखे २५ रुपयेपर अच्छे नौकर कहाँ मिल सकते थे ? प्रमोदबालाको अच्छे नौकरोंकी उतनी अवश्यकता भी नहीं थी। रसोई बनानेके लिए उनके साथ आया चेतू मौजूद ही था, बाकीमें एकको मालीका काम करना था, दूसरेको बरतन मलना और तीसरेको मेम साहबकी हर वक्तकी फर्माइशोंको पूरा करनेके लिए हाथ बाँधकर खड़ा रहना था। दानकी बछियाके दाँत नहीं देखे जाते, इसलिए नौकरोंके बारेमें बहुत माथापच्ची करनेकी अवश्यकता नहीं थी। प्रमोदबालाको कोठीके बाहर लगे हुए फूलोंको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हजारिया डेलिया खूब फूली हुई थी, उसके लाल और चितकबरे फूल बालाको बहुत प्रिय थे और वह वहाँ दोनों डालियोंपर झूम रहे थे। ग्लाडिओला भी रंग-बिरंगका फूला हुआ था। मालीने बतलाया कि सीजनमें रहकर हालमें ही जो परिवार प्रमोदभवन छोड़ गया है उसे फूलोंका बहुत शौक था। यद्यपि फूलोंकी पूरी बहार तो वह देख नहीं सका, लेकिन उसके लिए वह सावधानी जरूर रखता था।

प्रमोदबालाने आस-पासकी कोठियोंके किरायेदारोंके बारेमें पूछा। मालूम हुआ, अभी वह खाली पड़ी हैं। बरसातमें भर जायेंगी, इसकी आशा भी नहीं हो सकती थी, क्योंकि इस सीजनके सैलानी मालरोडके आसपासकी सस्ती कोठियोंको छोड़ इतनी दूर आनेके लिए तैयार नहीं हो सकते थे। तीन कोठी दूर चिरपरिचिता एंग्लो-इण्डियन बुढ़िया अब भी मौजूद थी। यद्यपि वह अब सतयुगकी हो गयी थी, लेकिन मिलनसार थी और प्रमोदभवनके नये किरायेदारका उससे कभी-कभी दिल बहलाव हो जाया करता था। कोठीका चौकीदार मालिककी तरफसे रखा बारहों महीनेका नौकर अपने परिवारके साथ रहता था। भद्रमहिलाने उसकी बीबी और दो सालके बच्चेको देरतक अपने पास आते न देख चौकीदारसे उनके बारेमें पूछा। चौकीदारने बड़े असमंजसके साथ रुआँसे मुँहसे कहा—

"मेम साहब, उसकी न पूछिए, साली हरामजादी भाग गयी। बगलकी कोठीका खानसामा मेरे यहाँ आया-जाया करता था। मैं क्या जानता था आस्तीनका साँप है। हम इकट्ठे सिगरेट पीते, हँसी-मजाक करते। सीजन

खतम होनेको आया, उसी समय एक दिन वह मेरी औरत और साथमें डेढ़ वर्षके बच्चेको भी लेकर भाग गया।"

भद्रमहिलाको चौकीदारके प्रति इससे सहानुभूति पैदा हुई, यह नहीं कहा जा सकता। वह आधुनिक ढगकी शिक्षित और सुसस्कृत महिला थीं। स्त्री पुरुषसे किसी तरह भी कम नहीं है, इसपर विश्वास करनेवाली थीं; इसलिए यदि सूखे मुँहवाले चौकीदारको छोड उसकी हरी-भरी बीबी भाग गई, तो उसने इसमें क्या अनुचित किया? यही उनकी धारणा थी। परन्तु बाहरसे चौकीदार-के साथ समवेदना प्रकट करनी भी थी। वर्षोंसे कोठीमें रहता चौकीदार सदा उनका आज्ञाकारी रहा और मजदूरीके लिए बाला इस आदमीको शिकायतका मौका नहीं देती।

(२)

प्रमोदभवनकी मेम साहब यद्यपि चहल-पहलके स्थानसे दूर एकातवास करती थीं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं था, कि उनको वैसा जीवन पसन्द नहीं था। सूर्योदयके पहले ही वह प्रमोद-भवनसे गायब हो जातीं, तो आधी रातके पहले नहीं लौटतीं। इस समय कभी भी उन्हे कोठीपर देखना असम्भव-सा था। उनके पति एक सरकारी उच्च-अफसर थे। ऐसा विभाग उनके हाथोंमें था, कि घरमें सोने-चाँदीका समुन्दर लहर मारता था, इसलिए मेम साहबके वास्ते पैसोंकी कमी नहीं होनी चाहिए थी। किन्तु पतिदेवता शायद ही कभी मधुपुरीमें देखे जाते। वह मौका मिलनेपर किसी दूसरी विलासपुरीमें चले जाते और मेम साहबको चार महीनेका प्रवास यहाँ अकेले ही बिताना पडता। यह घाटेका सौदा नहीं था, क्योंकि इसके कारण उनकी स्वच्छन्दतामें कोई बाधा नहीं थी। उन्हें हमेशा पतिके बिना आकर रहती देख पड़ोसी कयास दौड़ते—शायद पतिने तलाक दे दिया है। आधुनिक भद्र समाजमें तलाककी प्रथा स्वीकृत की जा चुकी है, इसलिए यह कोई अद्भुत बात नहीं होती। किन्तु वस्तुतः लोगोंका कयास गलत था। पति-पत्नी चाहे एक दूसरेसे महीनों न बोलते हो, और चार-चार महीना वे एक दूसरेसे बिलकुल अलग रहते हो, तो भी वे तलाककी कोई जरूरत नहीं समझते थे, या कहना होगा उनका तलाक मानसिक था।

डेढ़ मीलकी दूरी कोई दूरी नहीं, जब कि डेढ सौ गजपर रिक्शे बराबर मिल सकते थे। यह कोई सीजन नहीं था, जब कि रिक्शावालोंको पूरी मजदूरीकी आशा हो सकती थी, इसलिए वे कम मजदूरीपर भी जाने आनेके लिए तैयार थे। प्रमोदवाला रिक्शेपर अपनी रात्रिचर्या किया करती थी। मालरोडपर डान्सका भी अच्छा इन्तजाम था। वे कभी एक होटलमें और कभी दूसरे होटलमें चली जातीं। ब्रिज खेलनेका उनको शौक था और यह कहनेकी अवश्यकता नहीं कि खेलमें उन्हें हारना ही पड़ता था। प्रमोदभवनमें वे कुछ गम्भीर मुद्रामें देखी जातीं, लेकिन होटलके हालमें उनका चेहरा खिला और मुँहसे हँसीके फव्वारे निकलते रहते। उनके बाल काले और स्थायी लहरोंवाले थे, आँखोंकी भौंहोंपर काली पेन्सिल चली होती। पलकोंको कृत्रिम रूपसे बड़ी किये, मृगनयनी बननेके लोभमें आँखकी कोरोंको काजलकी रेखासे लम्बी किये अपने कदरदानोंसे घिरी रहते समय वे आनन्द-विभोर देखी जा सकती थीं। उनका बालडान्स अभ्यस्त पैरोंका होनेसे, इसमें शक नहीं, सब से बढ-चढकर था। स्त्रियाँ इसके लिए ईर्ष्या करती थीं, क्योंकि अच्छे नाचनेवाले तरुण उनके साथ नाचना ज्यादा पसन्द करते थे।

कुछ सालों पहले मधुपुरीको भी गाधीजीकी हवा लगी थी और सरकारने इसे 'सूखा क्षेत्र' घोषित कर दिया था। उस समय सचमुच ही मधुपुरीका मजा किरकिरा हो गया था। मदिरा बिना भला जीवनमें कोई रस आ सकता है ? इतनी कृपा जरूर उस समय भी थी, कि लोग पूरी बोतल दूकानसे खरीद सकते थे और उसे ले जाकर अपने घरके भीतर पी सकते थे। किन्तु यह भी क्या कोई पीनेका ढग है ? प्रमोदभवनकी बाला तो इसे निरा जगलीपन कहतीं। पिछले साल जब सरकारने मधुपुरीको इस नागपाशसे मुक्त कर दिया, तो सबसे अधिक आनन्द इनको हुआ था। अब उन्हें घरसे पीकर चलनेकी अवश्यकता नहीं थी। वहीं होटलके हालमें शराबकी चुस्कियाँ लेना, ब्रिज खेलना, ठहाका मारना और नाचना उनकी चार महीनोंकी रोजकी दिनचर्या थी। साहबजादे मधुपुरीके यूरोपियन स्कूलमें पढते थे, इसलिए माँके साथ वह ज्यादा दिन नहीं ठहरते। इसके बाद नोकर-चाकर, मेम साहब और प्रमोदभवनका महल ये ही रह गये थे। प्रमोदबालाके पास वैसे हमेशा मेहमान आते रहते थे और कोई-कोई तो

हफ्तों प्रमोदभवनमें देखे जाते, इसलिए अपने वर्गके किसी भी व्यक्तिके न होनेकी एकान्तता नहीं थी।

कितनी ही दूसरी महिलाओंकी तरह प्रमोदबालाको भी खर्चीला जीवन पसन्द था और उसके लिए पतिसे जो पैसा मिलता था, वह अपर्याप्त था, इसलिए उधार लिए बिना कोई उपाय नहीं था। उधारके पैसे लौट जाते थे, किन्तु यदि न लौटाये जा सकें तो इसे प्रमोदबाला अधिक पसन्द करती थी। नये रखे नौकरोंसे हर महीने ही उनका झगड़ा होता था। नौकरोंको कुछ-कुछ भनक लग गई थी और वह महीनेके महीने अपना वेतन ले लेना चाहते थे, लेकिन प्रमोदबाला पाँच-सात देकर बाकीको रोक रखना चाहती थीं। जब आदमी सूखेपर नौकरी कर रहे हो, तो उन्हें खाने-पीनेकी चीजोंके खरीदनेके लिए पैसे तो महीने-महीने मिलने ही चाहिये। उन्हें न बदते देखकर प्रमोदबाला उनपर चोरीका इल्जाम लगा देतीं और पासमें ही अवस्थित पुलिस चौकीमें रिपोर्ट कर देती। पुलिसवाले उनसे चिरपरिचित हो गये थे, इसलिए जानते थे कि यह तनखा न देनेका बहाना है। कभी बीच-बचाव करके वह कुछ दिलवा भी देते, नहीं तो प्रमोदबालाके साफ इनकार करनेपर अपने घरसे खाकर अदालतमें दावा करके पैसा वसूल करनेका भला कौन हिम्मत कर सकता था? उधार और गरीबोंकी मजूरीका पैसा मार लेना प्रमोदबालाके लिए एक मामूली-सी बात थी। लेकिन जब कोई उनके कीमती कपड़ों और जेवरोंको देखता, बोल-चाल तथा उनके बड़े लोगोंके सम्बन्धको जाननेका मौका पाता, तो उसे कैसे विश्वास हो सकता था कि वह गरीबोंका पैसा मारनेकी फिकरमें रहती हैं? कई वर्षोंसे रहते-रहते पुलिस और टोले-मोहल्लेके लोग भी प्रमोदबालाके स्वभावसे खूब परिचित थे, लेकिन कोई उनके रास्तेमें बाधा डालनेके लिए तैयार नहीं था। जो बाधा डालनेकी शक्ति रखता, वह स्वयं प्रमोदबालाके प्याले, चाय या भोजमें शामिल होकर उनका आभारी बन गया था।

(४)

दिनके ९ बजेसे पहले शायद ही प्रमोदबालाकी आँखें खुलती। वैसे नौकरको हुक्म था कि ६ बजे ही पलंगके पास बेड-टी रख जाया करे। अक्सर चाय ठण्ढी हो जाती और उसे फेंकना पड़ता। लेकिन तो भी यह रस्म नियमपूर्वक

अदा की जाती। चारपाईसे उठकर मुँह-हाथ धो लबे शीशेके सामने बैठकर प्रमोदबाला बनाव-शृङ्गार करती, लेकिन अभी यह मामूली बनाव-शृङ्गार था, असली शृङ्गार तो उन्हें ४ बजेकी चायके बाद शुरू करना था, जिसमे कमसे कम दो घण्टे लगते। अब उन्हें बाल-डान्स और ब्रिजकी गोष्ठीके लिए तैयारी करनी थी। उनके दाँत बिलकुल दाड़िम जैसे, किन्तु रगमें सफेद मोतीकी तरह चमकते थे, जिनके लिए बहुत कम लोगोको पता था कि सारी बत्तीसी नकली है। सारे दाँत वैसे टूटे नही थे, लेकिन वे आकार-प्रकार और शकल-सूरतमे अच्छे नही थे, इसलिए प्रमोदबालाने समयसे बहुत पहले ही अपने सारे असली दाँतोको निकलवा उनकी जगह मोतियों जैसी यह बत्तीसी लगवायी थी। उनकी भौंहे काली, किन्तु बहुत मोटी तथा साथ ही छोटी थी। उन्होने रोमोको निकालकर उन्हे बारीक तथा काली पेंसिलकी सहायतासे लम्बी बना लिया था। ओठोंपर कुछ हल्की-सी काले रोमोकी रेखा थी, जिसे दबानेके लिए बालाको बहुत परिश्रम करना पड़ता—मुछन्दर महिलाको कौन पसन्द करने लगा? उनके लिए सबसे बड़ी समस्या थी चेहरेके ऊपर बढ़ती रेखाओंको कम करना। बिना झुर्रीके चेहरेपर काली धारियों द्वारा झुर्री बना लेना आसान है, जिसे रातकी रोशनीमे देखकर कोई समझ भी नहीं सकता कि यह असली है या नकली। लेकिन झुर्रियोंका दबाना बहुत मुश्किल काम था। वह कितनी ही बार पाउडर और रूज लगाती-मिटाती रहती, मुँहको आगे-पीछे या अगल-बगलमे घुमाकर शीशेमे देखती, जब कभी हाथमे न आनेवाली किसी रेखाको वह दबाने या दूसरा रूप देनेमे सफल होती, तो उनका चेहरा खिल उठता। अगर झुर्रियाँ किसी तरह हल्की भी की जाती, तो ठुड्डीके नीचे लटकते मासमे बचनेका कोई रास्ता नही था। कण्ठमे भी चमड़ा सुकड़ा हुआ था। सचमुच उनके लिए शृंगार करना नही, बल्कि एक बड़े दुश्मनसे घण्टो लोहा लेना होता था। बालोकी भलमनसाहतकी वह प्रशसा किये बिना नहीं रहती, क्योंकि नये निकले हुए खिजाबी तेलको एक बार लगा देनेकी जरूरत थी, पाँच मिनटके भीतर वह सूख जाता और गहरे नीले रगके घुँघराले केश तैयार हो जाते। बाला कृतज्ञ होकर ऊँची आवाजमें यह कहे बिना नही रहती—यदि बालोकी तरह ही दूसरे भी भलेमानुस होते। झुर्रियोंके मिटाने-

में बार-बार असफल हो जानेपर उनके मुँहसे एकाएक निकल आता 'हाय बुढ़ापा'। यह शत्रु बुढ़ापेसे परास्त होनेकी स्वीकृति थी। हाय (अफसोस) जवानीके लिए उपयुक्त होता है, इसलिए उनको कहना चाहिये था 'हाय जवानी'। लेकिन जीभपर प्रियसे अप्रियका, मित्रसे शत्रुका नाम पहले आता है। उधर ४ बजेसे ही शीशेके सामने बैठी प्रमोदबाला बुढ़ापेसे लड़नेमें लगी रहती। इस समय उनको अपना सारा जीवन याद आ जाता। पति देवता इंग्लैण्डसे शिक्षा प्राप्त करके आये थे। वह तरुण थे, जिन्होंने खानदानी बे-वकूफीके कारण समयसे पहले ही अपने चेहरेको मूँछ-दाढ़ीसे ढँक लिया था। उस समय भी कदमें नाटे और अवश्यकतासे अधिक मोटे थे। विलायतसे पढ़कर आये सरकारी नौकरको प्रमोदबालाके बैरिस्टर पिता दामाद बनाना क्यों न पसन्द करते? एक अच्छे बैरिस्टरकी नवशिक्षिता लड़कीको तरुण भी पसन्द क्यों न करता? उस समय बैरिस्टर-पुत्री अठारह वर्षकी युवती थी। जवानीमें गदही भी अप्सरा बन जाती है, फिर बालाको तो कुरूप भी नहीं कहा जा सकता था। भौंहें खराब जरूर थी, ओठके ऊपर काले रोम शोभावर्द्धक नहीं थे और चेहरा भी जरूरतसे ज्यादा भारी था, लेकिन इन कमियोंसे लड़नेके लिए प्रमोदबाला षोडशी होनेके साथ ही हथियारबन्द हो चुकी थी। भावी पति अपनी प्रेयसीको उसी समय देख सकते थे, जब कि वह बनावटी शृंगार कर चुकी होती, इसलिए वास्तविकतातक पहुँचना उनके लिए आसान नहीं था। फिर वह केवल एकतरफा ही सौन्दर्यकी माँग तो नहीं कर सकते थे। आखिर वह खुद भी कौनसे परीजाद थे। अभी तनखा भी बहुत बड़ी नहीं थी और न वह कोई आई० सी० एस० थे। धनकी गंगाका, जो स्वराज्यके बाद दूने 'वेगके साथ' उनके सामने बहने लगी थी, अभी कहीं पता नहीं था। आखिर आदमी अपनी स्थितिके अनुसार ही किसी चीजकी माँग कर सकता है। विवाहके बाद पति-पत्नी दोनों ही एक दूसरेसे बहुत सन्तुष्ट थे। इंगलैण्ड लौटे पति अपनी पत्नीसे जिन बातोंकी आशा रखते थे, वह उन्हें प्रचुर परिमाणमें देनेको तैयार थी।

जमाना हमेशा एक-सा नहीं रहता। पति बड़ी तेजीसे आगे बढ़े, अपने सम्बन्धों, व्यवहार और योग्यतासे दूसरोंको पीछे छोड़कर वह अगले ग्रेडमें चले

गये, तनखा और साथ-साथ ऊपरकी आमदनी भी और तेजीसे बढ़ी। अब वह आशा और निराशाके बीचमें पड़े एक साधारण तरुण अफसर नहीं थे। इधर पत्नीसे उनके चार जीवित और चार मृत सन्तानें भी हो चुकी थीं। उमरसे भी ज्यादा बार-बार माता बननेने उनके स्वास्थ्यपर प्रभाव डाला था। पति देवताके लिए वह फीकी मालूम होने लगीं। दुर्व्यवहारको सहन करनेकी आदत पत्नीमें नहीं थी, इसलिए वह इसका विरोध करती, लेकिन असली प्रभुता तो पैसेकी होती है, जो पति के हाथमें थे, पत्नीको पतिकी कृपापर निर्भर रहना था। कुछ वर्षोंतक मालूम होता रहा, कि दोनों विवाह-विच्छेद कर लेंगे, लेकिन आखिर वह इस स्थितिको पारकर गये। दोनोंने भलीभाँति विचार कर देख लिया कि दिनपर दिन सयाने होते चारों बच्चे तलाककी आज्ञा नहीं देते। तलाकके बाद बच्चोंका क्या होगा? दूरदर्शिताका अधिक श्रेय वस्तुतः पतिको देना चाहिये, जिन्होंने अपने भावोंसे अधिक अपने बच्चोंके भविष्यका खयाल किया। पत्नी धीरे-धीरे जबानदराज हो चुकी थीं। रात-दिनकी किचकिच घरकी शान्तिको भग किये रहती थी। पतिका प्रस्ताव अन्तमें पत्नीने भी स्वीकार किया। तलाक दे देनेपर भी आखिर पत्नीको दूसरा ब्याह करनेकी न इच्छा थी और न उसकी सम्भावना थी। रातकी रोशनीमें सुन्दरी और तरुणी देखी जानेवाली वह दिनके उजालेमें अब कौड़ीकी तीन भी नहीं रह गयी थीं। तलाक ले लेनेपर शायद अपने बच्चोंसे वंचित रह थोड़ेसे खर्चके पैसोंपर गुजारा करना पड़ता, जब कि पतिके साथ बाहरसे पुराने सम्बन्धको स्थापित रखनेपर उन्हें यह सुभीता तो सामने ही दीख रहा था, जो कि चार महीने मधुपुरीमें उनके बड़े आरामसे गुजरते। कभी-कभी उनके मुहसे 'हाय बुढ़ापा' निकल आता जरूर, लेकिन इसके लिए वह अपने पतिको जिम्मेवार नहीं ठहरा सकती थीं। अब दोनोंका जीवन दो स्वतन्त्र धाराओंमें बह रहा था, दोनों पूर्ण स्वतन्त्र रहकर जीवनका आनन्द ले रहे थे, किन्तु समाजकी दृष्टिमें अभी भी दोनों एक दूसरेसे उसी तरह सम्बद्ध थे। प्रमोदबालाको ऐसा जीवन बिताते बारह वर्ष बीत चुके थे। जीवनके सभी सुख-साधन उनके लिए काफी सुलभ थे, लेकिन इस साल उन्हें पहली बार अनुभव होने लगा, कि शायद अब इतने दिनोंसे किया जाता आ रहा उनका अभिनय अधिक दिनोंतक नहीं चल सकेगा। वह चाहे कितने ही परिश्रमपूर्वक

बुढ़ापेके ऊपर काली चादर तानना चाहतीं, लेकिन रातकी रोशनीमें भी परखने-वाली आँखोंसे वह छिपा नहीं रह सकता था। पान-गोष्ठीकी उदारता भी अपेक्षाकृत तरुण पुरुषोंको अपनी तरफ खींचनेमें सहायक नहीं होती थी और पासकी मेजोंपर बैठी तरुणियाँ अगर खुलकर नहीं तो आँखोंके कोरसे प्रमोदबालाके अभिनयपर कठोर व्यंग करती थीं।

३. कुमार दुरंजय

दुनियाके बहुतसे भागोंमें सामन्तवादको खतम हुए बहुत समय बीत गया। लेकिन भारतमे उसे अग्रेजोंने बहुत पाल-पोसके रखा था। भारतकी स्वतन्त्रताके बाद उसका टिकना सम्भव नहीं था, जब कि असली राजशक्ति अग्रेज थैलीशाहोंके हाथसे निकल कर भारतीय थैलीशाहोंके हाथमे आ गयी। भारतके सबसे बड़े थैलीशाह जिस राजस्थानसे आते थे, वहाँ अपनी प्रजापर निरकुश शासन करनेके लिए अग्रेजोने राजाओंको छोड रखा था। पूजा-भेंटके सहारे अपना कुछ काम थैलीशाह जरूर बना लेते थे; लेकिन आखिर वहाँ कानून नहीं बल्कि एक आदमीका मनमाना राज्य था। कमसे कम वहाँ पूँजी लगाकर कारखाना खोलनेके लिए तो कोई सेठ तैयार नही था, इसलिए भारतके वास्तविक शासक भारतीय थैलीशाहोंकी आँखोमें ये निरकुश गुड़िया-राजा काँटेकी तरह खटकते थे। लेकिन, जबतक अग्रेज यहाँ थे तबतक ही नही, उनके चले जानेके बाद भी थैलीशाहोंमे इतनी शक्ति नही थी, कि केवल अपने बलपर इन काँटोंको रास्तेसे दूर फेंक सकते। इसके लिए उनको चिन्ता करनेकी अवश्यकता नहीं थी, क्योंकि अग्रेजोंके शासनके समय ही देशी राज्योंकी प्रजाने अनेक बार गोलियाँ खायी, तो भी अपने संघर्षको नहीं छोड़ा। उन्हींके डरके मारे अन्तमें राजाओंको अपनी निरकुशता नही, बल्कि अधिकारको भी छोड़ना पडा। अब वह सरकारके पेन्शनर भर रह गये, तो भी गरीब प्रजाकी कमाईपर फलाहार खूब किया जा रहा है। सैकड़ों वर्षों पुरानी रियासतोंको यद्यपि मृत्युकी पीडा झेलनेकी अवश्यकता नहीं पड़ी, उनका हार्ट फेल कर गया, लेकिन शान्तिपूर्ण लूट खूब हुई। कहीं होशियार राजा हुए तो उन्होंने अपने निजी जेवर और पैसेको ही नहीं, बल्कि रियासती खजानेको भी झाड-बुहारकर साफ कर दिया, बेकारकी इमारतोंको छोडकर बाकी सभी इमारतोंको निजी सम्पत्ति बना लिया। और जहाँ नाबालिग या मूर्ख राजा हुए, वहाँ चार्ज लेनेवालोंने "लूट सके सो लूट" का नारा लगाकर छीछड़े भर छोड दिये। कितनी ही जगहोंमें तो इन नये

स्वामियोंने अपने जुर्मका कोई पता न रहने देनेके लिए ऐतिहासिक पुराने कागजोंकी होली खेली—इस होलीमें कितने ही ऐतिहासिक महत्त्वके दस्तावेज सर्वदाके लिये नष्ट हो गये। चलते-पुर्जे राजाओंने या अपने नमकहलाल नौकरोंकी सहायतासे साधारण अन्नदाताओंने भी राज्यकी अधिकसे अधिक सम्पत्ति अपने हाथमें करनी चाही। कितनोंने हजारों एकड अच्छे खेतोंके अपने फार्म बना लिये और ट्रैक्टर मँगाकर उनमें खेती करनी शुरू कर दी। सरकार तो किसानोंके हकका वहीं ख्याल करती है, जहाँ उसे उसके लिये मजबूर होना पडता है।

कुमार दुरजय इसी तरहके एक रियासती कुमार थे। उनके पिता—भगवान् भला करे, १९४७ की आँधी देखनेके लिए रह नहीं गये, नहीं तो रियासतके साथ उनका भी हार्ट फेल हो जाता—भारतके सबसे बड़े निरंकुश तानाशाह थे, जिनकी कीर्ति-सुगन्ध दूरतक फैली हुई थी, भले ही जुकामके मारे अंग्रेज प्रभुओंकी नाक-तक वह नहीं पहुँचती थी। उन्होंने खून करवाये, देशमें वावेला भी मचा, लेकिन अंग्रेज तो अपने ऐसे अनन्य भक्तोंके सात नहीं साठ खून माफ करनेवाले थे। काफी बड़ी रियासत होनेपर भी महाराजका खर्च उतनेसे नहीं चलता था और वह सेठोंसे कर्जा लेते रहते थे। अपने हरममें नयी सुन्दरियोंके डालनेका तो उन्हें मर्ज-सा था। जब पहाड़ोंमें उनकी सवारी आती, तो अखबारों और शहरोंसे बहुत दूर पिछड़े युगमें रहनेवाले भोलेभाले पहाड़ियोंमें भी आतंक छा जाता। बहू-बेटियोंकी हिफाजत करो, ..वाला राजा आया है। लेकिन इस तरह बहू-बेटियोंकी रक्षा होनेवाली नहीं थी। राजा स्वयं हर जगह लूट करने नहीं जाता। उन्होंने अपने कितने ही रंगरूटी अफसर छोड़ रखे थे, जो राज्य और बाहरकी सुन्दरियोंको जमा करनेका काम किया करते थे। प्रातःस्मरणीय मर्यादापुरुषोत्तम रामके पिता प्रातःस्मरणीय मर्यादापुरुषोत्तम दशरथकी सोलह हजार रानियाँ थीं। इन महाराजाकी रानियोंकी संख्या सोलह हजारतक तो नहीं पहुँची थी, लेकिन हजारसे ऊपर जरूर थी। चार दर्जनसे ऊपर तो उनकी राजकुमारियाँ थीं और राजकुमारोंकी भी एक पलटन बन सकती थी। इन्हींमेंसे एक हमारे चरित्रनायक कुमार दुरजयसिंह भी थे। देशों और भाषाओंके लिए तो वैकुण्ठवासी

एकके बाद दूसरी टेढ़ी-मेढ़ी वाहियाँ फूट निकलती हैं, और देखनेमें कुछ ही सौ गजोंपरके सामने स्थानपर पहुँचनेके लिए मील-मीलका चक्कर काटना पड़ता है। अंग्रेजोंने सवा सौ वर्ष पहले जब मधुपुरीको अपने रहनेके लिए चुना, तो उस समय वह शीतलतासे आकृष्ट हुए थे। छ-सात हजार फुट ऊँचे पहाड़ों-पर शीतलताके साथ उस समय घना जंगल भी था, जिसके कारण इसका सौन्दर्य दूना हो गया था। चार चाँद लगाते इसके बहुतसे स्थानोंसे सनातन हिमसे आच्छादित शिखर-पंक्तियाँ दिखलायी पड़ती थीं। अंग्रेज प्रायः अपने बंगलेको ऐसे स्थानपर बनाना चाहते थे, जहाँसे हिमालय श्रेणियाँ अधिकसे अधिक दिखाई पड़े। लेकिन जैसा कि आम तौरसे होता है, पहलेवाले बाजी मार ले गये और पीछे आनेवालोंको जैसे-तैसेपर सन्तोष करना पड़ा। अंग्रेज दूकानों और बाजारोंसे मीलों दूरके स्थानोंको अधिक पसन्द करते थे। वहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य भी अधिक था और काले लोगोंकी परछाईं भी कम पड़ती थी। एकान्तकी खोजमें कितने ही अंग्रेजोंने ऐसी जगहोंमें भी अपने बंगले बनाये, जहाँसे हिमालय श्रेणियाँ नहीं दिखायी पड़तीं। दूसरे नम्बरके बंगले थे, जहाँसे हिमालय नहीं तो कमसे कम बीस मील दूर नीचेकी समतल भूमि दिखाई पड़ती थी। तीसरी श्रेणीके बंगले इन दोनोंसे वञ्चित थे और हरियालीसे आच्छादित किन्हीं दो पर्वतवाहियोंमें पड़ते थे। एक ऐसा ही बंगला कुमार दुरंजयके भाग्यमें पड़ा था। मधुपुरीमें बंगले बनने यद्यपि सवा सौ वर्ष पहले शुरू हुए, लेकिन उनकी बहुतायत एक शताब्दी पहले शुरू हुई, फिर आधी शताब्दीतक तो नये बंगलोंके बनानेमें होड़ लग गयी थी। उनकी गति रुकी, इसी समय पहला महायुद्ध आ गया, जिसके बादसे तो इस मधुर नगरीसे लक्ष्मी ही रूठ गयी। बहुतसे अंग्रेज अपने बंगले बेचने लगे और भारतीयोंने विशेष-कर राजा-महाराजाओं और कुछ सेठोंने उन्हें खरीदना शुरू किया। कुमार दुरंजयको भी इसी समय वह बंगला प्राप्त हुआ था। कहा नहीं जा सकता, पिता महाराजने खरीदकर इसे अपने सुपुत्रको दिया था, या उन्होंने खुद खरीदा था। अन्तःपुरमें पैदा होनेवाले बुद्धिके सम्बन्धमें कुछ घाटेमें रहते ही हैं, ऊपरसे अपने सारे काम अपने मुसाहिबों द्वारा कराते हैं, इसलिए यदि खरीद-फरोख्तमें वे और अधिक घाटेमें रहे, तो इसमें आश्चर्य क्या? हिमशिखरों और नीचेकी

समतल उपत्यकाके सुन्दर दृश्योंसे वंचित इस बगलेमें आकर उन्हें अफसोस होना ही था, खासकर जब कि कभी-कभी वह जाड़ोंके आरम्भतक भी यहाँ रह जाते। प्रायः सारे दिन सूर्यकी किरणोंसे वंचित इस स्थानकी सर्दीमें उनको तकलीफ भी होती थी। क्या करे, अब तो ढोल गलेमें पड़ चुकी थी।

कुँवरानीको अपने बंगलेके गुण-अवगुणकी चिन्ता करनेकी फुर्सत नहीं थी। वे एक रियासती राजाकी पुत्री थीं और कुमार साहब पिताके उपेक्षित दर्जनों कुमारोंमेंसे एक। कुँवरानीके पास कुछ पैसा भी था, पीहरसे कुछ और भी मिलता रहता था, ऊपरसे राजपुत्री होनेका अभिमान, इसलिए वे अपने पतिकी बहुत पर्वा करनेके लिए मजबूर नहीं थीं। दूसरी तरफ कुमार भी मर्यादापुरुषोत्तम अपने पिताजीके कदमोंपर चलनेके लिए स्वतन्त्र थे, यदि उसमें बाधा थी, तो यही कि हाथ तंग था और इसीलिए दूर-दूरतक निशाना नहीं लगा सकते थे। कुँवरानीको दुनिया-जहानकी पर्वा हो भी नहीं सकती थी, क्योंकि सबेरे छोटी-हाजिरीके समय ही उनकी मेजपर बोतल और चषक आ जाते, फिर उनके प्यालोंका तॉता करीब-करीब रातको सोनेके वक्त ही खतम होता। उनका दिमाग चौबीसों घण्टे नशेमें चूर रहता। शराबके प्यालोंसे गम गलत करती हुई बेचारी कुँवरानी एक दिन परलोक सिधार गयीं। तब रियासत विलीन हो चुकी थी। यद्यपि कहनेपर कुँवरानी कभी इसपर विश्वास करनेके लिये तैयार नहीं थीं।

कुमारको कुँवरानीके मरनेकी फिकर नहीं थी। सारे भारतके रजवाड़ोंकी तरह उनके ससुरालपर भी पाला पड़ गया था, इसलिये उधरसे कोई आशा नहीं हो सकती थी। अपनी जो आमदनी थी, उसमें छोटी चादरवाली हालत थी; सिर ढाँके तो पैर नंगा, पैर ढाँके तो सिर नंगा। ऊपरसे यह सोच-सोचकर और भी दिल मरता जाता था, कि आमदनीके स्रोत सूखते जा रहे हैं, और सम्पत्तिको बेचकर बहुत दिन काटे नहीं जा सकते। उनके साले-राजा जब पहले आते, तो खूब हँसी-खुशीकी पान-गोष्ठी रची जाती और मालूम होता उनकी दुनियामें कहीं दुःखका पता नहीं। साले-राजा अब अपनी विपतामें पड़े हुए थे। खर्च चलानेके लिए अपनी सम्पत्ति बेचनेके लिए मजबूर थे। बहनोईसे पहले सालेने ही अपने बॅगलेको बेचनेके लिए दौड़-धूप शुरू करवायी थी। उस

समय उन्हें अपने बँगलेके लिए काफी रकम मिल रही थी, लेकिन राजा लोग बिना मुसाहिबोंके मशौरेके अपनी सम्पत्ति बेंच नहीं सकते थे। खरीदारको यदि ऐसी सम्पत्ति लेनी है, तो मुसाहिबोंके ऊपर अच्छत-फूल चढाना जरूरी है। इसी गड़बड़ीमें राजा साहबका बगला नहीं बिक सका और कुछ ही सालों बाद यह देखकर उनको और उनके मुसाहिबोंको बड़ी निराशा हुई, कि मधुपुरी-के बँगलों और कोठियोंका दाम उस समयसे अब आधा भी नहीं रहा।

कुमार दुरजय "योग्य पिताके" "योग्य पुत्र" थे, फर्क केवल परिमाणका था। पिताने अगर एकसे एक कीमती सैकडों कुत्ते पाल रखे थे, तो पुत्र दो-चार भी न पालें, यह कैसे हो सकता था? उनके पास यूरोपीय नसलके सबसे बड़े कुत्ते ग्रेट डेनका एक जोडा, और एक जोडा खूँखार भोटिया कुत्तोंका था। ग्रेट डेन लम्बाई-ऊँचाईमें बहुत बडे होनेपर भी भयकर नहीं थे। वे काफी समझदार थे और जानते थे कि मनुष्य हमारा शिकार बननेके लिए नहीं है। अपरिचित व्यक्तिपर वे कभी भूक-भोंक देते थे। लेकिन, भोटिया जोडेकी बात दूसरी ही थी। वे अपने लम्बे बालोंके कारण ग्रेट डेनसे कहीं अधिक भारी-भरकम दिखलायी पडते, शायद ताकतमें भी ग्रेट डेन उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। बाहरी आदमियोंके लिए तो वह काल थे। उन्हें देखकर या दूरसे उनकी भयकर आवाज सुनकर लोगोंको रूह कॉपती थी। कुमार साहबका बंगला एक सुनसान-सी जगहमें छोटी सडकके किनारे था। यह ऐसी सड़क थी, जिसपर बहुत कम लोगोंको जानेकी जरूरत पड़ती थी। जो भी उधरसे गुजरता, पहलेहीसे देख लेता, कि भोटिया कुत्ते अच्छी तरह बँधे है या नहीं। कुमार ऐसे बेवकूफ नहीं थे, कि अपने इन दरिन्दोंको छोड़ रखते, जो बिना काटे आदमीको छोड नहीं सकते थे।

बापकी राजधानी और जागीरके गॉवमें अभी भी कुमारके महल मौजूद थे। मधुपुरीमें सीजन बिताकर वहाँ जाना अभी उनका बन्द नहीं हुआ था, विशेष-कर राजधानीवाले महलमें वे अक्सर अपना जाड़ा बिताते थे। उनके पास यही दो जोड़े कुत्ते नहीं थे बल्कि घोडे, दूसरे कुत्ते, चिडिया, हिरन घरपर भी मौजूद थे। नौकर-चाकर तीनों जगहोंमें रहते थे—खर्चीला सौदा था। ऊपरसे कुमारका अपना जीवन अभी चादरके अनुसार नहीं था। खाने-पीने और

दावतोंमें शाहखर्ची वैसी ही थी। मधुपुरीमें कोई जलसा या फंक्शन होता, उसमें कुमार अवश्य निमन्त्रित होते और वहाँ जाकर वह अपनी शाहखर्ची भी बिलकुल भूलनेके लिए तैयार नहीं थे। अच्छी-अच्छी शराबोंपर उनका खर्च कम नहीं था और न कुमार-पुत्र कम हैसियतमें रखे जा सकते थे। अंग्रेजोंके जानेपर भी अंग्रेजीका राज्य तो अभी हिन्दुस्तानसे गया नहीं है, इसलिए कुमार अपने पुत्रोंको मधुपुरीके एक अच्छे यूरोपियन स्कूलमें पढाते थे। पुत्रियाँ छोटी होनेसे अभी कान्वेन्टमें थीं। धीरे-धीरे पैसेका इतना टाला पड़ गया था, कि स्कूलकी फीसतक नहीं दे पाते थे—या यों कहना चाहिये, कि कुमार उसी खर्चको अदा करना चाहते थे, जिसके लिए वैसा करना अनिवार्य था। खाने-पीनेकी चीजोंपर भी कुमारका काफी खर्च था, क्योंकि एक तरफ सभी चीजें महँगी थीं और दूसरी तरफ मेहमानोंका आवागमन कम नहीं था। अपने और अपनी नयी प्रियतमाओंके लिए कपड़ों और जेवरकी भी जरूरत पड़ती थी। सभी चीजें उधारपर आती थीं। बनिये इस बातकी हिम्मत नहीं करते थे, कि उधार देना बन्द कर दें, क्योंकि इससे सालमें कुछ रुपये लौट आते थे। इस तरहके उधार और बेबाकी कुमारके यहाँ चलती ही रहती थी और कितने ही बनिये तो पता नहीं पाते, कि कर्जेकी तमादी लग चुकी है।

लादूराम मनमाने दामपर कुमारको चीजें दिया करते थे। कभी-कभी नगद रकम भी उधार दे देते थे, क्योंकि कुमार मनमाना सूद देनेके लिये तैयार थे। लादूराम बेचारे १५–२० हजारके आसामी थे—अर्थात् पहिलेके चार-पाँच हजारके। कुमारपर उनका चार हजार रुपया उधार हो गया। तकाजा करनेका यही फल हुआ, कि कुमारने उनके यहाँसे चीज खरीदनी छोड़ दी। कुछ दिनों तक नगद दाम और फिर उधारपर, उन्होंने लादूरामके किसी दूसरे पड़ोसीको पकड़ा। आदमियोंके साथ तकाजा करनेसे कोई फायदा न होते देख लादूराम एक दिन स्वयं कुमारके बंगलेपर पहुँचे। झाँक-झूँककर दूरसे ही अच्छी तरह देख लिया। दोनों भोटिया कुत्ते बंगलेके सामने नहीं बँधे थे। दिल अब भी डर रहा था, लेकिन एक पुराने परिचित नौकरने उन्हें विश्वास दिलाया, कि कुत्ते पीछेकी तरफ बँधे हैं। लादूरामकी जानमें जान आयी। बड़े आदमियोंको मनमाने दामपर यों ही सौदा बेचा नहीं जा सकता, इसके लिए नौकर-चाकरोंकी

मुट्ठी गरम करनी पड़ती है, अतः कुमार साहबके नौकर यदि लादूरामके साथ सहृदयता दिखलानेके लिए तैयार थे, तो वाजिब ही था। लादूरामके कहनेपर एक नौकरने जाकर कुमार साहबके पास अरज की—सरकार, एक आदमी आया है।

—कौन-सा आदमी, बगलेका खरीदार ?

—नहीं हुजूर, लादूराम बनिया, पैसोंके लिए।

लादूरामका नाम सुनते ही कुमारकी त्योरी बदल गयी। उन्होंने नौकरको पुकारकर कहा।

—खियाली, भोटियेको छोड दे।

कुमारने कुछ ऊँची आवाजसे कहा था, जिसकी जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि लादूराम कुमारके कमरेसे बहुत दूर नहीं थे। भोटियेका नाम सुनते ही लादूरामके प्राण हवा हो गये। वह उलटे पैर अपनी तोंद हिलाते बाहरकी तरफ लपके। तुरन्त ही कुछ गजकी चढाई शुरू हो जाती थी, लादूरामको न जाने कहाँसे इतनी ताकत पैदा हो गयी, कि दौड़कर चढ़ गये और फिर सड़क पकड़कर तब तक दुलकी ही भागते रहे, जब तक कि बंगला ओटमें नहीं चला गया। लादूरामको अपनी बेवकूफीपर झुँझलाहट हुई। वकीलसे पूछकर उन्हें मालूम हो गया था, कि नालिश करनेकी मियाद खतम हो चुकी है। कुमार इस तरह तकाजेके मारे किसीका ऋण चुका देनेके लिए तैयार नहीं थे। ज्यादा-से-ज्यादा वह यही कृपा कर सकते थे, कि आगेके लिए उधार चीजें न मँगाएँ। किसीको नालिश करनी है तो नालिश करता फिरे। कुमारके ऊपर समन तामील होना सभव नहीं था। उस दिन लादूरामको घर लौटनेपर १०३ डिग्री-का बुखार आ गया।

(४)

कुमार दुरजयको मधुपुरीमें अब उधार भी कोई देनेवाला नहीं था। सभी जानते थे, कि उनको उधार देना रुपयेको पानीमें फेंकना है। मधुपुरीमें रहनेपर कुमारका खर्च भी अधिक बढ जाता था। उन्हें अपने खचको कम करनेकी फिकर पैदा हुई। जागीरके महलको अब एक तरह उन्होंने छोड़ दिया था और अधिकतर राजधानीके महलमें ही रहते थे। वह जानते थे, कि पसीनेमें तर होते

लू और ऊमसमे दिन काटना मेरे लिए बहुत मुश्किल होगा, लेकिन मधुपुरीके खर्चके लिये अब पैसा कहाँसे आये ? मधुपुरी ही क्यों, राजधानीके महलमे भी रह कर खर्च चलाना उनके लिए मुश्किल था। कितनी ही जगम और स्थावर सम्पत्ति बेच चुके थे, और मधुपुरीके अपने रहनेवाले बंगलेको भी बेचनेके लिए तैयार थे। लेकिन, अब उसे कोई मिट्टीके मोलपर भी लेनेवाला नही था। तीन वर्ष पहले जब अच्छा दाम मिल रहा था, तब तो मुसाहिबोंकी तिकड़मसे उन्होने भी सालेकी तरह उसे नहीं बेचा। मुसाहिब भले और बुरे दोनो ही तरहके होते है। जब भला होना लाभकी चीज हो, तो वह वैसा क्यो न बने ? कुमार अगर कोपीनधारी बन जाएँ, तो उन्हे कौन पूछेगा, उनकी दाल रोटी कैसे चलेगी ? रियासतोंके टूटनेसे सभी जगह मुसाहिबों, खवासों, लौंडियोंको जवाब मिल रहे थे और एक-से-एक गुनी कौडीके तीन हो गये थे।

कुमार पैसोंके लिए बडे चिन्तित थे, और इस बातके लिए और भी कि जब सारी सम्पत्ति बेचकर खा जाएँगे, तो फिर कैसे गुजारा होगा ? आखिर कुमारकी उमर अभी ५० तक नहीं पहुँची थी। लड़के-बच्चोंकी फिकर न भी करे, तो अपनी फिकर तो उन्हे थी ही। एक दिन नमकहलाल मुसाहिबने कुमारको सलाह दी, कि मधुपुरीवाली कोठीको अमुक महाराज-कुमारके फारमसे बदल लिया जाए। कुमार इस समय जाडोमे राजधानीवाले अपने महलमें थे, जब कि मुसाहिबने यह सलाह दी। उसी समय दुरजयके रिश्तेदार एक दूसरे महाराजकुमार भी नगरीमे आये हुए थे। महाराजकुमारने रियासतके जानेके समय रियासती लूटमें हाथ बँटाया था और अपने लिए दो हजार एकडका फार्म भी बना लिया था। यह कहनेकी अवश्यकता नही, कि पीढियोंसे इस जमीनको जोतनेवाले गरीब किसानोंके खेतोको छीन करके ही यह फार्म बना था। कांग्रेसी शासनको न्याय-अन्याय देखनेकी फुर्सत नही थी, वह सभी जगह इसी तरह चल रहा था। वह पुराने सम्भ्रान्त कुलोंकी मर्यादाको भी गिरने देना नही चाहता था। महाराजकुमारने जब अपना फार्म बनाया, तो उनके पास पैसे काफी थे। उन्होंने दो ट्रेक्टर मगवा लिये और फार्मपर अपने रहने लायक एक बगला भी तैयार करा लिया। उस समय इतना उत्साह था, कि खाकी कमीज और पैन्ट पहने हैट लगाये वह स्वयं ट्रेक्टर चलाते थे। आखिर जब

मोटर अच्छी तरह चला सकते थे, तो ट्रेक्टर चलाना क्या मुश्किल था? फार्मके संबंधमें अमेरिका और इङ्गलैण्डमें छपी कितनी ही किताबें पढ़ीं, महँगेसे महँगे बीज और खादें भी मँगवायीं तथा किसी मुसाहिबके कहनेपर उसके सम्बन्धीको कृषि-विशेषज्ञ बनाकर भी रख लिया। दो तीन सालतक फार्म इसी तरह चलता रहा। पैसा कहाँसे कितना आ रहा है और किस तरह खर्च हो रहा है, इसको देखना महाराजकुमार अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझते थे। ट्रेक्टर बराबर बिगड़ने लगे। अक्सर कोई-न-कोई पुर्जा टूट जाता। महाराजकुमार मोटर ड्राइव कर सकते थे, इसलिए ट्रेक्टर भी अच्छी तरह चला लेते थे, लेकिन मरम्मत और पुर्जा बदलना उनके बसकी बात नहीं थी। तीसरा वर्ष बीतते-बीतते फार्मकी स्थिति देखकर उनका उत्साह मन्द हो गया। चौथे सालसे तो उन्हें संकट सामने दिखायी पड़ने लगा। जितनी आमदनी होती, खर्च उससे अधिक करना पड़ता और उसे पूरा करनेके लिए कर्ज लेना पड़ता या कोई चीज बेचनी पड़ती। महाराजकुमारको फार्मसे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो गया, ट्रेक्टरबाज खेतिहरका जीवन उन्हें कड़वा लगने लगा।

फार्म चलाते समय भी महाराजकुमार अपनी कुँआरानी और लग्गू-भग्गुओंके साथ गर्मी बिताने मधुपुरी या किसी दूसरे पहाड़ी स्थानपर चले जाया करते थे। वहाँ उनका अपना कोई बंगला नहीं था, पिताका जो था, उसे बड़े भाईने ले लिया था। पंगु और अन्धे जैसी बात हुई। महाराजकुमार फार्मसे पिंड छुड़ाना चाहते थे और मधुपुरी जैसे स्थानमें एक बंगला लेना चाहते थे। कुमार दुरजय अपनी कोठी बेचना चाहते थे। पहले उनका ख्याल नकदपर बेचनेका था, लेकिन स्वामिभक्त मुसाहिबने सुझाव दिया कि बेचनेकी जगह उसे फार्मसे बदल लेना अच्छा होगा। बेचनेके लिए खरीदार भी नहीं था और फार्म आमदनीका जरिया था। कुमारको अपने मोटर और जीप चलानेके कौशलपर अभिमान था। उनके मनमें उमंग पैदा हुई, मैं भी क्यों न खाकी वर्दी पहनकर अमेरिकन बन जाऊँ। कुमारके मुसाहिबने महाराजकुमारसे बातचीत की। महाराजकुमारने पूछा—मधुपुरीमें कोठी कैसी और किस जगह है।

कुमारके मुसाहिबने बड़े अदबके साथ बतलाया—सरकार, वह मधुपुरीके उस मुहल्लेमें है, जहाँ केवल साहब लोग रहा करते थे। बाथ-रूम है, ड्राइङ्ग

और डाइनिंग हाल है। बाहर भी प्राइवेट सेक्रेटरी या मेहमानोंके रहनेके लिए चार कमरोंका छोटा-सा बंगला है। चारों तरफ हरियाली है। बड़ी सुन्दर जगह है।

और वहाँतक मोटर भी जाती है?—महाराजकुमारने पूछा।

मुसाहिबने नम्रतापूर्वक कहा—हुजूर, बिल्कुल बंगलेके भीतर तक जीप जाती है, थोड़ा रास्ता ठीक करनेसे मोटर भी वहाँतक पहुँच जाएगी।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि कुमार और महाराजकुमार दोनोंके मुसाहिबोंने पहलेसेही बातचीत कर सौदेमें अपना हिस्सा भी निश्चित कर लिया था। कुमार दुरजयके पिता भी महाराजा थे, इसलिये उन्हें महाराजकुमार कहना चाहिये, किन्तु संक्षेपके लिए हमने यहाँ उन्हें कुमार कहा है। महाराजकुमारके मुसाहिबने बीचमें बोलते हुए कहा:

—सरकार, मधुपुरीमें यदि जीप चली जाए, तो वही बहुत है। वहाँके बंगले आप देखते ही हैं आराम, एकान्तता और सुन्दरताको देखकर बनाये गये हैं। जीप जाती है, यही गनीमत है।

महाराजकुमारने विचार करके दो दिन बाद जवाब देनेके लिए कहा। विचार क्या करना था, वे जानते ही थे कि कुमार दुरंजयको फार्म क्या एक बला मिलेगी। इतना बड़ा बंगला मधुपुरीमें उस चीजके बदले मिल रहा है, जिसे मैं किसी दामपर भी फेंकनेके लिए तैयार हूँ। उसे खरीदनेके लिये क्यों न उत्सुक हो जाते? उसी जाड़ोंमें उन्होंने अपने मुसाहिबको बंगला देख आनेके लिए मधुपुरी भेजा, जिसने उसकी प्रशंसाके पलड़ेको भारी रखते हुए भी इस बातको साफ कह दिया था, कि मोटर वहाँ हर्गिज नहीं जा सकती। बंगलेकी और बातें सुनकर महाराजकुमारके मुँहमें पानी भर आया। कुमारने भी फार्मको जाकर देख लिया। वह मन ही मन कहने लगे—महाराजकुमार अपनी नातजर्बेकारीसे इस सोनेकी चिड़ियाको हाथसे खो रहे हैं।

उसी जाड़ेमें फार्मको मधुपुरीकी कोठीसे बदलनेकी बात ही नहीं तय हो गयी, बल्कि लिखा-पढ़ी भी हो गयी। अब कुमार दुरंजय फार्मके मालिक थे। उनकी मोटर महलसे सत्तर मील दूरपर अवस्थित फार्मकी ओर दौड़ने लगी। अपने मुसाहिबोंके साथ मिलकर वह भविष्यका प्रोग्राम बनाने लगे। उन्हें इस बातकी प्रसन्नता होनी ही चाहिये थी, कि सड़ी-गली कोठीसे पिंड छूटा और

उसकी जगह सोनेकी चिडिया हाथ आयी। सबसे अधिक प्रसन्नता उन्हें इस बातकी थी, कि अब मधुपुरीके कर्ज देनेवालोंके तकाजेसे पिंड छूटा और मनमें यह ख्याल करके भी प्रसन्न होने लगे कि फार्मकी प्राप्तिके साथ-साथ कर्जके बीस हजार रुपये भी उसी दाममें बेबाक है।

महाराजकुमारके एक-दो आदमी पहले ही आकर मधुपुरीके नये बंगलेको तैयार करनेमें लग गये थे। वैसे होता तो दो-चार हफ्ते बाद महाराजकुमार मधुपुरी पहुँचते, किन्तु अबकी उन्हें अपने नये मकानके देखनेकी बेकरारी भी थी, इसलिये जल्दी आ पहुँचे। अंग्रेजोंके शासनमें मधुपुरीमें अड्डेपर ही मोटरों-को रुक जाना पडता था और लाट साहब तथा दो-चार और बड़े अधिकारियों-को ही मोटरसे अनुकूल सडकोंसे गुजरने दिया जाता था। लेकिन अंग्रेजी राज्य-के हट जानेसे अब यह सुभीता हो गया, कि कोई भी कुछ रुपये देकर मोटर-लायक सडकोंपर अपनी मोटर ले जानेके लिये स्वतन्त्र है। महाराजकुमारको मालूम था, कि बंगले तक मोटर नहीं जाती, इसीलिये अपनी जीप लाये थे। परमिट लेकर बंगलेकी तरफ चले, लेकिन चार फर्लांग पहले ही जीपको रुक जाना पड़ा। लोगोंने बतलाया कि आगे जीपका रास्ता नहीं है। महाराजकुमारको कुछ झुंझलाहट पैदा हुई लेकिन यह समझानेपर कि जीपके जानेमें कुछ मरम्मत करनेकी जरूरत है, उनका टेम्परेचर ठीक हो गया। उतरकर अपने बॅगलेकी ओर पैदल ही बढ़े। बॅगलेको नौकरोंने ठीक-ठाक कर दिया था। उससे उनको उतनी शिकायत नहीं हुई। सभी चीजें वहाँ पुरानी थीं और फर्नीचर भी संख्यामें कम थे, तो उनका फार्म भी तो कुछ इसी तरहका था। दो-चार दिन रहनेके बाद महाराजकुमारकी कुँअरानी और लड़के जंगलके भीतर दम घुटती-सी जगहके इस सुनसान बॅगलेमें उकता गये। उन्होंने शिकायत करनी शुरू की। महाराजकुमारका भी अब मन भर गया। सबसे बड़ी शिकायत उनकी इस बातकी थी कि यहाँ जीप भी नहीं आ सकती। किसी समय अपने टूटे-फूटे फार्मको मधुपुरीकी सुन्दर कोठीसे बदलकर वह फूले न समाते थे; समझते थे, मैंने दुरजयको खूब उल्लू बनाया। लेकिन अब उन्हें इस बूढ़ी कोठी और उसके आसपासका स्थान देखकर मालूम हुआ कि दुरजय बाजी मार ले गया।

महाराजकुमारको अब यह चिन्ता होने लगी, कि इस कोठीको बेचकर कोई और जगह ली जाये। मधुपुरीमें उन्होंने कुछ जगहोंपर स्वयं घूमकर पता लगाया, तो मालूम हुआ कि २०-२५ हजारमें इससे कहीं अधिक अच्छी कोठी मिल सकती है और ऐसी जगहपर जहाँ मोटर भी पहुँच सकती है। उन्होंने भारी कमीशनका लोभ दे ऐजेन्टोंको कह रखा है कि बंगलेको बिकवा दें। लेकिन मधुपुरीका कोई निवासी आशा नहीं रख सकता; कि उसे कोई मिट्टीके मोलपर लेनेके लिए तैयार होगा। हजार पाँच सौ फर्नीचरके आ सकते हैं। किवाड़ और जंगले अलगसे उखाड़कर बेचे जायें, तो उससे भी कुछ पैसा मिल सकता है, लेकिन इसमें सन्देह है, कि वह उखाड़नेपर लगाये गये मजदूरोंकी मजूरीके लिये भी पर्याप्त होगा।

४. मेम साहब

तीर्थोंकी कुछ-कुछ झलक हिमालय जैसे पर्वतोंकी आधुनिक विलास-पुरियोंमें भी देखनेमें आती है। तीर्थोंमें जैसे पण्डे प्रान्त-प्रान्तसे आये अपने यजमानोंका स्वागत करनेके लिये तैयार मिलते हैं, वैसे ही इन विलासपुरियोंमें मोटरके अड्डेपर ही होटलोंके पण्डे आ पहुँचते हैं और बोझा ढोनेवाले मजदूरोंकी छीना झपटी शुरू हो जाती है।

पिछली आधी शताब्दीमें भारतीय समाज कहाँसे कहाँ गया है, इसका भी यहाँ पता लगता है। इस शताब्दीके आरम्भमें हैट धारण करनेवाले काले या गोरे पुरुषको लोग साहब कहते थे, बाकी भद्र पुरुष बाबूजीके नामसे पुकारे जाते थे। अभी सेठ प्रधानतामें नहीं आये थे। लेकिन आज चाहे मधुपुरी जैसी आधुनिक विलासपुरीमें जाइये, या बदरीनाथ-केदारनाथ जैसे महा-तीर्थमें; आपको यह सुनकर आश्चर्य या खेद नहीं होना चाहिये, कि सभी आपको सेठ कह रहे हैं। कमसे कम उत्तरी भारतमें तो उस समय सेठ कहलानेके लिये खास तरहकी पगडीकी आवश्यकता थी, लेकिन अब उसकी जरूरत नहीं। हैट लगानेवाले बाबू भी यहाँ सेठके नामसे ही पुकारे जाते हैं। नाम देनेवाले न कोई बड़े विद्वान थे न अर्थशास्त्री। यह एक जनसाधारणका दिया हुआ नाम पहले ही से बहुत सोच-समझकर नहीं दिया गया है। शायद अनेक तीर चलाये गये : बाबू, पंडित, सेठ, लाला, मुंशी। एक तो अलग-अलग इतने नामोंको याद रखना मुश्किल और दूसरे ये शब्द सभीको पसन्द भी नहीं थे। सेठ शब्द कभी बहुत ऊँचा रहा होगा, लेकिन वह धीरे-धीरे कितनी ही जगहोंपर तराजू उठानेवाले बनियोंके लिये इस्तेमाल होने लगा—उत्तरमें सेठ तो दक्षिणमें उसीका बिगडा रूप चेट्टी। बीसवीं शताब्दीके मध्यमें सेठ शासक-जातिके रूपमें परिणत हो गये—भारतमें कुछ देर हुई—तो फिर सम्मान प्रकट करनेके लिये इससे और अधिक उपयुक्त शब्द क्या हो सकता था? राजा

अब कितने रह ही गये हैं ? जन-गण अभी उतना नहीं समझता, किन्तु अब उनकी हस्ती ही क्या रह गई है। यदि पोशाकमें असाधारणता न हो, तो मधुपुरीमें कोई उन्हें सेठ भी कह दे, तो बुरा माननेकी बात नहीं। आखिर कभी गाड़ी नावपर तो कभी नाव गाड़ीपरकी कहावत झूठी नहीं है। अब राजाका शासन सेठपर नहीं है, बल्कि सेठोंके कृपा-पात्र राजा है।

कहानीकी चरित्रनायिका सेठ वर्गकी हैं, और उन्हें सेठानी कहना ही बिल्कुल ठीक होता, लेकिन उनके कानमें सेठानीके तीन अक्षर शूलकी तरह गड़े बिना नहीं रहते—खुशकिस्मतीसे ये पंक्तियाँ उनके सामनेसे नहीं गुजरेंगी। सेठानी पूरी मेम हैं, यदि कसर है, तो यही कि वह पोशाकमें मेम नहीं हैं; वह साड़ी ही पहनती है। भाषा उनकी अंग्रेजी है और उत्तर भारतके हिन्दी प्रधान प्रदेशकी रहनेवाली होनेपर भी वह अंग्रेज मेमों जैसी हिन्दी और सो भी अपने नौकर-चाकरोंसे ही बोलती हैं। सौन्दर्यके लिए रंगका गोरा होना आवश्यक नहीं है। अगर ऐसा होता, तो युरोपके सभी देश सुन्दरियोंकी खान माने जाते। भारतमें जहाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें १५ से ३० सैकडा सुन्दर स्त्रियाँ मिलती है, वहाँ यूरोपका शायद ही कोई देश हो, जहाँ यह संख्या १५ सैकडा तक भी पहुँचती हो। पर, सेठानी गोरी हैं और सुन्दरी भी। पैंतीस वर्षपर पहुँचकर भी अभी उनका वसन्त आबाद है। बीस वर्षकी आयुमें यदि वह किसी देश या नगरकी सर्वसुन्दरी जन-पद-कल्याणी नहीं रही होंगी, तो अतिसुन्दरी तो जरूर ही रही होंगी। अफसोस, मधुपुरीमें उस समय सौन्दर्य-प्रतियोगितामें भारतीय ललनाओंके भाग लेनेका अवसर नहीं था, नहीं तो किसी साल वह 'मिस मधुपुरी' जरूर बनी होती। वस्तुतः यह सौन्दर्यका सम्बल ही था, जिसके कारण उन्हें करोड़पति सेठकी बहू बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, नहीं तो उनके पिता-माताकी वह हैसियत कहाँ थी ? दिन-रात—सपनेमें भी—अंग्रेजी बोलनेवाली और अंग्रेजी ढंगसे रहनेवाली प्रौढ़ सुन्दरीको मेम साहब कहना ही अधिक उपयुक्त था, लेकिन कुलको या कमसे कम व्यवसायको देखना जरूरी है, जिसपर कि जीवन निर्भर करता है, इसलिये हम उन्हें सेठानी मेम कहकर कोई अन्याय नहीं करते। यह सुनकर किसीको आश्चर्य नहीं होना चाहिये, कि अंग्रेजोंके चले जानेपर, अंग्रेजी राजके उठ जानेपर भी अंग्रेजी भाषा मधुपुरीकी

सड़कोंपर उसी तरह सर्वत्र सुनाई देती है, जिस तरह अंग्रेजोंके शासन करते समय। फरक यही है कि उस समय वह गोरे मुँहसे निकलती थी और अब रंगभेद दूर हो गया है। मेम साहब जब अपने पुत्रों और पुत्रियोंके साथ बँगलेमें या बाहर निकलती हैं, तो उनकी बात केवल अंग्रेजीमें ही होती है, सो भी आक्सफोर्डके उच्चारणके साथ। सेठने इगलेण्डमें शिक्षा नहीं पायी। इगलैण्डका मुँह भी पिताके मरनेके बाद देखा। पिताके सनातनी होनेके कारण और सेठोंमें रवाज न होनेसे उन्हें किसी युरोपियन या एंग्लोइण्डियन स्कूलमें पढनेका मौका नहीं मिला। उन्हें मालूम हुआ, कि अंग्रेजी भी सब एक ही तरहकी नहीं होती। बाबू इंगलिशकी तो बात ही छोड़िये, शुद्ध अंग्रेजीमें भी उसके अलग-अलग रूप हैं, और रूपके अनुसार ही आदमीकी संस्कृति और शिक्षाका मूल्यांकन होता है। जब उन्हें मालूम हुआ कि आक्सफोर्डका उच्चारण सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है, तो उन्होंने उसीका ध्यानपूर्वक अनुकरण शुरू किया। जो अंग्रेजी—और सोनेके समय भी—सेठके विचारोंके प्रकट करनेका साधन है, आक्सफोर्ड एक्सेन्टके अनुसार होती है। मेम साहब भी इस बातमें पूर्ण पतिपरायणा हैं।

सेठ जब स्वयं आक्सफोर्डके परमभक्त हैं, तो वह अपनी पत्नीको उसके अनुरूप क्यों न बनाते? लेकिन, पीली पगड़ी बाँधनेवाले पिता-सेठ जबतक जीवित रहे, तबतक उनको इतनी हिम्मत नहीं हुई, कि पत्नीको सोलह आना मेम बना देते। दोनों यही मनाते थे कि कब बूढ़ेके बन्धनोंसे मुक्ति मिलेगी। सोचते थे, चित्रगुप्त कहीं दो 'पेग' अधिक पीकर लुढक तो नहीं गया, जो सेठके लिये परवाना नहीं भेज रहा है। यदि परवाना उस समय आया, जब सेठानी चालीस पार कर गई, तो फिर उससे लाभ क्या होगा? इसलिये जब सेठानीके पचीस वर्ष पहुँचनेतक बूढ़े सेठ मर गये, तो दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई—रंगीली दुनियाका मजा उडानेके लिये अभी उनके पास काफी समय था। अगले ही साल सेठ-सेठानी विलायत गये। महायुद्ध चल रहा था, खतरा था, लेकिन उनमें इतना धैर्य कहाँ, कि युद्ध समाप्त होनेकी प्रतीक्षा करते। मेम साहबने वहीं अपने लम्बे काले सुन्दर बालोंको कटाकर छोटा करा लिया। अब वह विशेष ढंगसे सँवारे जाते हैं, कुशल युरोपियन हजामके हाथों उनमें स्थायी लहरें पड़ी

जहती हैं और बाहरसे बेपरवाही किन्तु भीतरसे बहुत ध्यानसे सँवारे वह बड़े सुन्दर मालूम होते है। बाल-कटी बहू जब यूरोप यात्रासे पहली बार लौटी, तो सासको बहुत बुरा लगा, लेकिन वह जानती थी कि उनके पतिके साथ ही बहूके ऊपर अंकुश रखनेका जमाना गुजर गया। बूढ़ी सेठानी अब भी जिन्दा है, लेकिन दूधसे निकाली मक्खी की तरह। वह पत्थरसे सिर टकराकर अपना माथा फोड़ चुकी हैं। तीसरी पीढ़ीकी बात तो अलग, दूसरी पीढ़ी ही उनकी कोई बात माननेके लिये तैयार नही है।

किसी फैशनको अन्धाधुन्ध स्वीकार करना खतरेकी बात है। यूरोपमें बहुत पहले फैशनकी दूकानें और बाजार खुल गये थे। वहाँ डाक्टरो की तरह फैशन-विशेषज्ञ एक-एक व्यक्तिको देखकर उसके रूप-रंग, मोटापन, पतलापन आदिके अनुसार फैशनका नुसखा लिखते थे। यह बहुत मँहगा नुस्खा था, इसमें शक नहीं, जिससे आज कलका सिनेमाका नुस्खा कहीं सस्ता है: देशी-विदेशी सिनेमा-तरिकाओं की वेशभूषा, चलन-मटकनको देखो और आप भी उसका अनुकरण करने लगो। ऐसा अन्धानुकरण सौन्दर्य बढ़ानेका कारण न होकर कितनी ही बार उसको घटानेका काम देता है। लेकिन फैशनमे मस्त महिलाओं को इसकी क्या परवाह? हरएक महिला अपनेको स्वयं सौन्दर्यपारखी मानती है। आखिर लम्बे शीशेमें वह अपनेको पूरी तौरसे देखते हुए सजाती भी तो है, अगर कोई नुक्स हो तो क्या वह उसे नही समझ सकती? 'आप-रुचि भोजन पर-रुचि सिंगार' कहनेवालोंने झख मारा है। आज तो पर-रुचि भोजन हो सकता है, किन्तु सिंगार आप-रुचि ही होना चाहिये।

मेम साहबके लिये यह तो नहीं कहा जा सकता, कि वह फैशनमें सिनेमा-तारिकाओंका अनुकरण करती हैं। पर वह तीन बार पेरिसके फैशन-विशेषज्ञोंकी सलाह ले चुकी हैं और उसका पालन भी करती हैं। फैशन तो एक वर्ष पूरा नही चलता, इसलिये दिन-दिनकी सलाह तो उन्हें सिनेमा तारिकायें ही दे सकती है। उनके घने काले कटे हुए लहरदार बाल भारतमें भी किसी विशेषज्ञके हाथों ही कटते-छँटते हैं।

(२)

मधुपुरी हिमालयकी विलासपुरियोंकी रानी है, इसलिये वहाँका खर्च भी

अधिक होना स्वाभाविक है। लोग आम-तौरसे उसी समय यहाँ आते है, जब कि नीचे मैदानमे टेम्परेचर ११०° से ऊपर पहुँचने लगता है। लेकिन मेम साहब जैसे ही तापमान शरीरके तापमानसे ऊपर होने लगता है, मैदानसे मधुपुरीकी ओर भागती हैं। कभी-कभी तो वह मार्चके अन्त ही मे आ पहुँचती हैं। लौटती उस वक्त है, जब तापमान नीचे उतरते-उतरते शरीरके तापमानके समीप पहुँचने लगता है—अर्थात् वर्षके सात महीने उनके मधुपुरीमे बीतते हैं। उनकी दो लडकियाँ और एक लडका यहीं यूरोपियन स्कूलमें पढते हैं और चौथा पाँच वर्षका बच्चा मद्रासी आया की गोदमे खेलता है। आया काली-कलूटी भले ही हो, लेकिन वह अंग्रेजी बहुत शुद्ध बोलती है। हाँ, आक्सफोर्ड एक्सेन्टमे नहीं, उसकी शिक्षा छोटे सेठजादेको माँ-बाप द्वारा मिलती है।

इस प्रकार सेठ साहबको छोडकर मेम साहबका सारा परिवार मधुपुरीमें ही रहता है। सेठ इन सात महीनोंमें दो-चार ही बार आते है और कभी एक हफ्तेसे अधिक नहीं रहते। उन्हें अपने व्यवसायकी बडी फिकर रहती है। चीनी मिल हो या कपडा मिल, अब दस-बीस सैकडा लाभके व्यवसाय तो नही रह गये है। कोई भी सेठ इसे पसन्द नही करता, फिर हमारे सेठ तो पिताके पुराने ढगके व्यापारके साथ-साथ आधुनिक व्यापारमे भी अप-टु-डेट है। हर वक्त बाजार, व्यवसाय और सरकारी नीतिकी नब्ज देखनी पडती है। मैनेजरो और मुनीमोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता। आमबाजारसे चोरबाजारमे नफा ज्यादा है, इसलिये अपने कारखानेकी कम-से-कम आधी उपज तो जरूर चोर-बाजारमे जानी चाहिये। फिर चोरबाजारी आमदनी-खर्चको पक्के बही-खातेमे डालकर अपना गला फँसाना सेठजी क्यों पसन्द करते? यद्यपि वह जानते है कि गला फँसनेका मतलब पचास-साठ लाखके मुनाफेमेसे दो-चार लाख भेट-पूजामें जानेके सिवा और कुछ नही है। लेकिन इतना भी क्यो दिया जाय? इस तरहके मुँहजबानी तथा कच्ची-पक्की बहियोंके जंजालमे पडे हिसाबमेसे यदि मैनेजर और मुनीम आधा अपने लिये रख ले, तो सेठको कैसे पता चलेगा? इसलिये सेठ साहब हर बातको अपनी आँखोंके सामने करना चाहते है। सेठ उमरके साथ पैसा खर्च करनेमें कुछ सकोच भी करने लगे हैं, जो मेम साहबको पसन्द नही है।

मधुपुरीमें प्रथम श्रेणीकी कोठियाँ और बँगले बाजारसे मीलों दूर हैं। अंग्रेजोंको बाजारके पास रहना पसन्द नहीं था, इसलिये उन्होंने अपने बंगले दूर-दूर बनाये। अंग्रेजोंकी देखा-देखी राजा-महाराजा तालुकदार-जमींदार भी मधुपुरीको पसन्द करने लगे, लेकिन उन्हें साहब लोगोंके बगलोंवाले भागमें कोठी बनवानेका शायद ही कभी मौका मिलता था। अब तो अंग्रेजोंके चले जानेसे इन सुन्दर बंगलोंमेंसे कितने ही वर्षोंसे मनुष्योंके कण्ठस्वरसे वञ्चित हैं, कितनों ही के फर्नीचर उठ गये हैं, फूलोंके गमले टूट गये हैं और मरम्मत न करनेसे छतोंको फोड़कर पानी भीतर चूने लगा है। हर साल उनकी लकड़ी या टीन उड़ती जा रही है। मजबूत दीवारें अभी रोके हुये हैं, नहीं तो वह कबके धाराशायी हो चुके होते। वे सिसक रहे हैं और कुछ ही वर्षोंके मेहमान हैं, यह उनके देखनेहीसे मालूम होता है। अंग्रेजोंके क्षेत्रमें एक जमींदार—महाराजाको भी अपनी कोठी बनानेका अवसर मिल गया। उन्होंने पैसा खर्च करनेमें कोताही नहीं की। जब गेहूँ रुपयेका दस सेर था, उस समय उनकी जमींदारीकी आमदनी पचीस लाख सालाना थी, पर वह भी उनके लिए अपर्याप्त होती थी। फिर ऐसे शाहखर्च महाराजाके बारेमें क्या कहना? महाराजा दूसरे महायुद्धके शुरू होनेके कुछ ही समय बाद परत हो गये। पहिले भी वह गर्मियोंमें कभी-कभी ही मधुपुरी आते, इसकी जगह वह युरोपकी सैर करना ज्यादा पसन्द करते थे। उन्होंने एक बार युरोपीय महिलासे विवाह भी किया था, जो अनुकूल नहीं बैठा। महाराजाकी कोठी 'स्प्रिंग फील्ड' (वसन्त-क्षेत्र) सचमुच ही ऋतुराजके नामके अनुरूप थी। लड़ाई समाप्तिके एक पहिले ही इस कोठीको मेम साहबने किरायेपर ले लिया, और अब वह हर साल आकर उसीमें रहती हैं। महाराजा या उनके उत्तराधिकारियोंके लिए यह कोई टोटेका सौदा नहीं है। मधुपुरीमें पाँच हजारपर उठनेवाले बंगलेका अब दो हजार मिलना भी मुश्किल हो गया है, लेकिन मेम साहब उसका किराया करीब-करीब उसी दरसे चुकाती है, जिसपर कि उन्होंने लड़ाईके समय उसे लिया था। मकान उनके लिये बहुत बड़ा है। आठ सूट कमरे हैं, डाइनिंग और ड्राइंग रूम नहीं, बल्कि हॉल है। महाराजाके लिए यह अपर्याप्त थे, क्योंकि उनके परिवार और मेहमानोंकी संख्या अधिक थी। मेम साहब उतने मेहमानोंको

रखनेकी हिम्मत नहीं कर सकतीं, तो भी वह मेहमाननवाज हैं और अकेले खान-पान उन्हें पसन्द नहीं है। लेकिन केवल कमरोंको भरनेके लिए तो वह मेहमानोंको नही रख सकती। फलतः कुछ कमरे यों ही पड़े रहते है। उन्हे सफाई पसन्द है, इसलिये सफाई सबकी हो जाती है। आयाके अतिरिक्त उनके निजी पॉच नौकर हैं, मोटर-टायरवाला अपना निजी रिक्शा है, जिसके लिये छ रिक्शेवाले सात महीनेके लिये रख लिये जाते है। मधुपुरीमें जब देशी राजाओं और बड़े-बड़े ताल्लुकदारोंका मजमा रहा करता था, उस समय भड़कीली वर्दी पहननेवाले रिक्शा-कुलियोंकी काफी सख्या रहा करती थी, अब तो शायद तीन ही चार वैसे रिक्शा मिलेंगे। मेम साहबके रिक्शावालोंकी वर्दियोंपर नम्बर भी लगे हुए हैं। अफसोस है कि अब उन्हे अपना रिक्शा-गौरव दिखलानेका उतना मौका नहीं रह गया।

(३)

मेम साहब पिछले साल युरोप गयी थी। पेरिससे और चीजोंके साथ वह सेंटकी कुछ सुन्दर और कीमती शीशियॉ ले आई थीं। उस दिन प्यारेलाल सन्सकी दूकानमें गयीं, तो उन्हे अपने सेंटके करीब-करीब खतम हो जानेका ख्याल आया और उन्होने पेरिसके उस सेंटकी मॉग की। प्यारेलालने कहा—

—मेम साहब यह सेंट तो पेरिस ही मे मिल सकता है। अँग्रेजोके समय हम मॅगा लिया करते थे, लेकिन अब सरकारने रुकावट डाल दी है और खर्च करनेवाले ग्राहक भी नही है।

—तो क्या यह सेंट मिल ही नहीं सकता—मेम साहबने कुछ निराश स्वरमे कहा—हमारा तो इसके बिना काम नहीं चल सकता। हमें मालूम होता, तो लगाने और बॉटनेमे इतनी शाहखर्ची न की होती।

—मिल नहीं सकता, यह बात नहीं है। क्या चीज है जो नहीं मिल सकती? लेकिन, दामका और समयका सवाल अलग है।

—तो मिल सकता है—प्रसन्नता प्रकट करते हुए मेम साहबने कानोंपर कुछ आगे बढ आये केशोंको चमकते लाल रंगसे रंगी हुई लम्बे नाखूनवाली कोमल अँगुलियोंसे पीछेकी ओर हटाकर कहा—आप मॅगा दें। जरा जल्दी। दामकी कोई परवाह न करें।

प्यारेलाल सन्सका कारबार पुराना है। सभी जगहोंसे उनके सम्बन्ध हैं। उसी दिन उन्होंने बम्बई टेलीफोन किया। मालूम हुआ, गोआसे सेन्ट मँगाया जा सकता है। फ्रांसीसी और पोर्तुगीजी बस्तियाँ जबतक भारतमें मौजूद हैं, तबतक किसी मालकी रोक-थामका भारतीय कानून ताकपर रखा जा सकता है। बम्बईसे आदमी गोआ दौड़ा और सेन्ट लेकर सीधा मधुपुरी पहुँच गया। हफ्ताभर बाद पेरिसके सबसे मँहगे सेन्टकी दो शीशियाँ प्यारेलाल सन्सकी दूकानमें मौजूद थीं। मेम साहब प्रायः रोज ही टेलीफोनसे पूछा करतीं, जब उन्हें खबर दी गयी, कि शीशियाँ आ गयी हैं, तो एक मिनटकी देर किये बिना वर्दीधारी रिक्शावालोंने उन्हें प्यारेलाल सन्सकी दूकानपर पहुँचा दिया। बूढ़े लालाने अपने हाथसे शीशियोंके केसको उनके सामने रक्खा। जिस केसमें वह रक्खी थीं, वह स्वयं एक कीमती कलाकी चीज मालूम होता था। मेम साहबने शीशीको देखा। ठीक वही सेन्ट था, उसी तरह के कट-ग्लासकी नफीस शीशियाँ थीं। दाम पूछा, तो प्यारेलालने एक-एकका ढाई सौ बतलाया। मेम साहबने 'कोई पर्वाह नहीं' कहकर अपने रिक्शेवालोंके हाथमें शीशियोंके केस दे दिये।

कोठी लौटते समय उनके मनमें बड़ा उत्साह और आनन्द था। पेरिसके सेन्टके सामने भला दूसरे देशी और विलायती सेन्ट क्या कीमत रख सकते थे?

सेन्टके बारे ही में वह इतनी शाहखर्च नहीं थीं, हर एक चीजमें उनका हाथ उसी तरह खुला हुआ था। प्यारेलाल सन्स और दूसरे एक दर्जन व्यापारियोंके लिए कल्पवृक्ष यही लोग तो थे। मेम साहब जब दूकानपर पहुँचतीं, तो मँहगीसे मँहगी चीज और बड़े परिमाणमें लेतीं। उनके ससुर चुपचाप कभी-कभी शराब पी लिया करते थे। वह नहीं चाहते थे, कि बच्चोंमें वैसी बुरी आदत पड़े। लेकिन उनकी बिरादरीके लोग पिछड़े प्रदेशोंमें ही नहीं बसते थे। पंजाबमें भी वह थे, जो कि आधुनिकता और फैशनके सम्बन्धमें सारे हिन्दुस्तानका कान काटता है। मेम साहब वहाँ की थीं, इसलिये वह खान-पानमें इतना आगे थीं, जिसका उनकी सात पीढ़ी भी स्वप्न नहीं देख सकती थी। मांस और शराबके बिना तो एक वक्त भी उनका गुजारा नहीं चल सकता था। आधुनिकता उन्हें सिगरेटकी तरफ भी खींच ले गयी थी। 'पाँच सौ पचपन' सिगरेट उनको प्रिय था

और जब कभी जातीं तो दो दर्जन टिन रिक्शेपर रखवा लातीं। उनकी अपनी श्रेणीकी महिलाएँ अक्सर उनके पास आया करतीं, जिनका भी स्वागत-सत्कार करना होता था। और शराब? शेरी, व्हिस्की शैम्पेन, शारतू, पोर्त और ब्राडी-की सबसे अच्छी बोतलें वह पसन्द करती थी। लेते वक्त बोतल नहीं, बल्कि दो-दो तीन-तीन कैस लेतीं। हरेक कैसमें एक दर्जन बोतलें होतीं। व्हिस्की उन्हें बहुत प्रिय थी, जो अट्ठाइस रुपये बोतल भी मिल सकती थी, लेकिन वह सबसे कीमती छप्पन रुपये बोतलवाली व्हिस्की पसन्द करती। एक बारकी खरीदमें वह उसके दो कैस लेतीं। शम्पेन वह पैंतीस रुपये बोतलवाली पसन्द करतीं, फिर जायका बदलनेके लिए ब्राडीका नम्बर आता जो तीस रुपये बोतल थी। शारतू छब्बीस रुपये बोतलकी भी खप जाती, लेकिन बारह रुपये बोतलवाली शेरी, और आधुनिक मदिरायें तो उनकी 'पेन्ट्री'में सिर्फ किसिमको बढ़ानेके लिए ही पहुँचती थी। 'स्प्रिंग फील्ड'में सचमुच शराबकी नहरें बहा करतीं। लेकिन, यह कहना होगा कि मेम साहब पानमें भी बहुत सयमका परिचय देतीं। मधु-पुरीमें उनके वर्गकी दूसरी महिलायें कितनी ही ऐसी भी थीं, जिनको रातको सोकर उठनेके समय ही प्रकृतिस्थ देखा जा सकता था, नहीं तो वह 'छोटी-हाजिरी' से ही पान शुरू कर देतीं और हर वक्त बुत्त बनी रहतीं। मेम साहब सूर्यास्तके बाद ही शीशेमें हाथ लगातीं, सिवाय उन विशेष दिनोंके, जब कि पाँच बजेकी चायमें किसी विशेष महिलाके आतिथ्यके कारण उन्हें पान-गोष्ठीमें शामिल होना पड़ता। पीनेके बाद भी उन्हें बकवास करनेकी आदत नहीं थी। आँखोंमें सुरूर चढ़ जाता, रूज लगे गाल कुछ और लाल हो जाते, तथा हर वक्त फिर-फिर लिप्सस्टिक फिरते ओठ कुछ ज्यादा चलने लगते। इसके सिवा उनपर और कोई असर नहीं होता था।

(४)

उस दिन मेम साहब प्यारेलाल सन्सके यहाँ पहुँची। उनका छोटा बच्चा भी साथ था। लड़केने तीनपहिया साइकिल, खिलौने जैसी चीज तीन सौ रुपयेकी चुनी। मेम साहबको भी लड़केके लिए नौसैनिक एडमिरलकी वर्दी पसन्द आई। एक बारमे हजार रुपयेकी चीजें ले लेना उनके लिये

बिल्कुल मामूली बात थी। बूढ़े प्यारेलाल खुर्रांट व्यापारी थे। देख रहे थे, मेम साहबपर सात हजार उधार हो गया है। पहले उधारका कोई रास्ता निकाले बिना वह आगे देना पसन्द नहीं कर सकते थे। जिस वक्त चीजोंको उनके नौकर सँभालनेमें लगे हुए थे, उसी वक्त उन्होंने कोमल किन्तु साथ ही दृढ़ शब्दोंमें कहा—

—मेम साहब, आदमी आपके पास भेजा था, रुपया नहीं मिला। आपने देनेके लिए कहा था।

—ओ, आई एम सॉरी—मेम साहबने तुरन्त नाटकीय ढंगसे जबान दे दरवाजेकी ओर बढ़ते हुए कहा—मैं चेकबुक लाना भूल गई।

अपनी सखी-सहेलियोंसे मेम साहबने चेक लाना भूलना ही नहीं, बल्कि दूसरे भी बहुतसे हथकंडे सीखे थे। मधुपुरीमें कोई जौहरी, जेनरल स्टोर, फोटोग्राफीकी दूकान नहीं थी, जिसका दो-चार हजार उधार 'स्प्रिंग फील्ड' वाली मेम साहबके ऊपर न हो। हर साल आने पर वह हर एकके पास चार पाँच सौ भेज देतीं और आगेके भरोसेपर उनके पास माल आता रहता। सालमें दस हजारका माल लेकर मुश्किलसे वह चार-पाँच हजार दे पातीं। अब उनके ऊपर बीस हजार उधार था। सेठ इसे आसानीसे बेबाक कर सकते थे। मेम-साहबको बुरा लगता था, कि अब वह हाथको उतना खुला रखनेके लिए तैयार नहीं थे। पिछले तीन-चार वर्षोंसे अब सेठको वह उतना अनुरक्त नहीं पा रही थीं। यदि उनकी जातिमें तलाकका रिवाज होता, या ब्याह सिविल-मैरिजसे हुआ होता, तो क्या जाने सेठने पत्नीसे सम्बन्ध कबका तोड़ लिया होता। शायद तब भी यह सम्भव नहीं होता, क्योंकि अपने चारों बच्चोंके साथ सेठका असाधारण प्रेम था। कुछ दिनोंसे दोनोंका सम्बन्ध बहुत शिथिल हो चुका था। मेम साहब कभी-कभी उसास लेकर कहतीं—जब मेरे मुँहपर वसन्त था, तो यह भँवरेकी तरह हर वक्त उड़ा करता था, और अब...।

पति सकोच दिखलाते हुए अब भी अपनी पत्नीके लिए सात महीनोंमें ३०–४० हजार खर्च करता। चार हजार महीना कम नहीं है—यह सोचकर सेठ साहब अपने व्यवहारको बिलकुल उचित समझते, लेकिन मेम साहबका हाथ

कैसे मानता। उन्हें तो ऐसे जीवनकी आदत लग गई थी, जिसमें पैसेका कोई मूल्य नही, आवश्यक या अनावश्यक चीजोकी मात्राका भी कोई सवाल नहीं। जो भी चीज लेती, मॅहगी से-मॅहगी और दर्जनसे कम नहीं। चाकलेटका उतना खर्च नही था, आखिर स्कूलके तीनो बच्चे रोज मॉके पास नहीं आते, बस छोटा लड़का और मेहमान। लेकिन तब भी एक बार वह छ दर्जन अर्थात् नब्बे रुपयेसे कमका चाकलेट लिये बिना नहीं रहती।

बनिये व्यापारी कहा करते हैं, उधार तो व्यापारकी शोभा है। मेम साहब उनकी उसी बातपर ही चल रही थी। उनके पति भी अपने मिलों और कारखानोंके लिए लाखो रुपये बैंको और महाजनोसे उधार लेते और उधार देते भी थे। फिर मेम साहब क्या बुरा कर रही थी? प्यारेलाल जैसे लोग भी तो आख मूँद कर अपने ग्राहकोंको लूट रहे थे। उन्हे भी पचास सैकडा नफा लिये बिना सतोष नहीं होता था। जब वह इतनोको लूट रहे थे, तो पचास ग्राहकोमें एकाध मेम साहब जैसे मिल जाये, तो इसमे नाक-भौं सिकोडनेकी क्या अवश्यकता? फिर वह बिलकुल निराश भी नहीं हो सकते थे, क्योंकि सेठके अब भी पौ-बारह थे। तो भी कितने ही अब जरूर देख रहे थे, कि मेम साहबसे पैसा लौटनेवाला नहीं। मुकदमा चलानेमें और खर्च बढ़नेका डर था और कुछ चीजें ऐसी थीं, जिनके दामको ठीक तौरसे बहीपर चढाया नही जा सकता था।

मेम साहबकी चोटसे प्यारेलाल जैसे धनी सेठ ही घायल नही थे, उनकी चोटसे बेचारे कितने ही मर भी रहे थे। आखिर हर चीजके लिए लिखा-पढ़ी नहीं की जा सकती। दुनिया चाहे कितनी ही बेईमान हो, तब भी बहुत-सी चीजें विश्वासपर दी जाती है। बनारसवाली कीमती साड़ियॉ मेम साहबको बहुत पसन्द थीं। देखनेके लिये चार मॅगवा ली, पीछे पानेसे इन्कार कर दिया, तो कौनसी अदालत उनसे पैसा दिलवा सकती थी? सबसे अफसोसकी बात तो यह थी, कि वह गरीबका भी पैसा मारनेमे आनाकानी नही करती। एक बार फेरीवाला आदमीके सिरपर पुस्तकोका ढेर लिवाये आया। मेम साहबने सौ रुपयेसे ऊपरकी पुस्तकें रखवा ली, और कह दिया दामके लिए दो हफ्ते बाद आना। इसी बीच वह सीजन खतमकर मंसूरी छोड गयी। बेचारा फेरीवाला

मारा गया, वह किसी दूकानमे कमीशनपर किताबे ले घूम-घूमकर बेच रहा था। यदि उसे अगले साल अपने इस कामको जारी रखना था, तो किताबोंका दाम चुकाना आवश्यक था। मेम साहबके मधुपुरी छोडते समय बड़े दूकानदारोंके ही नहीं, बल्कि साग-फलवाले, रोटी-मक्खनवाले, दूध देनेवाले और धोबीके भी बहुतसे पैसे बाकी रह गये। वह अगले वर्षकी आशापर ही संतोष करनेके लिए मजबूर हुए।

५. महाप्रभु

"आओ रमेश, तुम तो गूलरके फूल हो गये ?" कहते हुये श्याम शर्माने अपने मित्र रमेश वर्माके लिये बँगलेके दरवाजेको खोल दिया। मधुपुरी जैसी गर्मियोमे शीतल रहनेवाली हिमालयकी विलासपुरीमे समतल जगह कम ही हो सकती है, और श्याम शर्मा जिस बँगलेमे रहते थे, वह तो माल रोडपर भी नही था, जिसका अर्थ है वहाँ ऊँचाई-निचाईका अधिक होना। रमेश ऊपरकी ओरसे आ रहे थे। उनके चेहरेसे जान पड़ता था, कि कोई अधिक खुशी आज उन्हे मिली है। तरुण-तरुणियोके लिये मधुपुरीमे खुशी दुर्लभ नही और श्यामके मनमें भी आया, कि रमेश अपनी अचिरपरिचिता सुन्दरीका आज और अधिक कृपापात्र बना है। उसके बुलानेपर रमेश भीतर आ गये। श्याम शीशे-वाले बराण्डे (ग्लाजियेर) में ही कुर्सी डाले बैठे थे। रमेशको भी उन्होंने अपने पासकी कुर्सीपर बैठा लिया और हलके मूडमे चुटकी लेते हुये बोले—

—आज बहुत खुश मालूम होते हो, रमेश ?

—सचमुच, मुझे आज बहुत खुशी है।

—लीलाके कृपाकटाक्षके पात्र हुये क्या ?

रमेशके चेहरेमे थोडा-सा परिवर्त्तन आया, उन्हे जान पड़ा कोई अयुक्त चर्चा होनेवाली है। वह अभी-अभी ब्रह्मानन्द प्राप्त करके आया था, और यहाँ उसका कालेजका पुराना सहपाठी विषयानन्दकी चर्चा छेड रगमे भग कर रहा था। उन्होंने कुछ गम्भीर होकर कहा—

—नही, तुम्हारा ख्याल गलत है। लीलासे शिष्टाचारके लिये ही कल्याणी जलप्रपातपर उस दिन परिचय हो गया था।

—हाँ, मुझे भी आश्चर्य हुआ। तुम्हारा भक्तहृदय विषयमे आसक्त कैसे हो सकता है, चाहे यह जानता भी हो, कि बीती जवानी फिर लौटती नहीं।

—इन बातोंको छोड़ो रमेश, कितने सालोंसे मैं जिसे ढूँढ रहा था, वह अनमोल वस्तु मुझे मिल गई।

—अर्थात् तुम ब्रह्मलीन हो गये! बड़ी खुशीकी बात है।

—मुझे आश्चर्य होता है श्याम, तुमने एम० ए० तक संस्कृत पढ़ी और हमारे दर्शनोंका अच्छा अध्ययन किया।

—हाँ, मैंने वेदान्तको विशेष तौरसे पढ़ा और योगको भी। लेकिन उससे क्या?

—मुझे अफसोस होता है, कि मैंने अर्थशास्त्र और राजनीतिमें मत्थापच्ची करी। अब पछता रहा हूँ कि संस्कृतसे क्यों कोरा रहा।

—अबसे पढ़ लो। मनुष्य आजीवन विद्यार्थी रह सकता है, और हम-तुम छुट्टियोंके खतम होने तक दो महीने और मधुपुरीमें रहनेवाले हैं, इस बीचमें मैं नियमसे तुम्हें संस्कृत पढ़ा दिया करूँगा।

—संस्कृतके बिना काम चलता नहीं दीखता, क्योंकि सभी योग और वेदान्तके ग्रन्थ संस्कृतमें हैं।

—योग और वेदान्त जाननेके लिये संस्कृतकी कोई जरूरत नहीं। कबीर-दासने कहाँ संस्कृत पढ़ी थी? हमारे सन्तोंमें शायद ही कोई संस्कृत जानता रहा हो।

—वैसे स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्दके ग्रन्थोंको पढ़कर मुझे बड़ी शान्ति मिली। योग-वेदान्तपर शायद और भी ग्रन्थ अंग्रेजीमें मिल जायँ?

—योग-वेदान्तके प्रायः सभी ग्रन्थ अंग्रेजीमें, और बहुत-से हिन्दीमें भी मिलते हैं। लेकिन, तुमको याद रखना चाहिये, कि सिद्धस्वामी रामतीर्थको भी अन्तमें वेदान्तको मूल संस्कृतमें पढ़नेकी लालसा हुई, और जो ही एक कारण तरुणाईमें ही उनके गंगालाभ करनेकी हुई। मैं तुम्हें संस्कृत पढ़ानेके लिये तैयार हूँ, और बरस-दिनकी पढ़ाई तीन महीनेमें न पढ़ा दूँ, तो मेरा नाम नहीं। यहाँ शुरू कर दो और युनिवर्सिटी खुलनेपर इलाहाबाद चलेंगे, तो वहाँ भी घण्टेभर इसके लिये दिया करना। राम भला करे, तुम्हारे लिये रामतीर्थकी नौबत नहीं आने पायेगी, लेकिन असली बात तो बीच ही में रह गई। ब्रह्म-लीन वर्माजीके इस आनन्दका कारण क्या है?

—मुझे सद्गुरु प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्यामने बड़े गौरसे रमेशके खिले चेहरेपर नजर गड़ाकर कहा—बधाई, बहुत बधाई। लेकिन कहीं तुम्हारा पैर न उखड़ जाय। भाई, मधुपुरी भी हिमालयमें है, जिसकी ही ओर भक्त लोग भागते हैं। पुराने समयमें मुमुक्षु लोग सातों पुरियोंमें ही सद्‌गुरुओंको ढूँढने जाया करते थे। लेकिन अब वह पुरियाँ फीकी पड गईं। मथुरा, उज्जयिनी जैसी पुरियोंमें तो अब कोई मुमुक्षु जाता भी नहीं। दूसरी पुरियाँ भी अपने महात्माओं ही नहीं पण्डोंके लिये मशहूर हैं—और मैं तुम्हें यह बतला दूँ, मेरी दृष्टिमें महात्माओंसे पण्डे हजार गुना अधिक लाभदायक हैं।

—यहाँ तो मुझे आश्चर्य होता है, कि अपने शास्त्रोंको इतना पढ करके भी तुम चिकने घडे ही रहे।

—और रमेश, यह भी समझो, कि हमारी सात नहीं सत्तर पीढियाँ खानदानी गुरु रहती आई है, अभी भी हमारे बड़े-बडे सम्मानित शिष्य मना करनेपर भी चरण छूकर ही मुझे प्रणाम करते हैं। लेकिन फिर कहीं हम दूसरी ओर बहक न जायँ, इसलिये आजकी प्रसन्नताके कारणको बतलाओ। मैं कह ही चुका हूँ, कि पुराने समयके सिद्ध महात्मा लोग गर्मीमें लूसे झुलसती सातों पुरियोंमें लोकानुग्रहके लिए जाया करते थे, और अब उन्हें मधुपुरी जैसी गर्मियोंमें शीतल रहनेवाली पुरियाँ खींचती हैं। पुरानी पुरियाँ भी राजाओंकी राजधानियाँ और विलासपुरियाँ थीं। योग और भोगमें कोई वैर नहीं, और वैर भी हो, तो भी विरोधियोंका समागम प्रकृतिका नियम है। क्या यह बतलाओगे कि तुम्हारे सद्‌गुरुका नाम क्या है?

—तुम्हें तो ऐसे महापुरुषोंसे कोई वास्ता ही नहीं, उनके नामका कैसे पता होगा? कहनेपर भी तुम मजाक उडाओगे।

—श्रद्धाहीन जो ठहरा। लेकिन, रमेश, दूसरेकी श्रद्धापर ठोकर लगाना मैं पसन्द नहीं करता, यह तुम जानते हो। श्रद्धाहीन होनेपर भी मैं हर तरहकी बातोंके जाननेकी इच्छा रखता हूँ। तुम्हारे सद्‌गुरुके लिए मैं कोई वैसा भाव नहीं प्रकट करूँगा। आजकल मधुपुरीमें सेरों लिप्सटिक और पौडर तथा पसेरियों काजल लगानेवाली स्वाभाविक या कृत्रिम सुन्दरियाँ यदि हजारोंकी संख्यामें चलती-फिरती दिखाई पड़ती हैं, तो यहाँ भगवे कपड़ेवालोंकी भी

कमी नहीं है। लेकिन मै जानता हूँ हरेक भगवे कपड़ेको तुम अपना सद्गुरु नहीं मान सकते। क्या श्री १००८ जगद्गुरु'''का कृपापात्र बननेका सौभाग्य तो तुम्हें प्राप्त नहीं हुआ।

रमेशने कुछ अवज्ञा दिखलाते हुये कहा—नहीं, मुझे धर्मके दूकानदारोंसे नफरत है।

—मुबारक हो, तो फिर कौन-सी विभूति प्राप्त हुई है?

—शायद तुमने महाप्रभुका नाम सुना होगा।

—ओह, महाप्रभु, धन्य हो तुम जिसपर वह ढर गये और मै नतलाऊँ रमेश, भगवान्‌के अवतारोंकी संख्या गिनना बिल्कुल गलत है। वह स्वार्थी रहा होगा जिसने अवतारोंकी संख्या दस या चौबीस तक सीमित कर दी। गीतासे बढकर कोई पुस्तक धर्मके लिये प्रमाण नहीं हो सकती, और उसमे भगवान्‌ने एक नहीं अनेक जगह बतलाया है, कि जो-जो वैभव-सम्पन्न तेजस्वी व्यक्ति है, वह मेरा अवतार है, उसे मेरे अंशसे उत्पन्न समझो। जब जब जरूरत पड़ती है, तब-तब मै अवतार लेता हूँ। इसलिये अवतारोंकी संख्या दो दर्जनों तक निश्चित कर देना केवल कपोल कल्पना है। महाप्रभु सचमुच महान् प्रभु हैं, वह भगवान्‌के अवतार हैं।

श्यामने कुछ ऐसी गम्भीरतासे बात करनी शुरू की थी, कि रमेशका भी विश्वास उसके ऊपर हो चला और उसने खुश होकर कहा—

—तो तुम महाप्रभुकी आध्यात्मिक शक्तिको मानते हो?

—श्रद्धाहीन होनेका रमेश, यह मतलब न समझो कि मैंने हमेशाके लिये श्रद्धाको तिलांजलि दे दी है। भाई अभी जवानी है, खाने-खेलनेका समय। हमारे शास्त्रोंने चौथेपनमें योग साधनेके लिये कहा है। बस तुम्हारे और हमारेमें इतना ही फर्क है, कि तुम समयसे पहले उधर जा रहे हो, और मै धैर्यपूर्वक समयकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। महाप्रभुके प्रभु होनेमे मुझे कोई सन्देह नहीं है।

—लेकिन, ऐसी प्रतीक्षामें तुम कहीं वंचित न रह जाओ, श्याम। आज महाप्रभुकी ६५ वीं वर्षगाँठ थी। अनेक नर-नारी महाप्रभुके दर्शन और पूजाके लिये गये थे।

—और तुमने रमेश, ५१ रुपये चढाये या नहीं?

—चढाना कोई जरूरी नही है, यह तो अपनी-अपनी श्रद्धाकी बात है।

श्यामने अपने पास पड़े हुये अखबारके पन्ने उलटकर उसमेंसे एक तस्वीर दिखलाते हुए कहा—देखो यह महात्मा भी भारतकी दिव्य विभूति थे, अफसोस है उन्हे दिवंगत कहना पड़ेगा। किसीसे पैसा-रुपया नहीं लेते, यही उनकी ख्याति थी, लेकिन, जिसका अर्थ था सौ-दो-सौ रुपये चढ़ावा लेनेवाले वह नही थे। पिछले साल मधुपुरीसे जाड़ोंमे जब नीचे गये, तो चेले-चाटोंने ही सोना-चॉदी और नगद मिलाकर उनके एक लाखपर हाथ फेर दिया।

—और तुम कहोगे कि उसीके अफसोसमे महात्माको यह लोक छोड़ना पड़ा।

—नही, मै यह नही कहने जा रहा हूॅ। मै जानता हूॅ कि महाप्रभुके दर्शनके लिये दूर-दूरसे भद्रपुरुष और महिलाये मधुपुरी दौड़ी आ रही हैं। दिल्लीके आई० सी० एस० भद्रपुरुषोंकी महिलाये तक चॉदनी चौकमे माला गुथवाकर अपनी मोटरमे दौड़ी मधुपुरी आज पहुँची होंगी, इसमे सन्देह नहीं। यह तो साधारण आदमी भी समझ सकता है, कि महाप्रभुमे कोई दिव्य चमत्कार है, नहीं तो इतने सुशिक्षित और सुसंस्कृत नरनारियोंने कोई भाग थोड़े ही पी रक्खी है।

रमेशको मालूम होने लगा कि श्यामके भावोमे परिवर्त्तन हुआ है। आखिर इधर काफी समयसे दोनोके दो रास्ते होनेके कारण जब-तब नमस्ते भर करनेका ही नाता रह गया था। उसने महाप्रभुकी जयन्तीके बारेमे सविस्तर बतलाया और इसके लिये अफसोस प्रकट किया कि श्यामको वहाॅ जानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। महाप्रभुके दर्शन करने जो पिछले सात-आठ दिन गया था, उसमे राम उनकी जीवन-लीलाकी कुछ बातें सुन चुका था, जिन्हे यहाॅ दोहराना वह आवश्यक समझता था, ताकि श्यामके ऊपर कुछ और प्रभाव पड़े।

श्यामने सब सुनकर कहा—लेकिन रमेश, तुमने केवल रामायणका उत्तरकाण्ड ही सुना है, और जबतक सातो काण्ड न सुने जायॅ, तबतक प्रभुचरित्रके मूल्यको अच्छी तरह नही समझा जा सकता।

रमेशने उत्सुकतापूर्वक पूछा—तो तुम्हें महाप्रभुके बारेमें मुझसे बहुत अधिक मालूम है। तो बतलाओ ना ?

—हाँ, मुझे बालकाण्डसे लेकर उत्तरकाण्डतक सारा प्रभुचरित्र ज्ञात है। लेकिन, उसे आज नहीं कहा जा सकता, फिर किसी दिन।

—तो बालकाण्ड ही सही।

—इतनी आतुरता नही करनी चाहिये, मैं महाप्रभुचरित्रको बालकाण्डसे अन्ततक सुनाऊँगा, लेकिन आज नहीं। आज तो यह देखो मोल चाय लेकर आया, दो-दो बिस्कुट और चाय पीकर आज हम छुट्टी ले ले।

(२)

रमेश जानते थे, कि शाम ४ बजे बाद अपने बँगलेमे नहीं मिल सकते, और उन्हे प्रभुचरित्र सुननेकी बड़ी उत्सुकता थी। वह अगले दिन सबेरे ही चाय पीकर श्यामके बँगलेपर पहुँच गये। उन्हें अफसोस हो रहा था, कि क्यो नहीं मैंने भी इसी बँगलेम अपने रहनेके लिये कमरे ले लिये। श्यामसे वह सस्कृत भी पढनेवाले थे और प्रभुचरित सुननेके लिये भी उत्सुक थे। उनके कुर्सीपर बैठते ही श्यामने कहा :

—तो फिर सस्कृतका पाठ चले या महाप्रभु-चरित।

—दोनों ही, लेकिन प्रभुचरित पहले हो तो अच्छा।

श्यामने गम्भीर मुखमुद्रा धारण करते हुये अपने हैटको एक कुर्सीपर रख दिया और तुलसीकृत रामायणकी कथा करनेवालोंके लेहजेमें "कथा आरम्भित होत है .." आदि वाक्योको भी दोहराया। रमेशको कुछ अचरज करते हुये देखकर श्यामने कहा—जहाँ-जहाँ रामचर्चा होती है, वहाँ-वहाँ उसे सुनने के लिये हनुमानजी पहुँचते हैं। हमारे गाँवमें लोग अपने साफे या चद्दरको गोल बनाकर हनुमानजीके लिये आसन देते थे, अब हमारे-तुम्हारे जैसे हैटकोटधारियो के पा० वह है ही नहीं, इसलिये हैटको ही मैंने हनुमानजीके आसनके लिये रख दिया। लेकिन, एक बात कह दूँ रमेश, प्रभुचरित तो 'हरिकथा अनन्ता' है, इसलिये मुख्य चरित्रपर पहुँचनेमें कितना समय लगेगा यह मै नही कह सकता। उसके समझनेके लिए मै पहिले क्षेपक या शाखा-कथायें आरम्भ करता हूँ।

भारतकी सभी जगहोंसे काशी (बनारस) नजदीक नहीं है, इसलिये सभी ब्राह्मण-पुत्रोंको उससे लाभ उठानेका अवसर नही मिलता, तो भी हरेक प्रदेशमें छोटी-बड़ी काशियाँ मौजूद हैं, जहाँ निर्धन ब्राह्मण-पुत्र क्षेत्रमे रोटी खा किसी

पाठशालामें मुफ्त संस्कृत पढ़ सकते हैं। जानते हो, अंगरेजी अर्थकरी विद्या है, लेकिन उसके लिये फीस, किताबें और शहरमें खानेका इन्तिजाम करना धनिकोंके ही बूतेकी बात है। दूसरी जातवाले तो गरीब होनेपर पढ़नेका नाम नहीं ले सकते, लेकिन पूर्वजोंकी कमाई समझ, हमारे ब्राह्मण-पुत्रोंके लिये कमसे कम संस्कृत पढ़ लेना कोई कठिन बात नहीं है। टीकाराम ऐसा ही ११-१२ वर्षका एक गरीब ब्राह्मण-पुत्र था। घरमें वैसे भी भरपेट खाना उसे उसी दिन मिलता, जब किसी यजमानके यहाँ भोज होता। टीकारामका परिवार था तो ब्राह्मणोंका, लेकिन सात पीढ़ीसे उसका सरस्वतीके साथ छत्तीसका ही सम्बन्ध था। पर, घरका खानदानी पुरोहित चाहे, अपढ़ हो या सुपढ़, यजमान तो उसे नहीं छोड़ सकते ! टीकारामके दुर्भाग्यसे यजमानोंकी जितनी संख्या थी, उतनी ही पुरोहितोंकी और यजमान बहुत धनी भी नहीं थे। जिस वक्त टीकाराम अपने प्रदेशकी छोटी काशी शिवपुरमें पहुँचा, तो उसके बदनपरका कुर्ता और धोती बहुत मैले और पैबन्द लगे थे। रंग और शकल-सूरतमें वह अच्छा था, लेकिन मांसके बिना केवल हड्डी क्या खूबसूरती प्रकट करती है ? उसका दूरका कोई रिश्तेदार कई सालोंसे शिवपुरमें पढ़ता था। उसीका नाम पूछते-पूछते वह एक दिन शिवपुरमें उसके डेरेपर पहुँच गया। रिश्तेदार विद्यार्थीको उसी दिन पता लगा था, कि उसके क्षेत्रमें एक विद्यार्थीकी जगह खाली है। इसे टीकारामका सौभाग्य समझिये, जो आते ही क्षेत्रमें रोटीका प्रबन्ध हो गया।

टीकारामको लघुकौमुदी भी मिल गई, जिसे पुराने ढंगसे पढ़ना था, अर्थात् पहले एक-दो वर्ष अर्थके बारेमें कोई भी चिन्ता न करते पुस्तकको रटते जाना था। कुछ विद्यार्थी अमरकोष भी घोख रहे थे, लेकिन टीकारामने लघु-कौमुदीको ही अपने लिये काफी समझा। अक्षरका परिचय गाँवमें हुआ था। गाँवके प्राइमरी स्कूलमें वह सालभरसे अधिक नहीं पढ़ सका था और जो पढ़ा भी था उसे भी दो-तीन वर्षकी चरवाहीमें भूल-सा गया था। रिश्तेदार विद्यार्थीकी सहायतासे अक्षर उसे फिर याद आ गये, लेकिन लघुकौमुदी पढ़नेलायक वह दो महीनेसे पहले नहीं हो सका। उसे मंगलाचरणका श्लोक पढ़ा दिया गया और फिर हफ्तों बाद अ इ उण्...। टीकारामको कोई जल्दी नहीं थी।

तीन-चार महीने बीतते-बीतते उसकी हड्डी मांससे ढँक गई, चर्बी भी कुछ

बढ़ गई। क्षेत्रमे दोनो वक्त फुलके और दाल पेटभर मिल जाया करते, और कभी-कभी ब्रह्मभोजमे भी जानेका मौका मिलता। भोज अगर साधारण भी होता, तो भी हलवा-पूरी तो जरूर होती, नही तो खीर, मालपूआ, लड्डू और दूसरी मिठाइयॉ भी होती। अब वर्षोंसे शहरमे रहनेवाले विद्यार्थी दोस्त भी मिल गये थे, जिनकी सहायतासे शहर उसके लिये अपरिचित नहीं रह गया। आगे तो ढूँढ-ढूँढकर परिचय प्राप्त करनेको उसने अपनी दिनचर्या बना ली। छ महीने बीतते-बीतते उसका रिश्तेदार विद्यार्थी जब आगेकी पढाईके लिये काशी चला गया, तो टीकारामने बड़े सन्तोषकी सॉस ली, क्योंकि वह टीकाको पढनेके लिये तग किया करता था। छ महीनेमे टीकाराम पञ्च-सन्धि तक पहुँचा था, लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि लघुकौमुदीके तीन-चार पृष्ठ उसे कण्ठस्थ हो गये थे। अब उसने लघुकौमुदीको ताकपर रख दिया था, और कभी-कभी उधर हाथभर जोड लेता। उसका परिचय भले-बुरे सभी आद-मियोसे काफी हो गया था, इसलिये उसके पास दरअसल समय भी नही था। बरस बीतते-बीतते उसे क्षेत्रकी भी उतनी परवा नही रह गई। महीनेमे १५-२० दिन तो जरूर भोजका निमन्त्रण उसे मिलता। भोज खानेके दिन पहले ही भंग छनती और भूख बढ़ाकर अपने साथियोकी तरह टीकाराम भी ललाटमें भस्मका त्रिपुण्ड लगा सफेद कुर्ता-धोती पहने भोजमे पहुँचता। जिस दिन भोज हो, उस दिन जरा भी समय निकालना टीकारामके लिये सचमुच असम्भव था।

रमेशने बीचमे टोककर कहा—तो इसका अर्थ है, टीकाराम विद्यासे कोरा रह गया।

—यदि विद्यासे मतलब तुम्हारा किताबी ज्ञान है, तो वह जरूर कोरा रह गया, लेकिन मै केवल किताबी ज्ञानको ही विद्या नहीं समझता। एक समय था, जब हमारे ऋषि-मुनि किताबका नाम नहीं जानते, और गुरु-मुखसे विद्याको सुनते हुये विद्वान् बनते थे।

—तो तुम्हारा मतलब है, टीकाराम सुनकर विद्वान् बनने लगा।

—कुछ-कुछ ऐसा ही, लेकिन तुम्हे यह भी मालूम होना चाहिये, कि विद्यायें भी कई तरहकी हैं। टीकारामने सबसे बड़ी जिस विद्याको सीखनेकी ओर ध्यान दिया, वह था एक शहरी सस्कृत तरुणकी रहन-सहन, बोलचालको

अपनाना। वैसे टीकारामको बुद्धि देते समय ब्रह्माने कुछ कजूसी जरूर की थी, लेकिन उसमें व्यावहारिक बुद्धिकी कमी नहीं थी। शिवपुरमें दो साल रहते-रहते तो अब वह बड़ा चलता-पुर्जा हो गया था। यदि किताबसे नहीं पढ़ता, तो लोगोंसे सुनकर और उन्हें देखकर वह बहुत कुछ सीख रहा था।

टीकारामकी यही दिनचर्या छ-सात वर्षतक चली। वह १८ वर्षका तरुण हो गया। लघुकौमुदी अभी भी उसी तरह ताकपर विराज रही थी। उसने पंचसन्धिसे आगे बढनेकी कोशिश नहीं की, यह उसकी पुस्तकको उठाकर भी आप देख सकते थे। जहाँ पुस्तकके शुरूके चार-पाँच पन्ने हाथके बहुत लगनेसे टूटे और गन्दे हो गये थे, वहाँ बाकी पन्ने अभी नये जैसे मालूम होते थे। शिवपुरके रहनेमे एक फायदा टीकारामको यह जरूर हुआ, कि वह हिन्दीकी कोई-कोई कहानियोंकी किताब भी कभी कभी पढने लगा। चाहे बुद्धि बहुत तीव्र न हो, तो भी मै यह कहूँगा, कि यदि टीकाराम थोड़ा मेहनत करनेके लिए तैयार होता, तो विद्याके बारेमें इतना कोरा नहीं रहता। आगे उसे आर्यसमाज और सनातनधर्मके लेक्चरोंमें जानेका भी चसका लग गया। शिवपुरमे भिन्न-भिन्न धर्मोंके लोगोके शास्त्रार्थ हुआ करते थे, जिनमें टीकारामका उपस्थित होना अनिवार्य था। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि सस्कृतकी शिक्षासे वन्चित तथा दूसरी विद्याका भी पुस्तकी ज्ञान न होनेपर भी टीकारामका ज्ञानक्षेत्र बहुत संकुचित नही रहा। जब कोई साथी पढ़नेकी ढिलाईके लिए उसका मजाक करता, तो वह कहता—भाई, मैने ऋषियोंके मार्गका अवलम्बन कर केवल कानको ज्ञानका साधन माना है।

टीकारामका समय इसी तरह बीतता गया। लड़कपन खतम हुआ और तरुणाई आ गई। उसे खाने कपडेकी चिन्ता नही थी, साथ ही कभी उसका हाथ खाली नहीं रहता। भोजनमे दक्षिणा मिलती, कभी किसी नागरिकके घर जप-पूजा करता, उससे भी कुछ मिल जाता। पैसोंको खर्च करनेमे वह उदारता नही रखता था, और इस प्रकार उसके पास पैसे जमा होते ही गये, जो बूँद-बूंद करके अब कुछ सौ रुपयोंतक पहुँच गये।

श्यामने टीकारामके विद्यार्थी-जीवनकी बातें रमेशको बतलाई, और उस दिन बातचीत यहीं तक रही।

(३)

दो दिन बाद फिर रमेशके आनेपर श्यामने टीकारामके चरित्रको समाप्त कर देनेका निश्चय करते हुये बतलाया—टीकाराम २५ वर्षके हो गये। अब उनको सभी पण्डित टीकाराम कहते थे। शहरके बहुतसे परिवारोंमें उनका परिचय था। उनके घरोंकी स्त्रियाँ तो टीकारामको बहुत भारी पण्डित समझती थी। संस्कृतके श्लोकोंको वह बड़े मधुर स्वरसे पढ़ते, अर्थ करनेके लिए कठिनाई नहीं थी, क्योंकि कितनी ही पुस्तक भाषा-टीकाके साथ छपी मिलती थी। टीकाराम चाहते, तो इसी तरह अपने जीवनको बिता सकते थे। उन्हें खाने-कपड़ेकी दिक्कत नहीं होती, पैसे भी और आ जाते, लेकिन २५ वर्षके होनेके बाद अब उनका दिल मसोसने लगा : "मैंने कुछ नही पढ़ा। कितने दिनोंतक इस तरह रोटी तोड़ता रहूँगा।" वह मनस्वी तरुण थे, छोटी सफलताओंसे सन्तुष्ट होनेवाले नही थे। देखा था, उनकी आँखोंके सामने कितने ही शास्त्री और आचार्य हो गये, कोई-कोई तो उसके साथ एम० ए०, एम० ओ० एल० होकर किसी कालेजमे प्रोफेसर भी हो गये, और उनका बहुत सम्मान था। वेतन भी अच्छा था और उसके बढ़नेकी सम्भावना थी। टीकारामके लिये अब वह सम्भव नहीं था, लेकिन उनकी व्यवहार-बुद्धिका लोहा सभी मानते थे। वह बहुत चलते-पुर्जे थे, यद्यपि बुरे अर्थोंमे नही। उनको भी अपने ऊपर विश्वास था। वह समझते थे, कि सरस्वती भी लक्ष्मीके यहाँ पानी भरती है। यदि किसी तरह लक्ष्मीकी साधना की जा सके, तो मैं अपनी कमीको पूरा कर सकता हूँ।

टीकारामको लटके बहुत आते थे। उनकी बातोंको लोग मुग्ध होकर सुनते थे। उन्होने शिवपुरकी सड़कोपर जब-तब दवाई बेचनेवालेको देखा था, जिसके लटकों और बोलनेके ढगसे मुग्ध होकर पचीस पचास आदमी जमा हो जाते और वहाँ वह अपनी दवाइयोंकी प्रशंसामे बोलने लगता—आँखकी अक्सीर दवा, यदि फायदा न हो तो एक महीनेतक जब चाहे तब अपना पैसा लौटा लें। भीड़मेसे एक-दो सिखाये हुये आदमी कह उठते, हाँ, हमे आपकी दवासे फायदा हुआ है, दो शीशी और दीजिये। कितनों ही की आँखोंमे वह अपनी दवाइयाँ भी लगाता, घण्टे-दो घण्टेमे दो-चार रुपयेकी दवाई बेच लेना

मामूली बात थी। टीकाराम ऐसे फेरीवाले दवाफरोशोंको अक्सर देख चुके थे, और उन्हे विश्वास था, कि मैं इस काममें उनसे कम सफल नहीं रहूँगा। लेकिन, फिर उन्हे खयाल आता, "इनकी इज्जत ही क्या है और पैसा भी तो बहुत कम मिलता है"। तब उनका ध्यान ऐसे दवा बेचनेवालोंकी ओर गया, जिन्होंने उसके शिवपुरमें आनेके थोड़े ही समय पहले काम शुरू किया था और अब लाखोंके मालिक थे। टीकारामने यह भी देखा कि ऐसे लखपति दवा-फरोश बननेके लिये किसी वैद्यकशास्त्रके पढनेकी अवश्यकता नही। खाक-धूल भी अगर शीशीमें भरकर लाखोंकी सख्यामें बेची जाय, तो सौ-पचासकी बीमारी तो स्वभावतः ही अच्छी हो जाती है, जिनके लिये यह पेटेंट दवा रामबाण कही जाने लगेगी। लेकिन, टीकारामको खाक-धूल शीशीमे भरकर बेचनेकी जरूरत नही थी। अपने मिलनेवाले साधुओंसे एकाध अच्छी दवाइयाँ उन्हे मालूम हो गई थीं, जिनको वह कभी-कभी अपनी यजमान-महिलाओंको बतलाया भी करते थे। लेकिन दवा बेचनेवाली कम्पनी कायम करना आसान नहीं था। उसमे पहले विज्ञापनमे बहुत पैसा लगता, यदि उन्होने बीस वर्ष पहले यह काम शुरू किया होता, तो सम्भव है, इतना महँगा न पड़ता। अब बहुत-सी धारायें और सिन्धुयें निकल आई थीं, जिनके मुकाबिलेमें आगे बढना बहुत पैसेके बलपर ही हो सकता था। टीकारामको अन्तमे अपना यह सुझाव पसन्द नहीं आया।

फिर जल्दी धनी होनेका रास्ता क्या है, यह सोचते हुये उनका ध्यान किसी जगत्गुरु या महन्तका चेला बन जानेकी ओर गया। लेकिन, जगत्गुरु बनना सम्भव नहीं था, क्योंकि उनके पास विद्या नहीं थी, विद्या होती भी तो भी जगत्-गुरुओंके बीसों चेले होते है, न जाने किसका पासा पड़ता, टीका-राम जिन्दगीके साथ जूआ खेलनेके लिए तैयार नहीं थे। वैसे शकल-सूरतसे टीकाराम सचमुच महन्त होने लायक थे। शिवपुरमे भी धनी मठोकी कमी नहीं थी, और सभी मठोंके उत्तराधिकारी बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन महन्त बननेके लिए भी किसी महन्तका भाई-भतीजा-भाजा होना चाहिये, या किसी और तरहसे घनिष्ठता प्राप्त करनेका अवसर मिलना चाहिये। टीकारामने

कुछ साल पहले इसके लिए कोशिश की होती, तो शायद इसमें सफलता भी होती। लेकिन अब वह उतना आसान काम नहीं था।

महताई और जगत्गुरुकी गद्दीका ख्याल करते-करते उनका ध्यान एक दूसरी ओर चला गया, और उनकी ऑखें चमक उठीं। उन्होंने चुटकी बजाते हुये कहा—"हॉ, यह काम है मेरे करनेका। मै क्यों किसीका चेला और कृपा-पात्र बनता फिरूँ। हमारे देशमे श्रद्धा रखनेवालोंकी कमी नहीं। श्रद्धा गली-गली फिर रही है। अधिकतर लोग श्रद्धाप्रधान है। उसी श्रद्धाको रास्ते लगानेकी आवश्यकता है। मैं इसे कर सकता हूँ। उतने खर्चकी भी आवश्यता नहीं। मै गुरु बन सकता हूँ, सिद्ध बन सकता हूँ। रंग-मञ्चपर अभिनेता दो-तीन घण्टे अभिनय करता है, सिद्ध और महात्मा बननेके लिए प्रायः चौबीसों घण्टे अभिनय करना पडता है, यह कठिन जरूर है, लेकिन मेरे लिए असाध्य नहीं है"।

टीकाराम बोलने-चालनेमे बहुत कुशल थे, और भाषाटीकाके साथ नमक-मिर्च लगाकर बड़े आकर्षक ढंगसे कथायें कह सकते थे। यह संयोग ही समझिये, कि वह आर्यसमाज या सनातनधर्मके उपदेशक नहीं हुये, नहीं तो उनके पास वाणी और ज्ञानकी इतनी पूँजी थी, कि वह सफल उपदेशक नहीं, बल्कि महामहोपदेशक बन जाते। शायद अभी भी यह अवसर सदाके लिए हाथसे नहीं गया था, लेकिन जब उन्हें सिद्ध और महात्मा बननेका ख्याल आया, तो उन्हे वह सब तुच्छ जान पड़ने लगा।

(४)

हरिद्वारमे गंगाकी नहरके किनारे-किनारे गोरवर्ण भव्य रूपवाले एक तरुण भगवाधारी सन्यासी जा रहे थे। उनके साथके तीन आदमियोंमे एकके पास सुनहले कामवाला रेशमका बड़ा छत्ता था, दूसरेके पास कालीनकी एक सुन्दर आसनी, और तीसरेके पास गंगा-जमुनी मुट्ठीका चँवर था। सन्ध्याके ५-६ बजे थे, जब कि यह मण्डली जाकर एक साफ-सुथरे स्थानपर ठहर गई। आसनवालेने आसन बिछा दिया। महात्मा उसपर पद्मासन मार कर बैठ गये। छत्रवालेने छत्र धारण कर लिया और दूसरा आदमी खड़ा होकर चॅवर डुलाने लगा। तीन-चार भगत भी आकर बैठ गये। थोड़ी देरमे और भी दस-

पन्द्रह पुरुष और महिलायें आ गयीं। स्थान इतना साफ-सुथरा था, कि किसीके कपड़े मैले होनेका डर नहीं था। पहले हीसे धर्म-चर्चा छिड़ गयी थी, जिससे कोई अपनेको वञ्चित नहीं रखना चाहता था। सन्यासीका चेहरा जैसा भव्य दीप्तिमान् था, उसी तरह उनके मुँहसे अमृतकी वर्षा हो रही थी। उनके स्वरमें जितनी नम्रता थी, उससे भी अधिक मधुरता थी। पहले-पहल महापुरुषको यहाँ देखकर जिज्ञासा होना स्वाभाविक था, खासकर जब उनकी वाणीकी मिठास हर आदमीको आत्मीय बना रही थी। किसीने पूछा :

—महाराज, आपका दर्शन पहले-पहल करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। क्षमा करें यह पूछनेके लिये, कि आप कहाँसे पधारे ?

—इस शरीरके बारेमें क्या पूछते हो प्यारे। यह शरीर तो यों ही चलता फिरता रहता है। नाम रूपकी माया है। उसमें क्या रक्खा है।

जिज्ञासुको अपना प्रश्न अयुक्त जाचने लगा और वहाँ बैठे हुये दूसरे श्रोता भी उसे अमृत-वर्षामें विघ्न समझने लगे थे। एक महीनातक महात्माने हरिद्वारमें रहते इसी तरह अमृतवर्षा जारी रखी। उनको बराबर गंगाकी नहरके किनारे जानेकी अवश्यकता नहीं थी। कभी वह गंगाके किसी तरफ या किसी बगीचेमें चले जाते। आठ-दस दिनोंमें ही हरिद्वारमें आये श्रद्धालुओंके पास महापुरुषकी ख्याति पहुँच गई, वह हर जगह उन्हे घेरे रहते। कम्खाबके छत्र, रुपहले-सुनहले चँवर, और कीमती आसनोंके साथ-साथ कभी बारीक सूती और कभी रेशमी भगवा कपड़े को देखकर किसी-किसीको इसमें विलासिता मालूम होती, लेकिन महात्माको मालूम था, कि ऐसे अ-श्रद्धालुओंसे क्या होने-जानेवाला है ? श्रद्धालु तो यही समझते थे कि सन्त और सिद्ध 'अनेक रूप-रुपाय' हैं।

सन्यासी इसी तरह देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें विचरते रहे। उनके तीन अनुचर छत्र-चामर-आसन लिये तथा एक रसोइया बराबर उनके साथ रहते। आरम्भमें हरेक काममें कुछ पूँजीकी आवश्यकता होती है, और उतनी पूँजी पासमें थी ही। जब भक्तोंके हृदयको जीता जा सके, तो पैसोंकी क्या कमी हो सकती है ? अखण्ड अभिनय इसी तरह जारी रहा और कुछ वर्षोंमें महात्माके आस-पास स्त्री-पुरुषोंकी एक अच्छी खासी शिष्यमण्डली जमा हो गई। वह

शुद्ध सत्संगवाले महात्मा थे, अर्थात् मन्त्र-तन्त्र या दवा-दारू नहीं करते थे। वह किसीका भाग्य नहीं देखते थे, यद्यपि कितने ही समय वह ऐसी बात बोल देते, जिससे उनके शिष्य विश्वास करने लगे थे, कि वह अन्तर्ज्ञानी और आगमज्ञानी हैं।

महात्मा भक्ति नहीं ज्ञान पक्षके माननेवाले ब्रह्मज्ञानी थे। निश्चलदासके वचनोंमें ही नहीं बल्कि अपने शिष्योंके विश्वासके अनुसार भी 'ब्रह्मरूप है ब्रह्मवित्, ताकी वाणी वेद' वाली बात थी। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि महात्मा ब्रह्मनाथ—जो अब महाप्रभुके नामसे प्रसिद्ध थे—निश्चलदासके 'विचारसागर' और कालीकमलीवालेके 'अनुभव प्रकाश' जैसे ग्रन्थोंको देख-देखकर वेदान्तमें निष्णात हो गये थे। उनके शिष्य हमेशा उन्हें या तो आसनमारे आँख मूँदकर ब्रह्मलीन देखते या भक्तोंको उपदेश करते। उनकी वाणीमें, महापुरुषकी वाणीका जादू था। जादू था उनका असाधारण मधुर स्वर तथा बात करनेका ढंग। शिष्यगण समझते, कि वाणीसे ब्रह्म फूट निकल रहा है। यद्यपि अपने बारेमें कहनेपर वह 'इस शरीरका क्या है' कहकर टाल देते, लेकिन अपने भक्तोंके परिवारके एक-एक व्यक्तिका नाम उनको याद था। लोगोंको आश्चर्य होता, जब कितने ही समय बाद मिलनेपर भी महाप्रभु घरभरके आदमियोंका नाम लेकर पूछते। इतनी तीव्र स्मरणशक्ति होनेपर निश्चय था, कि यदि महाप्रभु थोड़ी मेहनत करनेके लिये तैयार होते, तो उन्हें लघुकौमुदीके पंचसन्धितक रुक जानेकी आवश्यकता न होती।

महाप्रभु अब अधिकतर दो-तीन शहरोंमें ही रहा करते, जहाँपर उनके श्रद्धालु बराबर उनके मुखारविन्दसे अमृतपान किया करते। बहुतसे सत्संगी उनको घेरे रहते और वह भी उनको कृतार्थ करनेमें कोई कसर नहीं रखते।

(५)

रमेशको अब श्यामकी बातोंसे मालूम ही हो गया था, कि गाँवका ११-१२ वर्षका ब्राह्मण-पुत्र, जो फटे चीथड़ोंमें शिवपुर आया था, वही यह उसके महाप्रभु हैं। जो बातें उनके बारेमें उसे श्यामने बतलाईं, उससे रमेशकी श्रद्धामें कोई कमी नहीं हुई। वस्तुतः श्रद्धा ऐसा अभेद्य कवच है, जिसमें तर्क या बुद्धिके बाण घुस नहीं सकते। वह अब श्यामके पास संस्कृत पढ़ने लगा

था, इसलिये सारे प्रभुचरितको सुन लेनेमे भी कोई उजुर नहीं था। श्यामने अन्तिम काण्डको इस प्रकार कहकर समाप्त किया।

महाप्रभुकी शिष्यमण्डलीमें पुरुष भी थे, स्त्रियाँ भी थीं, वृद्ध-वृद्धाएँ भी थीं, तरुण-तरुणियाँ भी। एकमेवाद्वितीय ब्रह्मका उपदेश देते गद्गद होकर वह कहते "मैं और मेरा, तू और तेरा यही अज्ञान है। ब्रह्म न पुरुष है न स्त्री, वह तो एक है। कर्म-धर्म यह सारा माया है, जो ब्रह्ममें हो ही नहीं सकती। वह तो निर्लेप है।" एक-एक अक्षरको तोल-तोलकर अर्धनिमीलित नेत्रोंकी मुद्राके साथ जब महाप्रभु कहते, तो श्रोतृमण्डली मुग्ध हो जाती। इसी श्रोतृमण्डली मे करमा नामकी एक तरुणी—तरुणी नहीं बल्कि कुछ-कुछ प्रौढा थी। वह अपने धनी परिवारके साथ महाप्रभुकी शिष्यमण्डलीमे सम्मिलित हुई थी। वर्षोंसे उनका उपदेश सुनती आई थी। उसके हृदयमे अपार श्रद्धा थी। धीरे-धीरे महापुरुषका वर्ताव करमाकी ओर अधिक मधुर हो चला, जिसे उसने भगवान् की असाधारण दया समझा। लेकिन स्त्री-पुरुषका घनिष्ठ सम्पर्क चाहे वह ब्रह्म-ज्ञानके क्षेत्रमे हो या किसी और क्षेत्रमे, वह उनके स्वाभाविक सम्बन्धमे परिणत हुये बिना नहीं रहता। यदि करमाको इसका पता होता, तो शायद उसने महापुरुषको इतनी घनिष्ठता स्थापित करने नहीं दिया होता। लेकिन वह भी तो एक स्वाभाविक स्त्री थी। महाप्रभु जानते थे, कि उनकी श्रद्धालु शिष्यमंडलीने उन्हें सचमुच भगवान् मान लिया है, और भगवान्के बारेमे वह अपनी चिर-पोषित श्रद्धाको तोड नहीं सकते। लेकिन उन्होंने यह अच्छा नहीं समझा कि करमा के साथ गुप्त सम्बन्ध रक्खे। करमा भी इसके लिये तैयार नहीं थी। महा-प्रभुके सामने ऐसे अनेक उदाहरण थे, जहाँ सिद्धो, सन्तो और देवगुरुओंने शक्ति को अपनाया था। एक दिन करमा उसी तरह महाप्रभुकी शक्ति बन गई! शिष्य-मण्डलीकी श्रद्धा और भी जगी, जब महाप्रभुने किसी पौराणिक आख्यानको कह अपने और करमाके युग-युगके सम्बन्धको बतलाया। अबसे शिष्यमडलीकी दृष्टिमें करमा भी पूजनीया भगवती बन गई। 'उसके भी चरण छूये जाने लगे, उसे भी अंग्रेजीवाले बड़े-बडे अफसर और उनकी स्त्रियाँ 'हर हॉलिनेस्' कहने लगी। लेकिन हर हॉलिनेस् होकर भी करमाकी दृष्टिमे महाप्रभु अब पहले जैसे नहीं रह गये। मायामय ससारमे एकका दो और दोका चार होता ही

रहता है। महाप्रभु और उनकी शक्तिको गणेश और कार्तिकेयकी तरह दो पुत्र प्राप्त हुये। महाप्रभुने स्वयं उनको हृदयप्रिय कहना शुरू किया और दोनों उसी नामसे पुकारे जाने लगे।

महाप्रभुके भक्त सारे हिन्दी-भाषी भारतके बड़े-बड़े शहरोंमें हैं—पुराने विचारवाले लोग कम और नवशिक्षित बाबू तथा सेठ लोग अधिक हैं। अब उनका काम तीन अनुचरोंसे नहीं चलता। उनके साथ दर्जनों आदमी रहते हैं। अपनी मोटर है, खूब अंग्रेजी जाननेवाला प्राइवेट सेक्रेटरी है और अखबारोंमें दिये बिना उनका विज्ञापन बड़े जोर-शोरसे होता है।

श्यामने हालकी निम्न घटना सुनाते हुए अपनी कथाको समाप्त किया।

जयन्तीमें परिचित या अपरिचित हरेक विशेष व्यक्तिके पास मधुपुरीमें छपा निमन्त्रणपत्र भेज देना महाप्रभुके प्राइवेट सेक्रेटरीका काम है। भक्तोंके साथ किसी अपरिचित भद्रपुरुष का भी वहाँ पहुँच जाना स्वाभाविक है। ऐसे ही प्रादेशिक राजधानीके एक कालेजके प्रिंसिपल भी पहुँच गये। शिष्टाचार दिखलानेपर महाप्रभुने समझा, कि यह भी हमारे भक्त हो गये हैं। कुछ समय बाद प्रिंसिपल साहबके पास प्राइवेट सेक्रेटरी का एक पत्र पहुँचा—महाप्रभु आपपर अपार करुणा करके अपने हृदयप्रियों और हर हॉलिनेसके साथ आपके यहाँ पधारना चाहते हैं। उनके साथ बारह व्यक्ति होंगे। उनके अनुरूप स्वागत-सत्कार करना आप जानते ही हैं, और यह भी जानते हैं, कि उनको पूजा-प्रतिष्ठाकी कोई भूख नहीं, वह तो आपकी अपनी श्रद्धा-भक्ति पर निर्भर है।

प्रिंसिपल साहबको बहुत अच्छा तो नहीं लगा, लेकिन जब उन्होंने देखा, कि उनके विद्यार्थियोंमें कुछ करोड़पति सेठोंके लड़के भी हैं, जिनके घरोंमें ऐसे महात्माओंकी पूजा-प्रतिष्ठा होती ही रहती है, तो उन्होंने एकके मत्थे मढ़ दिया। महाप्रभु एक दिन सदलबल वहाँ पहुँच गये। उनका स्वागत-सत्कार ऐसे भी होना था, लेकिन जब उनके मुखसे अमृतवर्षा होने लगी, तो उस नगरीमें भी श्रद्धालुओंकी कमी नहीं दीख पड़ी।

रमेशको महाप्रभुचरितको सुनकर दुविधा तो जरूर पैदा हुई, लेकिन श्रद्धालु पुरुषके पास वह बहुत दिनोंतक फटकने नहीं पाती।

६. लिप्स्टिक

(१)

"कुंजाकी बहूको भी देखा तुमने" ?—सुस्तानेके लिए बैठ गई दो बुढियों-मेंसे एकने कहा। मधुपुरी दूरतक फैला हुआ शहर है, जिसमें बाजारको छोड़कर घर कम तथा जंगल और पहाड़ ज्यादा है। जब लोगोंको अपने बँगलों पर पहुँचनेके लिए दो-दो मीलकी मंजिल मारनी हो, तो सुस्तानेके लिए कहीं-कहींपर कुर्सियों और बेंचोंका होना जरूरी है। ऐसी जगहोंपर कहीं कहीं ऊपर टिन या सीमेन्टकी छतें हैं। धूपसे बचनेके लिये भी वहाँ आदमी बैठ सकते हैं, यद्यपि मधुपुरीकी धूप अत्यन्त कोमलांगिनियोंको ही परेशान करती है। वर्षामें जरूर इसका उपयोग सभी कर सकते हैं, लेकिन मधुपुरीकी म्युनिसिपैलिटी सीमेन्टके बने हुए बैंचोंको हटानेमें असमर्थ है, नहीं तो कितनी ही टिनकी छतरियोंके नीचेकी काठकी बेंच गायब हैं। शायद अब उनकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। प्रश्न होता है, टिनकी छतरीको भी वहाँ किस मर्जके लिए रखा गया ? हाँ, एक तुक इसकी हो सकती है। बाहरसे आनेवाले सैलानी और शौकीन कुर्सी और बैंचपर बैठनेके आदी हैं, लेकिन नगरमें बराबर रहनेवाले, विशेष कर स्त्रियाँ जमीनपर ही निस्संकोच भावसे बैठ सकती हैं, जैसे कि यह दोनों बुढ़िया इस वक्त वर्षाकी फुहारोंसे बचनेके लिए बैठ गई थीं। शायद इन्हीं बेचारियोंका खयाल करके म्युनिसिपैलिटीके धनी-धोरियोंने एकाध जगहसे बेंचोंको हटवा दिया।

—देखा क्यों नहीं, रामूकी माँ, सारा टोला-मोहल्ला जानता है।

—मालूम नहीं, क्या होनेवाला है ?—शामूकी माँ ने मुँह बिचकाकर कहा —पैरमें महावर लगाते देखा था। हमारे देशमें सास और दादी-सासके जमानेमें तो माथेमें सिन्दूर भी नहीं लगाते थे, खाली एक बिन्दी भर होती थी।

—हाँ, बिन्दी भी तो हम लोगोंके बहू होकर आनेके समय निकली। लेकिन, सिन्दूर चाहे माथेमें लगाया जाय या बालोंके भीतर कोई बात नहीं, वह

तो सोहागकी निशानी है। लेकिन यह ओठोंमें महावर या सिन्दूर लगाना तो हमने कभी नहीं सुना।

—सुना नहीं था, क्यों? यहाँ मधुपुरीमें पहले मेमोंको ही ओठ लाल करते देखते थे। पूछने पर हमारी पड़ोसकी कोठीवाली जमादारिनने कहा था, कि यह भी सोहागकी निशानी है, हम लोगोंके यहाँ माथे और माँगमें सिन्दूर लगाते हैं, और साहेब लोगोंके यहाँ ओठमें।

—हाँ, मेमोंकी बात दूसरी है, उनको धर्म-अधर्मका कोई ख्याल थोड़े ही है, चाहे जो करें।

—मेमोंकी देखा-देखी किस्तानियोंने ओठमें महावर लगाना शुरू किया। हम समझते थे, कि चलो हमारा उनका न दीन एक, न धर्म एक, चाहे जो करें। लेकिन, यह किसको पता था, कि नाते-गोतेमें भी कुजाकी बहू पैदा हो जायेगी।

—हाँ, शामूकी माँ! यह बीमारी मेमों और किस्तानियोंसे बड़े बाबू लोगोंके यहाँ फैली। साड़ी पहनें, काजल लगायें कोई बात नहीं, लेकिन ओठ लाल करनेसे क्या फायदा?

रामू और शामूके घरमें अभी ओठमें "महावर" लगानेका रिवाज नहीं हुआ था। लेकिन उनके घरोंमें भी जवान बहुयें थीं, जिनका कुजाकी बहूके साथ बहुत उठना-बैठना था। कुजाकी बहू थोड़ी पढ़ी-लिखी थी। उसका रंग साँवला नहीं, बल्कि बहुत कुछ काला था और चेहरा तो मालूम होता है जैसे हाथीका मुँह गौरी-पुत्रके कन्धेपर शंकरजीकी तरह लगा दिया हो—ब्रह्माने अपनी भूल समझ वहाँ किसी लड़केका चेहरा रख दिया। काले और मरदाने चेहरेपर रामू-शामूकी माँके अनुसार "महावर" (लिप्स्टिक) की क्या शोभा है, यह कहना मुश्किल है? मूलतः ओठ लाल करना अस्वाभाविकता दिखानेके लिए नहीं था। अत्यन्त गोरे, खाते-पीते कोमल चेहरेके ओठ स्वभावतः ही लाल रहते हैं। यदि शोख चमकते खूनके रंगवाले पके बिम्बाके फलसे ओठोंकी उपमा हमारे पुराने कवि देते हैं, तो उसका मतलब यही है, कि कोमलांगिनियोंके चरम सौन्दर्यको बढ़ानेके लिए ओठ स्वयं लाल हो जाते थे। उस समय बिम्बाधर दुर्लभ होनेसे दूसरी तरुणियाँ भी अधर-राग इस्तेमाल करती

थी, लेकिन अधर रागसे रगे हुए ओठको कवि बिम्बाधर नही कहते थे, वह तो स्वाभाविक अधरके लिए ही ऐसी उपमा देते थे। शरीरके स्वाभाविक रगमे मिलानेके लिए कृत्रिम रग लगानेकी कोशिश सभी देशोमे की जाती है। हमारे देशमें बाल प्राय: सभीके काले होते हैं, इसलिए बुढापेके कारण जब वह सफेद होने लगते है, तो उन्हे काले खिजाबसे रँग दिया जाता है। ईरान और अफगानिस्तानमे पहले अधिक और अब भी बहुतसे लोगोंके बाल भूरे या मेंहदी रंगके होते हैं, इसीलिए वहाँ असली रगमे मिलानेके लिए लोग मेंहदीवाले रगके खिजाबसे अपने दाढी और बालोको रगते थे, जिसकी बेकारकी नकल कभी-कभी हमारे यहाँ भी की जाती है। रामू और शामूकी माँ इस बहसमे नहीं पड रही थी, कि काले चेहरेके ओठोपर लाल "महावर" लगानी चाहिये या काली। उनको तो इसी बातपर आपत्ति थी, कि यह नई बात क्यो की जा रही है?

लेकिन नई बात दुनियामे होती ही रहती है। उन्होने स्वय अपनी जवानीमें पहले-पहल माँगमें सिन्दूर डाले, जिसका पश्चिमी जिलोमे उस समय चलन नहीं था। उनको यह भी पता नहीं था, कि एक समय उनकी तीस ही चालीस पीढी पहलेकी सासे अपनी जवानीमे अधर-राग नामका ओठोको रगने-वाला रग इस्तेमाल करती थी, जिसके लिए यह नहीं कहा जा सकता, कि वह रग चेहरेके रंगके अनुसार भिन्न-भिन्न होता था। बहुत सम्भव है, वह लाल ही रगका था, क्योंकि उस समयकी सभी सुन्दरियाँ बिम्बाधरोष्ठी बननेके लिए लालायित थी। कुञ्जाकी बहूका कसूर इतना ही था, कि रामू और शामूके मोहल्लेमें वह पहली बनियाइन बहू थी, जिसने अपने ओठ लाल किये थे, जिसके ऊपर टोले मोहल्लेमे बडी-बुढियाँ खूब टिप्पणी किया करती थी। टोला-महल्ला भी कहना गलत है, क्योंकि मधुपुरीके मीलभरमे बने बीस बँगलोंमें कहीं-कही एकाध दूकान है। रामू-शामूकी दूकान जहाँपर थी, वहाँ छ-सात और भी दूकानदार रहते थे। इन छ सात परिवारोके अतिरिक्त वहाँके बँगलोमें बस एक एक चौकीदार साल भर रहनेवाले थे, बाकी सैलानी नर नारी महीने-दो-महीनेके मेहमान होते। सैलानी महिलायें गरीब घरकी नही थी। गरीब भला गर्मीसे बचनेके लिए मधुपुरी जैसी खर्चीली जगहमे कैसे आ सकते थे? बँगलेवाली महिलाओमेसे केवल बूढ़ियाँ ही थीं, जो ओठ नहीं रँगती थी।

इसलिए इस मोहल्लेकी भद्र महिलाओंका जहाँतक सम्बन्ध था, उनके लिए लिप्स्टिक या अधर-राग बिल्कुल मामूली सी बात थी।

—कलयुग है कलयुग, शामू की माँ! जो न हो जाय?

—हाँ, ठीक कहती हो। कुंजाकी माँ भी क्या करे। एक-दो बार टोका, लेकिन आजकल तो घरपर आते ही बहुयें राजपाट ले लेती हैं, सासोंको अब कौन पूछता है? कुंजाका बाप जिन्दा होता, तो सासका कुछ मान भी रहता। अब तो बहू-बेटे एक ओर और सास दूसरी ओर, बेचारी क्या करे?

—देखते जाओ, दुनियामें अब उल्टी रीति चल रही है!

—इससे उल्टी रीति और क्या होगी, कि एड़ीका महावर ओठमें लगने लगा।

(२)

कुंजाकी बहू इस टोलेके सात बनियाँ-परिवारोंमें पहली थी, जिसने लिप्स्टिक लगानी शुरू की। रामू और शामूकी माँने चार साल पहले जब छतरीके नीचे बैठकर उसकी समालोचना की थी, उस समय उनको यही मालूम था, कि यह पराये घरकी बैसन्तर है, अपने घरमें आग बनकर नहीं आयेगी। उनको क्या मालूम था, कि यह आग पराये घरमें ही आकर नहीं रुक जायेगी। आज सभी घरोंकी बहुयें अपनी आँखोंके सामने शिक्षिता सैलानी महिलाओंको ओठ लाल किये हुए देख रही थीं। उनमेंसे किसी-किसीका सम्पर्क पासके बंगले में ठहरे किसी सैलानी-परिवारके साथ हुआ था। आखिर वहाँपर ठहरनेवाली भी तो बनिये-बामनकी थीं, साहेब और मेम थोड़ी ही थीं, कि उनसे वह डरती। वह अपनी आँखों देखतीं, कि सोकर उठनेके समय जिनका मुँह बिल्कुल फीका-फीकासा लगता, वह भी जब आध घण्टे हीके लिए दर्पणके सामने बैठ जातीं, भौंहोंपर काली पेन्सिल फेरतीं, आँखोंमें काजल, गालोंपर पौडर और ओठोंपर लिपिस्टक लगा लेतीं, तो अप्सराओंको मात करने लगतीं। अपनी आँखों के सामने इस चमत्कारको वह चुपचाप कैसे देख सकती थीं? मधुपुरीमें भला कौन सी स्त्री होगी, जो सालमें पाँच-सात बार सिनेमा न जाती हो। रामू-शामू की माँने भी तुलसीदास, सीताबनवास और दूसरे देवी-देवताओंके फिल्म देखे ही नहीं थे, बल्कि जब राम-लक्ष्मण-सीता सिनेमाके श्वेतपटपर चलते-फिरते

दिखाई पड़े, तो उन्होंने पीछेवालोंकी झिड़की खा करके भी खड़ा होकर दसों नखोंसे हाथ जोड़ा था, और 'सिनेमा खराब है', यह कभी नहीं कहा था। फिर उनकी बहुयें यदि जनप्रिय फिल्मोंको देखनेके लिए अपने पतियोंके साथ अधिक जाया करें, तो इसमें उन्हें आपत्ति क्या हो सकती है? सिनेमासे उनका बहुत मनोरंजन होता, साथ ही बहुत सारी सीख भी मिलती—प्रेमका बीज कैसे खेतमें फेंका जाता है, कैसे वह अंकुरित होता है और क्या-क्या यत्न करनेसे फूलता-फलता है। पतियोंको मुट्ठीमें करनेके लिये बड़ी-बूढ़ियाँ अपने समयमें वशीकरण मन्त्र ढूँढा करती थीं। कुंजा या रामूकी बहुओंका वशीकरण मन्त्रपर कोई विश्वास नहीं, यह बात तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उससे कहीं अधिक विश्वास उन बातोंपर था जो सिनेमामें प्रयोग करके दिखलाई जाती थीं। जीवनके हर क्षेत्रमें सिनेमा आजकल पथ-प्रदर्शक है। उसीने पश्चिमी जिलोंसे लहँगेको निकाल बाहर किया। ब्याह-शादीके वक्त अब भी तिलकमें लहँगा-चुनरी आती है, लेकिन वह केवल बक्समें बन्द करके रखनेके लिए ही। नई-नवेली बहुओंकी तो बात ही छोड़िए, रामू-शामूकी माँको भी अगर लहँगा पहननेके लिए कहा जाय, तो हर्गिज तैयार न होगी। सिनेमाने कैसा कपड़ा पहनना चाहिए, कैसा जेवर पहनना चाहिए, कैसे बात करनी चाहिए, कैसे गाना गाना चाहिए आदि-आदि सैकड़ों बातें सिखलाईं। सिनेमा अक्सर रंगीन नहीं होते, लेकिन तारिकाओंके ओठोंके काले रंगसे भी पता लगते देर नहीं लगती, कि उन्होंने भी लिप्स्टिकसे ओठोंको रंग रखा है। कुंजाके मोहल्लेकी तरुणियोंको अब यह मालूम होने लगा था, कि केवल बेसलीका फूहड़ औरतें ही आजकलके शृंगारसे इन्कार करती हैं। फिर बहुओंकी ही तो बात नहीं थी। जो पति उन्हें सिनेमा दिखलानेके लिए ले जाते, वह भी तो चाहते थे, कि उनकी बहुएँ सिनेमाकी तारिकाकी शक्लमें दीखें। जब मधुपुरीमें गर्मियोंमें कोई प्रसिद्ध तारिका आ जाती, तो साधारण समयसे सात-आठ गुनी आबादी हो जानेवाली मधुपुरी उसे देखनेके लिए उमड़ पड़ती, बड़ी-बड़ी भद्र तरुणियाँ धक्का खा करके भी एक नजर तारिकाको देखकर अपनेको कृत्यकृत्य करनेकी कोशिश करतीं। कुंजाकी बहू जैसी महिलाएँ वहाँतक नहीं पहुँच सकती थीं, लेकिन खबर तो

उनके कानोंतक भी पहुँचती थी—कभी उनके पति ही बतलाते, कभी कोई देवर ही कह जाता। तारिकाओं और साधारण भद्र-महिलाओंमें फर्क करना या पहचानना उनके लिए सम्भव नहीं था, नहीं तो जिस सड़कके ऊपर उनकी दूकान थी, उसपरसे कितनी ही बार तारिकाएँ भी रिक्शापर या पैदल गुजरती थी। तारिकाओंका अनुकरण करना उनके लिए हर हालतमें आवश्यक था? यही नहीं कि उसके द्वारा हर स्त्रीके हृदयमें सुन्दरी दिखाई देनेकी लालसा पूरी होती थी, बल्कि वैसा न करनेपर पतियोंके भी हाथसे बेहाथ होनेका डर था। मोहल्लेका एक बनिया तरुण अपनी स्त्रीके फूहड़पनके कारण ही दूसरीके साथ भाग गया। उसकी स्त्री बदसूरत नहीं थी, बल्कि कुंजाकी बहूके कथनानुसार "सौ में से एक थी, लेकिन अपनी सुघराईकी कदर करना नहीं जानती थी।" कुंजाकी बहूने इतना जोर-शोरका प्रचार किया, कि लिप्स्टिक महामारीकी तरह इन घरोंमें फैल गई। पड़ोसकी देवरानीने उससे सीखकर ओठ रँगना शुरू किया। जेठानीने पहले बहुत नाक-भौं सिकोड़ा, लेकिन जब देवरानीको सजकर मनमोहनीके रूपमें देखा, और अपने पतिको खिंचा-खिंचा तो उसे भी देवरानीका अनुसरण करना पड़ा। अब वह भी ओठोंको लाल करती है। कुंजाकी बहूको घरका सारा काम अपने हाथों करना पड़ता था। चूल्हा-चौका, बर्तन-बासन, कूटना-पीटना वह सब करती है। बच्चोंका भी देखना सुनना उसे ही करना होता। फिर कपड़े क्यों न मैले रहें? कपड़े भले ही चीकट हो गये हों, चाहे जमीनपर ही बैठना पड़ता हो, लेकिन जबसे कुंजाकी बहू मुकलावा (गोना) के बाद सासरे आई, तबसे कभी उसके बिना रँगे ओठोंको किसीने नहीं देखा। दुनिया नई चीजके लिए चार दिन हँसती है। आदमीको दृढ़ रहना चाहिए, फिर वह उसका लोहा मानती, और अन्तमें उसका अनुसरण करने लगती है। यही बात कुंजाकी बहूके बारेमें भी हुई।

यह कहना मुश्किल है, कि नई चीजके स्वागतमें पुरुष जल्दी आगे आते हैं या स्त्री। कुछ चीजें हैं, जिनमें शायद स्त्रियाँ आगे रहती हैं। उसका कारण भी है। स्त्रियाँ भली प्रकार जानती हैं, कि उनके जीवनका सारा सुख और सफलता अपने पतियोंको खुश रखनेमें है। वशीकरण मन्त्रकी खोजमें वह पीढ़ियोंसे चली आई है, इसलिए जो भी उस तरहकी चीज सामने आती है,

उसे अपनानेमें वह सबसे पहले रहती हैं। पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अपनी सुन्दरताकी कम परवाह करते है, यह बात नहीं है, लेकिन यह जरूर है, कि वह कृत्रिम सुन्दरताके लिए उतने पागल नहीं बनते। आखिर स्त्रीकी तरह उन्हें किसीकी कृपापर जीना नहीं है, वह अपनी रोजी आप कमाते हैं। इसके अपवाद भी देखे गये है। मधुपुरीमें ओठोंपर हलका लाल रंग लगानेवाले तरुण भी कभी-कभी देखे गये हैं।

(२)

—व्हाट नॉनसेन्स! इन फूहडोंको यह भी पता नहीं है, कि वही चीज किसी जगह काजल हो जाती है, और किसी जगह कालिख।

—तुम्हें यह सिखलाना चाहिए, शैला!—शैलाको हैण्डबेगसे छोटा शीशा निकालकर ओठोंपर लिप्स्टिक फेरते देखकर विमलाने कहा।

—हाँ, यह बनियाइनें तो लिप्स्टिकको भी टके सेर बना देना चाहती हैं!

—यदि किसी भली चीजको अधिक लोग भोग सकें, तो इसमें ईर्ष्या करनेकी बात क्या है!—विमलाने गम्भीर स्वरमें कहा।

—हूँ, तुम्हें क्या, तुम तो वियोगिनी सीताका अभिनय करती हो, न लिप्स्टिक लगाती न काजल-टीका।

विमला शैलासे कहीं अधिक सुन्दर तरुणी थी। शैलाने मन-मारकर किसी तरह मैट्रिक पास किया था, लेकिन विमला एम० ए० थी। धनी बापकी बेटी होते हुए भी स्वावलंबी बननेके ख्यालसे वह एक महिला कालेजमें अंग्रेजीकी प्रोफेसरी करती थी। दोनों बाल-सहेलियाँ थीं, और इस साल मधुपुरीमें एक ही बंगलेमें रहनेका अवसर पाकर दोनों ही बहुत प्रसन्न थीं। शैलाको एक करोड़पति सेटकी बीबी बननेका अभिमान अपनी सहेलीके सामने नहीं था, और विमला भी अपने बचपनके स्नेहको उसी तरह शैलाके प्रति कायम रखे हुए थी। विमलापर आधुनिकताका कोई प्रभाव न पड़ा हो, यह तो नहीं कहा जा सकता। विचारोंमें वह अत्यन्त आधुनिक थी, लेकिन रंग-चुँग कर सौंदर्य बढ़ानेकी न उसे इच्छा थी और न अवश्यकता। वह उससे कुढ़ती भी नहीं थी, क्योंकि जानती थी कि आजकी स्त्री भी उसी तरह रूपाजीवा हैं, जिस तरह पचासों पीढ़ियोंसे स्त्रियाँ रहती आई हैं। सुन्दर रूप है, तो कमाकर

खिलाने-पहनानेवाला पति उसपर रीझता है, उससे उसकी आजीविका अच्छी और निश्चित हो जाती है। इसलिए जबतक स्त्री पुरुषकी कमाई खानेवाली है, तबतक उसे अपने रूपकी परवाह रखनी ही होगी। उसकी सहेली शैला सज-धज कर यदि प्रथम श्रेणीकी तारिका जैसी नहीं दिखलाई देगी, तो करोड़पति सेठ उसपर अपनेको न्योछावर करनेके लिए तैयार नहीं रहेंगे, बल्कि वह किसी दूसरी तारिकाके पीछे दौड़ते फिरेंगे। शैला अपने प्रेमकी गारंटी इसी बातमें समझती है, कि वह खूब सुन्दरी दीख पड़े। लेकिन, उसे यह बर्दाश्त नहीं था, कि कुञ्जाकी बहू जैसी मैली-कुचैली साड़ी पहननेवाली काली स्त्रियाँ लिप्स्टिक जैसे अमोघ अस्त्रको भद्दे तौरसे इस्तेमाल करें।

—हर कामका सलीका होता है। सलीका ही तो बतलाता है, कि आदमी चतुर है या गँवार।

—सलीका भी एक तरहका नहीं होता शैला! तुम जितनी मूल्यवान् लिप्स्टिक लगा रही हो, क्या दूसरी शिक्षिता सस्कृता तरुणियाँ भी वैसी लिप्स्टिक इस्तेमाल कर सकती है? वह दस बीस नहीं खर्च कर सकतीं, इसलिए दो-डेढ़की इस्तेमाल करती है।

—यह बुरा है, विमला बहन। डाक्टर बतला चुके हैं, कि खराब लिप्स्टिक इस्तेमाल करनेसे ओठोंमें घाव हो जानेका डर है।

—डाक्टर मँहगी लिप्स्टिक बनानेवालोंके दलाल भी हो सकते हैं। वह चाहते हैं, कि लोग मँहगीको खरीदें, सस्तीको न लें। लेकिन सबके पति करोड़पति तो नहीं हैं, और आज लिप्स्टिक सबके लिए अत्यावश्यक चीज बन गई है, इसलिए तुम ही बताओ, वह क्या करें?

—तुम तो मालूम होता है, लिप्स्टिककी बड़ी पक्षपातिनी हो गई!

—पक्षपातिनीका सवाल नहीं। मै इसे इन्कार नहीं करती, कि जबतक स्त्री अपने पैरोंपर खड़ी नहीं होती, तबतक वह रूपाजीवा रहेगी, चाहे वह कोठेपर बैठे या महलके भीतर। सारी दुनियामें और देशकालानुसार कुछ देरसे हर समय स्त्रीमें जो स्वाभाविक प्रवृत्ति देखी गई है, उसके लिए मैं स्त्रियोंको दोषी क्यों ठहराऊँ?

—तुमने तो शैला बहन! शायद इसीलिए स्वावलम्बी बनना स्वीकार किया।

—हाँ, मैं मानती हूँ : "तुलसी करपर कर धरो, कर-तर कर न धरो।" किसीके हाथके नीचे हाथ रखनेपर कोई अपने स्वाभिमानकी रक्षा कैसे कर सकता है? मैं चाहती हूँ, कि सभी महिलायें कर-तर कर न धरनेवाली हो जायें, लेकिन साथ ही यह भी जानती हूँ, कि यह काम जितना कहनेमें आसान है उतना करनेमें नहीं।

—अर्थात् उसके लिए तुम सामाजिक क्रान्ति चाहती हो?

—सामाजिक क्रान्तिसे डरो मत शैला, वह केवल तुम्हारे सेठजीके लिए और तुम्हारे लिए नहीं आयेगी, वह बाढकी तरह आयेगी, जिसमें सभी डूब जायेंगे और जिससे पार हो सभी सुखी और समृद्ध जीवन बितायेंगे।

—तुम्हारे क्रान्तिके बादके संसारमें मैं क्या करूँगी?

—जो यह बनियेकी बहू कर रही है, जिसका लिप्स्टिक लगाना तुम देख नहीं सकती।

—देख नहीं सकती, यह कहना तो विमला बहन, ठीक नहीं है। मैं इतना ही चाहती हूँ, कि सारी दुनियाकी तरुणियाँ लिप्स्टिक लगावें, लेकिन तरीकेके साथ।

—लेकिन जानती हो शैला, तरीका यह तीन अक्षर कितना मँहगा है! कहाँसे ये बेचारी तीस रुपयेकी जार्जेटकी साड़ी लायें? उन्हें भी मैला-कुचैला न होनेके लिए कमसे कम चार साड़ियाँ तो पास होनी चाहियें, और तिसपर भी वह घरके सारे काम-काजमें लगी अपनी साड़ीको दो दिन भी साफ न रख सकेगी। साफ रखनेके लिए अधिक पैसों ही की जरूरत नहीं है, बल्कि कामसे हाथोंको खींच लेना भी जरूरी है। तब क्या यह परिवार जीवित भी रह सकेगा?

—तो किसने कहा कि लिप्स्टिक लगाओ?—शैलाने झुँझलाकर कहा।

—जिसने तुम्हें लगानेके लिए कहा? सुन्दर बननेकी सबको इच्छा है—विमलाने मुस्कुराकर शैलाको जवाब दिया।

शैला इस विषयपर कितनी ही बार विमलासे बात कर चुकी थी।

—हमें किसी चीजको करनेके लिए आगे रखना नहीं चाहिए, जबतक यह न समझ लें, कि वह दूसरेकी शक्तिके भीतर है। अगर कोई चीज लाभकी समझी जाती है, तो एकको देखकर दूसरा भी उसे स्वीकार करता है; लेकिन, उसे ऐसा बनाकर, जिसमें उसके लिए वह साध्य हो सके।

—लेकिन तुम्हारी क्रान्तिके सफल होनेपर तो सब धान बाईस पसेरी हो जायगा, फिर सभी स्त्रियाँ लिप्स्टिक लगाने लगेंगी, और शायद पेरिसकी बनी हुई इस लिप्स्टिक जैसी।

—मैं लिप्स्टिकपर लेक्चर देने नहीं आई हूँ। हमारी क्रान्तिके सफल होनेपर स्त्री जाति स्वतन्त्र होगी, हर तरहसे, आर्थिक तौरसे भी। उसे लिप्स्टिककी जरूरत होगी या नहीं, यह मैं नहीं जानती। अधिकसे अधिक यही कह सकती हूँ, कि इतनी मात्रामें अवश्यकता नहीं होगी, उसकी इतनी परवाह नहीं की जायेगी और वह कुछ भद्र महिलाओंके लिए ही सुरक्षित नहीं मानी जायगी।

—तो फिर वही बात हुई न—सब धान बाईस पसेरी। मुझे ताज्जुब होता है, जब हमारी सब बातोंकी नकल करनी ही है, तो बाल भी क्यों नहीं छोटा करवा लेती।

—छोटे करवानेके लिए पैसा हाथमें आने दीजिए, फिर शैला, तुम उसे भी देख लोगी। तुम्हारी एक बारकी बाल कटाईमें ६० रु० लगते हैं, और फिर उसको कितना यतन करके तुम्हें रखना पड़ता है। ये बेचारी उसके लिए कहाँसे पैसा लायेंगी?

—तब तो हमें यह सब छोड़ना होगा।

—छोड़ना चाहो भी शैला, तो छोड़ नहीं सकती! एक शैलाके छोड़नेसे ही क्या हो सकता है? क्या मधुपुरीमें शामके वक्त एकसे एक बन-ठनकर चलनेवाली सुन्दरियाँ ऐसा करके अपने पैरोंमें आप कुल्हाड़ी मार सकती है? तुम जानती हो, यदि बनाव-शृंगार छोड़ भी दो, तो तुम कुरूप नहीं रहोगी, तुम्हारा शृंगार वास्तविकतासे १९-२० का ही अन्तर कर देता है, लेकिन हमारे भद्र वर्गकी महिलाएँ जो रंग-चंग कर शामके वक्त निकलती है, क्या उनमेंसे अधिकांश वैसा करनेपर कौड़ीकी तीन नहीं हो जायेंगी? इसीलिए न मैं इनको बनाव शृंगार छोड़नेके लिए कहती, न उसके लिए घृणा प्रकट करती।

—यह दुनिया है, अब यही वेदान्त तुम्हें बघाड़ना रह गया है न?

—वेदान्त बघाड़ना नहीं है, वेदान्तका काम है लोगोंको दुनियासे भगाना। लेकिन, उसे रहने दो। नई बातोंका सभी समाजमें पहले ही स्वागत नहीं हो

जाता। शिक्षित वर्ग नवीनताको जल्दी स्वीकार करनेके लिए तैयार होता है, क्योंकि यह देश और काल दोनोंमे कितने ही परिवर्त्तनोंको अपनी आँखोके सामने देखता है। लेकिन, तो भी क्या घरपर रहनेपर तुम इसी तरह स्वच्छन्द रह सकती हो, जैसा कि यहाँ मधुपुरी मे।

—नही, शैला बहन, मै तो मनाती हूँ यह दँतटुट्टी बुढिया क्यो गोड-तोड़ कर बैठी हुई है। यद्यपि उसके बडबडानेसे मेरा कुछ नहीं बिगडता, सेठजी हमेशा मेरा पक्ष लेनेके लिए तैयार है, लेकिन तब भी सकोच तो होता है।

—और यहाँ चाहो तो एक सलाईकी जगह पावभर काजल लगाओ, माँसेकी जगह पाँच तोला लिप्स्टिकसे ओठ रगो चाहे जो करो, यहाँ तुम्हारी दुनिया है, सासकी दुनियाके लिए यहाँ स्थान नही है।

—तुम बहुत बढा-चढाके कहती हो। कौन इतना काजल और लिप्स्टिक लगाता है?

—मात्रासे अधिक लगानेवाली बहुत-सी को रोज ही तुम देखती हो। मै तो हैरान होती हूँ, कि हमारी बहने पश्चिमी महिलाओंके सभी प्रसाधनोंको स्वीकार करनेके लिए तैयार है, लेकिन साथ ही अपनी बड़ी-बूढियोकी बातोंको छोडना नही चाहती। आखिर कौन पश्चिमी महिला है, जो काजल लगाती है।

—उनको इसका महातम नहीं मालूम है, विमला बहन। आँखोंके दोनो कोरोंपर, कानकी ओर जरा काली रेखा खीच देनेपर आँखे दूनी नहीं तो ड्योढ़ी जरूर बढ जाती हैं।

—हर देशको सौंदर्य-विशेषज्ञ पैदा करनेका अधिकार है, मै यह मानती हूँ। लेकिन मुझे तो यह सब कुछ खेल-सा मालूम होता है। चाहे यह बनियेकी बहू हो या शैला रानी, सभी अपने-आपको लेकर गुड़ियाका खेल रच रही हैं, अभिनय कर रही है।

—कहा है, 'दुनिया एक तमाशा है,' फिर गुडियोंका खेल रचाया जाय, तो क्या बुरा?

—मैं बुरा नही कहती, इससे कितनोंका मनोरजन हो सकता है। लेकिन, मै इतना अवश्य कहूँगी कि मधुपुरीमें आजकल सीजनके समय बराबर रहनेवाले लोग दालमे नमकके बराबर और बाकी सभी हमारे-तुम्हारे जैसे सैलानी और

शौकीन है। कुछ महीनोंके लिये यहाँ एक बिल्कुल नई दुनिया आकर बस जाती है। दिल्ली, कलकत्ता या बम्बईमें हमारा वर्ग १० सैकड़ा भी नहीं है, और यहाँ हमारे वर्गसे भिन्नता रखनेवाले १० सैकड़ेसे कम हैं, इसीलिए वहाँ हमारी सभी बातोंका अनुकरण करनेके लिए लोग उसी तरह तैयार नहीं हैं, जैसा कि हमारी पड़ोसन ये तरुण बनें ने।

सचमुच ही मधुपुरी जैसी हिमालयकी विलासपुरियोंमें फैशनका प्रचार जितनी जल्दी और व्यापक रूपसे होता है, वैसा मैदानी शहरोंमें नहीं होता। इसका एक बड़ा कारण यही है, कि सीजनमें आये सुन्दरियोंके सैलाबमें यहाँकी साधारण तरुणियोंके पैर उखड़ जाते हैं और वे भी प्रवाहके अनुसार बहने लगती हैं।

७. ठाकुरजी

(१)

वैसे देखनेमे एक विलासपुरी और ठाकुरजीका सम्बन्ध कुछ अजब-सा ही मालूम होगा। मधुपुरी मधु (शराब) की पुरी है, वहाँ विलासी लोग गर्मियोंमे मौज-मेले के लिये चले आते है। मधुपुरीके स्थायी निवासी जहाँ ८ हजार है, वहाँ सीजनमे उसकी आबादी ५०-६० हजारतक पहुँचती है। स्थायी निवासियोंके लिये अपने मन्दिर और मस्जिद थी। अंग्रेजोने मधुपुरीको साधारण इगलैडकी नगरीके तौरपर बसाया था, इसलिये उन्हे वहाँ अपने पूजा-स्थानोंकी आवश्यकता थी, जो जरूरतसे अधिक गिर्जों और कैथेड्रलोंके रूपमे यहाँ खडी हो अब मधुपुरीके लिये एक समस्या हो गई है।

लाखो रुपये लगाकर बनी इन भव्य इमारतोंमे सीजनके समय गौरांग भक्तो-भक्तिनियोंकी भीड भी रहा करती थी। चन्देसे इतना पैसा आ जाता था कि उनकी मरम्मत और सजावटकी वहाँ कोई समस्या ही नहीं थी। मधुपुरीमे किस्तानोंकी सख्या अब नाम-मात्र है जो आधे दर्जनसे ऊपरके गिर्जोंमेसे मुश्किलसे एकको थोडा बहुत भर सकते है। गिर्जोंके बनाते समय उनके बनानेवालोंको कहाँ ख्याल था कि एक समय भगवान् अधिक और भक्त कम हो जायेंगे।

अंग्रेजोके भगवानोके भी अपने बडे-बडे घटे होते है, जिनके द्वारा भक्तोंको पूजाकी सूचना दी जाती है, लेकिन नेटिव (काले) लोगोके भगवानोंके घडी-घटे उनको पसन्द नहीं थे। दार्जिलिगमें सबसे ऊँची टेकरीके ऊपर सदियोंसे विराजमान हिन्दुओ और बौद्धोंके सम्मिलित देवता महाकालको इसीलिये हटवा दिया गया, जब पासमे विशाल गिर्जेकी नीव डाली गई। मधुपुरीमे भगवानोंकी—चाहे वह हिन्दुओंके हो या मुसलमानोके—नेटिव क्वार्टरमे ही सीमित रखनेके लिये मजबूर किया गया था, मधुपुरीके हर बाजारमे एक मन्दिर कमसे कम पहले ही मौजूद था। लेकिन अंग्रेजोंके चलते चलते द्वितीय महायुद्धके समय एक ठाकुरजी और आकर विराजमान हो गये। एक देशमे एक राजा रहते थे। उनकी एक लाडली लड़की थी। लड़की अपने पीहरसे ज्यादा नन-

सालका अभिमान करती है, यह इसीसे मालूम होगा कि वह ब्याही जानेके बाद भी अपने ननिहालकी लौंडियोंको उनकी राजस्थानी पोशाकमें रखना अधिक पसन्द करती है। कभी कभी वह स्वयं भी लहँगा-चुनरी पहन लेती। यद्यपि वह बाल कटाये, ओठ रँगाये, पैंट पहनकर खुले मुँह घूमनेवाली रानी है, लेकिन उसका हृदय प्राचीनता-प्रेमी है।

राजाकी लड़कीका एक दूसरे राजासे ब्याह होना स्वाभाविक है। कहते है दामाद साहब राजा होते हुये भी पैसोंके लिये उतने खुशहाल नही थे, या हो सकता है पिता राजा अपनी इस लड़कीको भारी दहेज देना चाहते थे। जो भी हो, ब्याह करनेके बाद पिता-राजाको साध हुई कि गर्मियाँ बितानेके लिये अपनी फूल-सी लड़कीके लिये मधुपुरीमे एक मकान बनवा दें। मकान बनवाते समय वह भी थोड़े समयके लिये छोटे रूपमें शाहजहाँ बन गये। छोटा ही हो तो भी किस तरहका सुन्दर महल बने, इसके लिये इन्होने बहुत ख्याल दौड़ाया और अन्तमें किसी लन्दन टावर या दूसरे किलेकी तस्वीर सामने खड़ी हुई। निश्चय किया, मकान ऐसा ही बनाया जाय, जो दूरसे देखनेमें एक भव्य कैसल (गढ़ी) जैसा मालूम हो।

जगहके लिये भी उन्होने यहाँके पहाड़ोंमें ढूँढ़ना शुरू किया। वैसे होता तो अंग्रेजोंकी कोठियों-बँगलेवाले मोहल्लेमे नेटिव राजाको अपने मकानके लिये स्थान पाना आसान नहीं होता, लेकिन यह अब द्वितीय महा-युद्धका समय था। अंग्रेजोका रोब भारतमे दो दशाब्दी पहलेसे ही उठ चुका था। उनके बँगले लड़ाईके समय ही कुछ दिनोंके लिये भरे थे, नहीं तो अधिकांश खाली रहने लगे थे। अंग्रेज चाहे भारतीयोंके प्रति अपने भावको न भुला सकें, लेकिन अंग्रेजोंके परमभक्त राजा साहब भी अब उनको देवता माननेके लिये तैयार नहीं थे। मधुपुरीकी हरेक टेकरीपर राजा साहबके आद-मियोंने छान-बीन की। अन्तमें एक अत्यन्त उपयुक्त टेकरी उन्हें मिल ही गई। यह टेकरी मधुपुरीके सबसे बड़े एक होटलके पास थी, जिसके एक पार्श्वमें ईसाइयोंका एक मठ था। वहाँ टेकरीके सबसे ऊपरवाली अपेक्षाकृत चौरस भूमिपरका बँगला बिक रहा था। राजा साहबने इसीको अपनी बेटीके महलके लिये पसन्द किया।

द्वितीय महायुद्धके बादहीसे मधुपुरीमे दूर-दूर बने हुये बँगलो और कोठियोंका दाम बहुत गिर गया था। राजा साहब लड़कीके लिये महल बनानेमें जितना रुपया लगाना चाहते थे, उससे आधेमे ही सजी-सजाई बहुत अच्छी कोठी मिली, लेकिन उतनेसे अपने मानसपटलपर अंकित कैंमलको वह धरतीपर कैसे उतार सकते थे? फिर उन्हे अपनी लड़कीके लिये केवल कैमलसे सतुष्ट नहीं होना था।

राजकुमारीको अग्रेज आयोके सायेमे पाला-पोसा गया था। वह अंग्रेज लड़कियोंकी तरह स्वच्छन्दविहारिणी थी, उसे अन्तःपुरकी चहारदीवारीके भीतर रोककर कभी नहीं रक्खा गया। रियासतों या जमींदारोंके राजकुमार अब पेदा होते ही अंग्रेजोंकी बुट्टी पीने लगे थे और रग छोड़ सब बातोमे अग्रेज बन रहे थे। ऐसे राजकुमारोंका काम 'नेटिव' राजकुमारियोंसे नहीं चल सकता था। कितनोंने अपनी लालसा पूरी करनेके लिये गौरांगिनियोंसे व्याह किया था। किन्हीं-किन्हींने अपनी व्याहता रानीको आजीवन महलकी चहार-दीवारीके भीतर रोनेके लिये छोड दिया था। इससे कुमारियोंके पिताओंकी चिन्ताका बढ जाना अवश्यक था और उन्होंने निश्चय किया कि क्यों न अन्तःपुरोंमे ही मेमोंको पैदा किया जाय।

पुराने समयमे अपने उत्तर और पश्चिमके लड़ाकू सामन्तोंको हाथमे रखनेके लिये भारी सेनाके अतिरिक्त राज्यकन्या प्रदान करना भी चीन सम्राटोंकी एक सफल नीति थी। यद्यपि सम्राट्के अन्तःपुरमे रानियोंकी सख्या इतनी अधिक थी, कि उनमेसे कितनोंके नामो और चेहरोंका परिचय भी सम्राट्को नहीं था। तो भी सम्राट्-कुमारियोंकी जितनी मॉग थी, उसे पूरा करनेके लिये वह पर्याप्त नहीं होती थीं, इसलिये सुन्दर शिशु-कुमारियोंको लेकर पालन किया जाता, जिन्हे सम्राट्-कुमारी कहकर खास्तगारोंको दिया जाता था। इस तरह चीनमे राजकुमारियोंके लिये एक पूरी नर्सरी तैयार कर दी गई थी। भारतके राजमहल चाहे उस तरहकी विशाल नर्सरी न बने हो, लेकिन वह २० वीं शताब्दीके प्रथम पादके बीतते-बीतते मेमराजकुमारियोंके बनानेके कारखाने जरूर बन गये थे।

राजकुमारी इसी वातावरणमे पैदा हुई और बढी, लेकिन, मेम बनना

जितना आसान है, अपने सारे मनोभावोंको बदलना उतना आसान नहीं है और उसकी जरूरत भी नहीं थी। अपनी यूरोपियन आया या आका मेम साहबोंको देखकर वह जानती थी कि भगवान्में उनकी भी श्रद्धा वैसी ही अटूट है, जैसी हिन्दू ललनाओं की। उनमें जो रोमन कैथलिक है, वह माता और पुत्रकी बड़ी सुन्दर मूर्तियाँ अपने गिर्जेमें रखती हैं और जो प्रोटेस्टेंट हैं, उनके गिर्जेमें हमारे आर्यसमाजियोंकी तरह निराकार भगवान्की उपासना होती है। राजकुमारीकी माँ और नानी दोनों बड़ी भक्तिन थीं। वेषभूषा और चाल-ढालमें पूरे यूरोपियन साँचेमें ढली राजकुमारीको भगवान्की भक्ति माँ और नानीसे दाय-भागमें मिली थी। वह बराबर पूजाके समय राजा साहबके महलसे लगे हुये खानदानी मन्दिरमें जाती और भक्ति-भावसे आरतीमें शामिल हो प्रसाद लेकर घर लौटती।

(२)

राजकुमारीका व्याह हो गया और जैसा कि ऊपर बतलाया गया, पिता-राजाको अपनी बेटीके लिये मधुपुरीमें एक कैसल बनानेका ख्याल आया। उनके घरमें एक मीरा पैदा हुई थी। मालूम नहीं वह भी मीराके शब्दोंमें "नित उठ दरसन पासूँ" गाया करती थी या नहीं। गानेके लिये सभीको कंठ नहीं मिलता, चाहे उसका जन्म और पर्वरिश अन्तःपुरकी कोकिलाओंमें ही हुआ हो, लेकिन बिना गाये भी भक्ति की जा सकती है। जिस वक्त पिता-राजा कैसलके नक्शेको दिखला रहे थे, उसी वक्त बेटीके इंगित या साक्षात् शब्दोंसे पता लग गया कि राजकुमारी पुराने बंगलेसे परिवर्त्तित कैसलमें कभी सुखी नहीं रहेगी, यदि उसे भगवान्का दर्शन नित्य नहीं मिला करेगा।

पिताने जिस तरह कैसलका नक्शा तैयार करानेमें भारी मेहनत की थी, उसी तरह वह अब मन्दिरके बारेमें भी सोचने लगे। यह कोई सार्वजनिक मन्दिर नहीं था, जिसमें मधुपुरीके हजारों भक्त नर-नारियोंके दर्शनका प्रबन्ध किया जाता। उन्हें तो अपनी कुमारीके लिये छोटा-सा, किन्तु सुन्दर मन्दिर बनवाना था। सुन्दरता बढ़ानेके लिये शाहजहाँने ताजको बिल्कुल संगमर्मर का बनवाया था। राजा साहबने भी अपनी बेटीके लिये संगमर्मर नहीं तो उस जैसे सीमेंटकी ठाकुरबाड़ी बनवानेका निश्चय किया। लड़ाई चल रही थी।

सभी चीजें महँगी थीं, लेकिन अभी राजा साहबके वर्गको यह विश्वास नहीं था कि लड़ाई खतम होते ही उनकी जमींदारियोंपर वज्र गिरेगा और आमदनीका स्रोत सूख जायगा। अभी उनके किसान चुपचाप राजा साहबकी लगान, बेगार और पचासों तरहके अवैध करोंको अदा करते जा रहे थे।

राजा साहब भी उतने फजूल-खर्च नहीं थे कि ताल्लुकदारीकी आमदनीके पूरा न पड़नेपर कर्जका बोझ सिरपर लादें। उनके खजानेमें काफी रुपया था। राजासाहबमें भी भक्ति-भावना थी, अपनी संस्कृतिके प्रति आदर भी था, लेकिन उनकी रुचि बहुत उथली थी, जो देश और कालमें दूरतक जाकर अपने लिये कोई नमूना नहीं तैयार कर सकती थी। पिछले सौ बरसोंमें जो सीधे-सादे शिखर-दार मन्दिर उत्तरी भारतमें बनते आये थे, बस उन्हींमेंसे एक को उन्होंने चुन लिया और निश्चय किया, कि बगलेमें बननेवाले कैसलके सामने सबसे ऊँची जगहपर यह सफेद ठाकुरबाड़ी खड़ी की जाय।

कोई भी आदमी मधुपुरीके इस देवालयमें पहुँचकर इस बातको माननेके लिये तैयार हो जायगा, कि इतना सुन्दर स्थान शायद ही मधुपुरीमें कहीं और मिलता। यहाँ खड़े होकर आप पूर्वसे पश्चिम दूर तक चली गई हिम-शिखर पंक्तियोंका नयनाभिराम दृश्य देख सकते हैं, हरे-भरे वृक्षोंसे ढँके मधुपुरीके टेढ़े-मेढ़े चले गये पहाड़ोंके दर्शनसे अपनी आँखोंको तृप्त कर सकते हैं। नीचेसे ऊपर तक चढ़ा-उतार चली गई कितनी वाटियोंका दृश्य यहाँ सामने विशाल चित्रपटकी तरह चित्रित मालूम होता है। इन सारी विशेषताओंके रहते भी एक सबसे अधिक सुभीता इस जगहपर यह था, कि मधुपुरीकी सुख्य सड़क यहाँसे बिल्कुल नजदीक थोड़ी ही उतराई उतर कर आ जाती है, जहाँ हर वक्त रिक्शे मिल सकते हैं और सैलानी लोग जहाँ झुण्डके झुण्ड टहलने आया करते हैं—अर्थात् कैसल एकान्तमें भी है और नगरके भीतर भी।

लड़ाईके दिनोंमें ट्रेनें सेना और सैनिक-सामग्री ढोनेमें लगी हुई थीं। कार-खानोंको कोयला नहीं मिल रहा था, जिसके अभावमें लकड़ीके महँगे हो जानेके कारण लोगोंने आमोंके कितने ही बगीचे कटवा दिये। ऐसे समय कैसल और ठाकुरबाड़ीके लिये मधुपुरी जैसे पहाड़पर गृहनिर्माण-सामग्रीको पहुँचाना आसान काम नहीं था, लेकिन कहावत है "द्रव्येण सर्वे वशाः" अथवा "जर

बरसरे-फौलाद निही नर्म शवद्"—सोना फौलादको नर्म करता है, चट्टानको तोड़कर भी रास्ता निकाल लेता है। उधर दुनियाके भाग्यका निबटारा करनेके लिये घमासान लड़ाई हो रही थी और इधर मधुपुरीमें राजकुमारीके कैसलके मीनारों की नींव रखकर एकके ऊपर एक पत्थर रखते दीवारें खड़ी हो रही थीं। राजा साहबके कर्मचारी उसकी देख-रेख कर रहे थे। ठेकेदार और इंजीनियर इसके लिये पूरी तौरसे जागरूक थे कि कैसल ठीक उसी तरहका बने, जैसा कि नक्शा दिया गया था।

राजकुमारीके शयनकक्षके बिल्कुल सामने मन्दिरकी नींव पड़ी। यदि वह लेटे-लेटे मन्दिरके शिखरका दर्शन करना चाहती, तब तो पैरोंको मन्दिरकी ओर करना पड़ता, लेकिन धर्मपरायणा आधुनिक मीरा—यूरोपीय पोशाक और बाल्कटी होनेपर भी जहाँ तक भक्ति भावका सम्बन्ध था, राजकुमारी और अब रानी साहिबा मीरासे कम नहीं थी—कब ऐसा करनेके लिये तैयार हो सकती थीं? आशा यही रखनी चाहिये कि ठाकुरबाड़ी उनके सिरहानेकी ओर पड़ती होगी और सबेरे उठकर वह उधर मुँह फेरकर भगवान्‌के दर्शन करती होंगी। उनके शयनकक्षमें खिड़की लगाते तथा ठाकुरबाड़ीके दरवाजेको बनाते वक्त इस बातका पूरी तौरसे ख्याल रक्खा गया था कि बिना मन्दिरमें गये वह अपने शयनकक्ष या उपवेशनकक्षमें ठाकुरजीका दर्शन करके हाथ जोड़ सकें—मधुपुरीमें वर्षा काफी होती है, इसलिये कैसलसे मन्दिर हर वक्त जाना आसान नहीं है।

मीनारोंकी दीवारें उठती गईं, और कुछ ही महीनों बाद एक तरफ कई शयनकक्षों, स्नानागारों, भोजनशाला और उपवेशनशालावाला कैसल तैयार हो गया। किनारोंपर उसी तरहके कटे हुये मीनार बने, जैसा कि इंगलैंडके पुराने कैसलोंमें देखा जाता है। उसकी दीवारोंको शत्रुओंकी तोपोंका सामना करना नहीं था, क्योंकि असली नहीं नकली कैसल (गढ़ी) था। ठेकेदारों द्वारा बनवाई इमारतें विश्वसनीय तो नहीं होतीं, क्योंकि सीमेन्टकी बचत करनेके लिये वह उसकी जगह मिट्टी-बालूका इस्तेमाल ज्यादा करते हैं; भीतर जो भी हो, वह केवल बाहरसे भव्य और ठोस बनानेका प्रयत्न करते हैं। आखिर मिलनेवाले पैसेमेंसे एक-तिहाई तो उनके पाकिटमें जाना चाहिये। आधुनिक

मीराका कैसल बाहरसे देखनेमें भव्यताके साथ ठोस भी लगता है, बाकी तो सामने बैठे भगवान् ही जानते होंगे।

मन्दिर दूरसे देखनेपर चूनेका कोई साधारण-सा मन्दिर मालूम होता है। वही सीधी-सादी रेखायें और वही मामूली-सा शिखर, जिसके ऊपर सोनेका चक्र। संगमर्मर जैसा होनेपर भी उसमें सौन्दर्य कैसे पैदा हो सकता है? आखिर उतना ही तो सौन्दर्य निखरता, जितना कि वह उसके बनानेवालोंके दिमागमें था। मधुपुरीमें साधारण घरोंमें भी बिजलीके चिराग चमचमाते हैं, तो इतनी साधसे बनाये मीराके मन्दिरमें बिजलीके दीपक क्यों न जगमग-जगमग करते। चारों कोनोंपर प्रखर तेजवाली बड़ी बत्तियाँ या सर्चलाइट लगा दी गई। जब वह जलतीं, तो रातके समय भी यह शुभ्रश्वेत देवालय दूर तक अलकापुरीके किसी भव्य कंगूरेकी तरह दिखाई पड़ता है। इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि जिस समय इस सारी सजावटके साथ मन्दिर बनाया गया था, उस समय ख्याल नहीं आया था कि ताल्लुकदारीपर वज्र पड़नेवाला है और तब ठाकुर-जीके लिये पैसे-धेले ही सुलभ न रहेंगे।

मीराको अपने गिरिधर गोपालकी उपासनाके लिये बहुत कष्ट सहना पड़ा, विषका प्याला पीना पड़ा, यह सभी जानते हैं इसलिये मधुपुरीकी आधुनिक मीराके बारेमें यह नहीं समझ लेना चाहिये कि इन्हें भी उन मंजिलोंसे गुजरना पड़ा। आधुनिक मीराके पति एक आधुनिक ढगके तरुण हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा यूरोपीय ढगपर हुई है, लेकिन हर देशके सामन्तोंकी तरह वह भी प्राचीन-पथिताके परमोपासक हैं। अपनी मीराके समान वह भी भगवद्भक्तिमें लीन हो यह भला कहाँ हो सकता है, लेकिन मीराकी भक्तिमें बाधा डालना वह हर्गिज नहीं चाहते। लक्ष्मीपात्र पिताकी लाडली कन्याका सत्कार करना भी वह अपना कर्तव्य समझते हैं। कैसल और ठाकुरबाड़ीको बननेके आधे दर्जन वर्षों बाद भी उन्हें उसी तरहसे रक्खा जाता है, जैसा कि वह बनकर तैयार होनेके वक्त थे। ठाकुरजीकी दोनों साँझ आरती होती है, घण्टा-घड़ि-याल बजते हैं, एक पुजारी भी बारहों महीनों रहता है, चौकीदारके अलावा माली भी है। मधुपुरीमें आधी मईसे जूनके अन्त तक भारी भीड़ रहती है, यद्यपि वह 'लन्दनकी भीर' नहीं होती। उसके बाद सितम्बरके अन्त तक मधु-

पूरी सैलानियोंसे बिल्कुल सूनी नहीं होती। कैसलकी मीरा उस समय तक बराबर रहती है, जब तक कि सर्दी अधिक बढ़ नहीं जाती। इसका एक फल ठाकुरजीको भी मिलता है—जन्माष्टमी, दीवालीको मन्दिरके बाहर बिजली की दीपमालिका की जाती है। उस समय सैकड़ों चिरागोंके बीचमें जगमग-जगमग करते मन्दिरको दूर-दूरसे देखा जा सकता है।

मुख्य सड़कसे मन्दिरतक पहुँचनेमें दो-ढाई सौ गजकी चढ़ाई पड़ती है, जिसके कारण श्रद्धा या कौतूहल रखनेवाले सभी लोग वहाँ पहुँचने की कोशिश नहीं करते हैं, लेकिन जिनकी लालसा भी होती है, उनके रास्तेमें भी बाधायें हैं। आधुनिक मीरा अन्तःपुरकी असूर्यम्पश्या नहीं हैं, बल्कि शाम सवेरे कोई भी उन्हें सिर खोले, पतलून पहने सड़कोंपर देख सकता है। वह किसी तीसरी श्रेणीकी सिनेमा-तारिका या मसूरीमें सीजनके वक्त आमतौरसे घूमती रहनेवाली 'सोसायटी गर्ल' से कोई भिन्नता नहीं रखती, लेकिन ठाकुरजीके पास पहुँचनेके समय उनका कैसल अन्तःपुरका रूप ले लेता है।

ठाकुरजी आखिर मीराके प्राइवेट गिरधर गोपाल हैं, इसलिये उनका दरवाजा हर ऐरे-गैरे नत्थू खैरेके लिये खुला नहीं रह सकता। कैसलमें जानेकी पहले इजाजत लो, फिर मन्दिरकी तरफ बढ़ो। इसके कारण बहुतोंकी श्रद्धाका स्रोत सूख जाता है। जाड़ोंके आनेपर कैसल सूना हो जाता है, एक चौकीदार और एक पुजारी रह जाते हैं। उस समय इजाजत लेनेकी शायद जरूरत नहीं पड़ती, लेकिन तब दिनमें दो बड़े-बड़े काले कुत्ते खुले फिरते हैं, जिनसे शरीर नुचवानेके लिये तैयार होकर कैसे कोई भक्ति-भाव प्रकट करनेके लिये वहाँ पहुँच सकता है।

ठंडी सड़कपर घूमनेवाले लोगोंको सामने पहाड़ीपर मन्दिर दिखलाई पड़ता है। यदि निरभ्र नीला आसमान पीछे हो, तो कलाशून्य होनेपर भी अपनी निर्मल श्वेतिमाको लिये नीले पटपर वह बड़ा आकर्षक मालूम होता है। सारी मधुपुरीमें कैसलनुमा एकमात्र इमारत होनेसे भी वह लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहती। अधिकतर सैलानी मधुपुरीकी समतल सड़कोंको ही पसन्द करते हैं, लेकिन कुछ मनचले चढ़ाई चढ़नेमें भी नहीं हिचकिचाते। बेचारे रिक्शोंके अड्डेके पास आकर मन्दिरकी ओर पैर बढ़ा देते हैं,

लेकिन कुछ ही दूर जानेपर या तो काले कुत्ते यमराजके कुत्तोंकी तरह उनका रास्ता रोक देते हैं, या चौकीदार कह देता है—बिना आज्ञाके आगे न बढ़िये।

सचमुच इस सुन्दर ठाँवपर कहावतोंमें मशहूर खजानेका साँप आ बैठा है, लेकिन इसका दोष हम केवल मीराहीको नहीं दे सकते। आखिर वहाँ कुछ फूल भी हैं फुलवाड़ी भी है। हमारे देशके अधिकांश लोग नागरिकताकी जिम्मेवारी उठानेके लिये तैयार नहीं हैं। वह कहीं फूल तोड़ लेते हैं, कहीं कोई दूसरी चीज बिगाड़ देते हैं, मन्दिरमें अगर कोई न रहे, तो कोयला या पेन्सिलसे अपना नाम अमर करनेके लिये उसकी दीवारोंपर कुछ लिखे बिना नहीं रहते। ऐसी अवस्थामें बिना आज्ञा प्रवेश निषिद्ध करना अन्यायोचित नहीं है, यह सभी मानेंगे। हम समझते हैं, शाम-सबेरकी आरतीमें सम्मिलित होनेके लिये कैसल-निवासिनीकी ओरसे कोई बाधा नहीं हो सकती, लेकिन जैसा कि बतलाया, मधुपुरी विलासियोंके लिये बनी है, भक्तोंके लिये नहीं।

(३)

मधुपुरीके एकान्त-वासी ठाकुरजी एक सहृदय पिता और भक्ति-भाव सम्पन्न उनकी तरुण पुत्रीकी श्रद्धाके प्रतीक हैं श्रद्धाके प्रतीक सभी अच्छे होते हैं, लेकिन जमाना भी कैसा है? मन्दिरके भीतर आकर विराजमान होते समय ठाकुरजीको क्या मालूम था? या यदि उनको मालूम भी था, तो उनके भक्त राजा और राजकुमारीको क्या पता था, कि जमाना पलटा खाएगा। निश्चय ही जो चीज किसी समय श्रद्धाकी प्रतीक थी, वह अब बेवकूफीकी प्रतीक हो गई है। आखिर ठाकुरजी चट्टान काटकर खुले आसमानके नीचे खड़े किये गये, शिवलिंग नहीं हैं, जो आकाशकी वर्षासे सतुष्ट हो जायँगे।

यह ठाकुरबाड़ी है। अपनी लक्ष्मी सहित ठाकुरजी मन्दिरके भीतर विराजमान हैं। उनको पहननेके लिये कपड़ोंकी अवश्यकता होती है और जेवरोंकी भी। यदि कुछ हजारके असली जेवर ठाकुरजीके हुये, तो किसी समय भी जाड़ोंमें पुजारी या चौकीदारको जानसे हाथ धोनेका डर है। ठाकुरजी केवल जल-अच्छतसे सन्तुष्ट रहनेवाले नहीं हैं, उनके राग-भोगके लिये पकवानकी जरूरत है। आरतीके समय शंख घड़ी-घंटा बजानेके लिये कुछ और आदमियोंकी अवश्यकता है। यह सब खर्चीली चीजें हैं। अगर शंख-धवल मन्दिरकी सजावटका

ख्याल न किया जाय, तो भी यह दो-ढाई सौ रुपये महीनेका गुम्खा है। टूट-फूटकी मरम्मत तथा त्योहारोंकी तैयारीका खर्च जोड़ देनेपर खर्चा सालमें चार-पाँच हजार रुपयेसे कमका नहीं हो सकता।

रियासतें और ताल्लुकदारियाँ खत्म हो गई। अब तो अपने देहकी चर्बी गला गलाकर जीवन यात्रा पूरी करनी है। ऐसे समय गले से बँधा कब तक यह चखा चलता रहेगा?

पुजारी बारहो महीना रहता है जब शाम-सवेरे मन्दिरसे घण्टे-घड़ियालोंकी आवाज न सुनाई दे, तो पता लग जाता है कि कैसल मीराने सूना है। पुजारी शायद रोजकी तरह ठाकुरजीकी आरती दिखला देता है। इसमें भी सन्देह है कि आरतीमें दालदा छोड़ असली घी डाला जाता है। पट न बन्द होनेपर भी छ महीनोंके लिये तो ठाकुरजी बेचारे तपस्याके लिये छोड़ दिये जाते हैं। ठाकुरजीको ऐसी तपस्या करनेके लिये जिन्होंने मजबूर किया, क्या वह उन्हें आशीर्वाद देंगे? जाड़ोंभर ठाकुरबाड़ीकी ओर नजर डालनेपर दया आये बिना नहीं रहती, चारों तरफ सुनसान, चारों तरफ उदासी!

आजसे सौ वर्ष बादकी ओर नजर जाती है। २०५३ ई० सन् आयेगा। उस समय इस कैसल और ठाकुरजीकी क्या अवस्था होगी? आजकी तरुण मीराका कहीं पता न होगा, उसकी चौथी या पाँचवीं पीढ़ी करोड़ों जनगणके समुद्रमें बूँदकी तरह विलीन हो गई रहेगी। शायद उसे बहुत धुँधली-सी स्मृति होगी, कि हम किसी ताल्लुकदार राजाके वंशज हैं; निश्चय ही उसे यह तो नहीं मालूम होगा, कि मधुपुरीमें उसकी पूर्वजा महादादीके लिये एक संगमर्मर जैसा मन्दिर बनवाया गया था, उसके पासके कैसलमें वह रहा करती थी।

मन्दिर हों, गिर्जे या मस्जिद हों, वह केवल पूजा-अर्चाके लिये ही नहीं बना करते, बल्कि निर्माता उनके रूपमें अपने अहंकारको धरतीपर चिरस्थायी करना चाहते हैं। वह समझते हैं कि इससे उनका नाम अजर-अमर रहेगा। पहाड़ोंको काटकर अचल गुहा-प्रासादोंके बनानेवालोंका नाम तक लोग अब नहीं जानते। पहाड़ छीलकर एलोराके जैसे सुन्दर विशाल मन्दिरको जिन्होंने निकाल खड़ा किया था, उनके नामका हमें पता नहीं, तो मधुपुरीके हालके बने इस मन्दिरकी

क्या हैसियत है ? यह तो सौ वर्षो तक शायद अपनी जगह खडा भी न रहे। फिर इसके द्वारा बनानेवालेकी अमरकीर्ति कैसे कायम रह सकती है ?

कलाकी दृष्टिसे भी इस मन्दिरमे कोई ऐसी बात नही है, जिसके लिये सौ वर्ष आगे आनेवाली सरकारको उसे अपना सरक्षण देनेकी अवश्यकता हो। उसकी मूर्तियाँ भद्दी है और मन्दिर भी अनाकर्षक। मूर्तियाँ इस योग्य भी नही है, कि इन्हे किसी म्यूजियममे रक्खा जाये। मन्दिरकी शिलाये शायद किसी उपयोगमे आ जाये। जो भी हो १०० वर्ष बाद इस निर्जन कैदखानेसे ठाकुरजीके मुक्त होनेकी सम्भावना है।

और कैसल ? उसका भाग्य तो मधुपुरीके भाग्यके साथ बँधा हुआ है। आज देशमे जिस तरहकी दरिद्रता बटी हुई है, उसीका फल है मधुपुरीका दिन-दिन सूखना, रक्त-मॉसहीन बनना। पचासो लाख रुपये जिन इमारतोके बनानेमें लगे, अब वह वर्षोसे परित्यक्त है, अधिकाशके फर्नीचर लुप्त हो चुके है, कितनो ही के किवाड, चौखट लुट चुके है और द्रौपदीके चीरकी तरह कितनो ही के टिन उतारे जा रहे है। जहॉ कभी सुन्दर बंगला या कोठी थी, वहॉ अब नंगी दीवारे खडी है। सौ वर्ष बाद हम समझते है, भारतकी यह स्थिति नही रहेगी, वह धनधान्य सम्पन्न देश होगा। उस समय मधुपुरीको और विशाल तथा समृद्ध बनाया जायगा, लोगोंकी यहॉ और भी अधिक चहल-पहल रहेगी। यदि कैसलकी दीवार खोखली नही हो गई है, तो वह शायद खडा रहे। तब उसका आजसे अधिक सुन्दर इस्तेमाल होगा, लेकिन उस समय "नित उठ दरसन पासूँ" कहकर ठाकुरजीको हाथ जोडनेवाली कोई तीसरी मीरा नही होगी।

८. रायबहादुर

(१)

कुछ ही साल पहले रायबहादुर कितनी मोहक उपाधि थी। रायबहादुर तो दूर, अगर सिर्फ रायसाहबकी उपाधि भी मिल जाती, तो लोग अपनेको कृतकृत्य समझते, पूर्व पुण्यका उदय या भारी तपस्याका सफल होना मानते। आर० बी० (रायबहादुर), सी० आई० ई०, सर, के० सी० आई० ई० के चन्द अक्षरों द्वारा अंग्रेजोने हमारे देशवासियोंको कितना मोह लिया था? कुछ लोगोंके लिए यह चन्द अक्षर सम्मानके लिए उपयोगी भले ही हो, लेकिन अधिकतर वह खर्च करानेके कारण होते थे। जिला-मजिस्ट्रेटसे लेकर लाट साहब तक जिसे भी किसी कामके लिए चन्देकी आवश्यकता होती, वह इन उपाधिकधारियोसे कहता, और वह उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करनेके लिए मजबूर थे। लेकिन व्यवसायियोंके लिए यह चन्द अक्षर हजारो नहीं लाखोंका काम कराते थे। इन अक्षरोंके द्वारा बाजारमें उनकी साख बढ़ जाती थी। सरकारी ठेकोंसे वह अपनेको मालामाल कर सकते थे। लाला दयाचन्दको रायबहादुरकी उपाधि केवल खर्चकी चीज नहीं थी। उनके वैभवके आगे बढने-में इसका बहुत हाथ था। पहले एक बेकारसे वकील, फिर अपने चलते-पुर्जेपनसे अंग्रेजोंके कृपापात्र और अंतमे वकालत छोड व्यवसायमें हाथ लगाना। उन्होने कभी पीछे मुड़नेका रास्ता नहीं देखा, वह हमेशा आगे ही बढते रहे। यद्यपि रायबहादुर इसे भगवान्‌की दया और भाग्यकी बात समझते है, लेकिन दरअसल यह बात नहीं थी। इसमे उनकी तपस्याका बड़ा हाथ था और उससे भी अधिक उनका समय को पहचानना और उसके अनुसार चलना।

रायबहादुर बड़े जमींदार भी बनते थे, अच्छी वकालत चलनेपर किसी-किसी वकीलको भी रायबहादुरी दे दी जाती थी, जब अंग्रेज समझते, कि इसे अपने हाथमें रखना अधिक लाभदायक है। कालेजकी पढ़ाई समाप्त कर दयाचन्दने

जिस वक्त न चलनेवाली वकालत शुरू की, उस समय उन्हें कहाँ ख्याल हो सकता था, कि वह युग-युग जीते, हर युगमें सिरताज बने रहेंगे। वकालतसे निराश हो वह एक छावनीमें सिविलियन क्लर्क हो गये। वहाँ संयोगसे ऐसा काम मिल गया था, जिसमें रसद और उसके ठेकेदारोंसे काम पड़ता था। अंग्रेज फौजी अफसर उतनी दिलेरीके साथ रिश्वत नहीं ले सकते थे, जितना कि आज लिया जा रहा है। लेकिन, शराबकी बोतलें और दूसरे उपहार अफसरों या उनकी मेमोंके लिए त्याज्य नहीं थे, खासकर बड़े-दिनमें तो सहँगीसे महँगी डालियाँ दी जा सकती थीं। दयाचन्दने इस गुणको बहुत अच्छी तरह सीख लिया। क्लर्क रहते समय वह अपने साहब और मेमके पास यह भेंट और उपहार ठेकेदारों द्वारा भिजवाते थे। जब उन्होंने देख लिया, कि एक लगावें, नब्बे पावेंवाली बात है, तो आठ साल बाद उन्होंने वेतन और ऊपरकी आमदनी वाली नौकरीको लात मारी। एक सैनिक ठेकेदारने ऐसे चलते-पुर्जे नौजवानको अपने काममें भागीदार बनाना लाभका सौदा समझा। "हल्दी लगै न फिटकरी, रंग चोखा आवै" वाली बात हुई। दयाचन्दको पूँजी लगाने की अवश्यकता नहीं थी। बस, अपने बड़े भागीदारको अधिकसे अधिक नफा कराना था और स्वयं भी उसमें हिस्सेदार बनना था। चार वर्षमें ही इतनी पूँजी जमा हो गयी, कि उन्होंने ठेकेदारको धता बताया, और स्वयं ठेकेदारी शुरू कर दी। उसी छावनीमें उन्होंने अपना जेनरल स्टोर भी खोल दिया। उधार-पर चीजें मिलनेमें कोई दिक्कत नहीं थी। स्टोर और ठेकेदारी दोनों चलने लगीं, प्रतिद्वंद्विता थी, लेकिन सैनिक ठेकेदार पुराने टाइपके आदमी थे और दयाचन्दने प्रथम विश्वयुद्धके समय होश सँभाला था। वह नये अंग्रेज अफसरोंके अधिक परिचित थे। पुराने ठेकेदार प्राचीनतावादी थे, छूआछूत और कितनी ही दूसरी रूढ़ियोंके शिकार थे; लेकिन दयाचन्द सब तरहसे निर्मुक्त थे, जैसे भी हो वैसे वह अपने स्वामियोंको रिझानेके लिए तैयार थे। उनका हाइटवे या आर्मी-नेवीके यहाँका बना नया सूट देखकर ही अंग्रेज अफसर प्रभावमें आ जाते। अंग्रेजी बोलनेमें भी वह बाबू इंग्लिश नहीं, बल्कि खाँटी इंग्लिशका इस्तेमाल करते थे। यह दोनों सम्बल उन्हें उच्चकुलीन साबित करनेके लिए पर्याप्त थे। यदि क्लर्कोंकी बात चलती, तो दयाचन्द यह विश्वास दिलानेमें

बहुत आसानीसे सफल हो जाते, कि अमीरीमें पले लड़केको जमानेने तबाह किया, एक मर्तबे उसे सबसे निचली सीढ़ियोंसे जीवन आरम्भ करना पड़ा, लेकिन अपने अथक परिश्रम और दूसरे गुणोंसे उसे जल्द ही फिर अपने पैरोंपर खड़ा होनेका मौका मिला। दयाचन्दके कुलीनामके पीछे पड़नेकी किसको फुर्सत थी। कौन जानता था, कि उनके पिता नहीं सात पीढ़ियाँ एक गाँवमें छोटी-सी दूकान करके मुश्किलसे अपना गुजारा करते आये थे। प्रकृतिकी दया भी उनके साथ थी, उनका रंग असाधारण गोरा था, अर्थात् यूरोपमें वह अपनेको इतालियन या स्पेनवासी आसानीसे कह सकते थे। दयाचन्द यद्यपि पीछे लक्ष्मीके लाडले होनेके साथ-साथ पैसोंमें ही नहीं, चर्बीमें भी बढ़ गये, लेकिन जिस वक्त वह सफलताकी आरम्भिक सीढ़ियोंपर बड़ी तेजीसे चढ़ रहे थे, उस वक्त उनका बदन लम्बा, छरहरा था, वह एक बड़े स्वस्थ तरुण थे।

पैसा पैसेको खींचता है, यह कहावत दयाचन्दपर पूरी तौरसे चरितार्थ होती है। हरेक लाभका पैसा उनके घरमें और पैसा ला रहा था। दयाचन्द चाहे गरीब परिवारमें पैदा हुए हों, और केवल अपने अध्यवसायसे ही पढ़ पाये हों, लेकिन उनके स्वभावमें दरिद्रता कभी नहीं समायी। वह हमेशा खुले हाथोंवाले रहे। क्लर्कीके समय भी उनका हाथ खुला रहता। अपने लिए एक शाम भूखे रह जाते, लेकिन यार-दोस्तोंका मुँह मीठा किये बिना नहीं रहते। अब वह बेसरो-सामानीकी अवस्था नहीं थी, स्वतन्त्र ठेका और स्टोर कायम करते ही हर महीने हजारोंकी आमदनी होने लगी। उसमेंसे वह उसी तरह उदारताके साथ खर्च भी करते थे। जल्द ही चालाकपुरके आर्य-समाजके वह सभापति बना दिये गये। चन्दा देनेमें जो हमेशा आगे रहता हो, और साथ ही शहरमें रहनेपर बिना नागा हर रविवार समाज-मन्दिरकी उपासनामें सम्मिलित होता हो, उससे बढ़कर इस पदके योग्य कौन हो सकता था? उन्हें आर्य-समाजके सिद्धान्तोंका ज्ञान पुस्तकोंसे करनेकी अवश्यकता नहीं थी। वैसे दयाचन्द हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाएँ भी जानते थे, और उर्दूमें आर्य-समाजकी काफी पुस्तकें थीं, लेकिन दयाचन्दको उनके पढ़नेकी फुर्सत नहीं थी। हाँ, हर महीनेके चार इतवारोंके कुछ घण्टे समाज-मन्दिरमें लगानेके कारण उन्हें बराबर व्याख्यानोंके सुननेका मौका मिलता था, और वह इस तरह सुनते-सुनते आर्य-

समाजकी बहुत-सी बातोंसे परिचित हो गये थे। पक्के आर्य-समाजी और एक बड़े नगरके समाजके प्रधान होते हुए भी उन्हें कट्टरता और धर्मान्धता छू नहीं गयी थी। मुसलमानोंसे भी उनका सम्बन्ध अच्छा था। उनके कारबारमें सहायक कितने ही मुसलमान कर्मचारी थे। मुसलमानोंके जलसे और त्योहारोंमें भी वह खुलकर चन्दा देते और ईसाइयोंके किसी चन्देमें सबसे पहले और अच्छी रकम दयाचन्दकी ही होती थी। वह चालाकपुरके बड़े आदमियोंमें इतनी जल्दी शामिल हो गये, कि किसीको पता भी नहीं लगा। दस ही वर्ष पहले तो वह ३० रुपयेके क्लर्क थे। ईर्ष्या करनेवाले लोग भी थे, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम थी। खाते-पीते लोगोंमेंसे अधिकांश दयाचन्दकी प्रशंसा करते थे। अपने कारबारको किये दस ही वर्ष हुए थे, कि दयाचन्दको सरकारने रायबहादुर बना दिया। उनके रूप-रंग, चाल-बर्ताव और उदारताको देखकर जिला-मजिस्ट्रेट रायबहादुरीकी सिफारिशके लिए भी हिचकिचाता था। उसकी चली होती, तो वह सीधे सी० आई० ई० की उपाधि दिलवाता। अबसे वह रायबहादुर दयाचन्द कहे जाने लगे।

(२)

रायबहादुर अंग्रेजोंके अनन्य भक्त थे, जैसा कि हरेक रायबहादुरके लिए होना चाहिये। आखिर अंग्रेजोंकी रायमें राय (हॉमें हाँ) मिलानेमें बहादुर होनेके कारण ही तो रायबहादुरी दी जाती थी। फिर उपाधियोंका क्या यही अन्त था? रायबहादुरके हृदयमें आशा थी, कि अंग्रेज बर्करार रहे एक दिन मैं सर और राजाकी उपाधि लेकर रहूँगा। नमक-सत्याग्रह चल रहा था, लोग पिट रहे थे और जेलोंमें ठूँसे जा रहे थे, उस समय अपने जिला-अफसरोंके पास रायबहादुरकी हमेशा यही राय थी, कि इन बदमाशोंको डंडेसे ठीक किया जाय। उनका विश्वास था— हिन्दुस्तानके लोगोंको आदमी बनाना, यहाँ शान्ति और समृद्धि स्थापित करना अंग्रेजोंका काम है। जो भी अंग्रेजी राज्यके खिलाफ कहता है, वह उनकी दयाका पात्र नहीं हो सकता। रायबहादुरको ऑनरेरी मजिस्ट्रेटी भी मिल रही थी, लेकिन उन्होंने कार्यके अधिक होनेका बहाना करके उसे नम्रतापूर्वक इन्कार कर दिया। रायबहादुर अंग्रेजोंके लाडले थे, तो अंग्रेजी शासनके उखाड़नेवाले उन्हें अच्छी नजरसे कैसे देखते? लेकिन, उनकी

उदारता किसी एक वर्गतक सीमित नहीं थी। शिक्षा-संस्थाओंमें भी पैसे देते, और खासकर ऐसी संस्थामें जिसका प्रमुख कोई प्रभावशाली कांग्रेसी वकील होता। रायबहादुर अच्छी तरह जानते थे, कि आदमीके पास सोना रहना चाहिये, फिर "सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।" जिस वक्त कोई राजनीतिक आन्दोलन अधिक उग्र हो उठता, उस समय बेचारे रायबहादुरके लिए चालाकपुरमें रहना मुश्किल हो जाता। लेकिन, अब उनका कारोबार कई शहरोंमें फैल चुका था। द्वितीय महायुद्धके समय उन्होंने खूब पैसा कमाया और लुटाया भी। अब वह अधेड़ उम्रके हो चुके थे। जब व्यवसायमें अपनी सफलता दिखला चुके, तो इस उम्रमें फिर ब्याह करनेमें क्या कठिनाई हो सकती थी? इस समय उन्हें एक शिक्षिता कन्याको ब्याहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी दूसरी पीढ़ी भी आगे बढ़ रही थी। उनका घर एक आधुनिक धनकुबेरके अनुरूप सजा-धजा रहता था। प्रथम महायुद्धके आर्य-समाजी कम-से-कम स्त्रियोंमें अँग्रेजियतके घुसनेके घोर विरोधी थे। वह अपनी स्त्रियोंको आर्य-महिला बनानेके लिए उनकी शिक्षा आर्यभाषा और संस्कृततक सीमित रखना चाहते थे, लेकिन जब रायबहादुरकी पत्नी स्वयं मैट्रिक पास हों, तो उनकी लड़कियाँ वहींतक कैसे रह सकती थीं? रायबहादुरने अच्छी तरह समझ लिया था, कि अंग्रेजी राज्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिए लड़के और लड़कियाँ दोनोंको बचपनसे ही अंग्रेजीकी घुट्टी मिलनी चाहिए, इसलिए उनके घरमें उसी समय अंग्रेजीका अखण्ड राज्य हो गया था, जब कि कितने ही दूसरे लोग इसे विचारकोटि ही में रखे हुए थे। हिरण्यकश्यपुके घरमें भी प्रह्लाद होते देखे गये, लेकिन रायबहादुर इस बातमें बड़े सौभाग्यशाली थे, उनके लड़के-लड़कियाँ अपने पिताकी तरह ही कांग्रेस और कांग्रेसियोंसे नफरत करते थे।

रायबहादुरके आलीशान बंगलेमें बड़े-बड़े अंग्रेजोंकी दावतें होती थीं और उनके भोजन में आर्यसमाज या हिन्दू धर्ममें वर्जित पान-भोजनको ही किसी अंग्रेज रेस्तोरांसे तैयार कराया जाता, जिसके लिए कभी-कभी उन लोगोंकी भी नुक्ताचीनी सुननी पड़ती, जो रायबहादुरके बड़े समर्थक थे। जगमें सेवा-धर्म बहुत कठिन है। रायबहादुरने जब गौरांग-सेवाका अनन्य व्रत ले लिया था, तो अपने और परायोंकी नुक्ताचीनियोंसे वह कैसे विचलित हो सकते थे?

रायबहादुरको हमेशा बड़े-बड़े शिकारोंका शौक था। वह छोटी बातोंमें हाथ नहीं लगाते थे। कितनी ही बार वह अपने सर्वस्वकी बाजी भी लगाकर किसी व्यवसायमें पड़ जाते। इसमें शक नहीं, यदि उसमें असफलताका मुँह देखना पड़ता, तो रायबहादुरको लंगोटी पहननी पड़ती। लेकिन, उनको पूरा विश्वास था, कि मुझे ऐसे दिनोंका मुँह नहीं देखना पड़ेगा, जब कि मैंने एक नहीं अनेक विघ्न-विनायकोंकी उपासना कर रखी है। उनका कारबार अधिकतर सरकारी ठेकोंका था, जिसे वह कभी-कभी अपनी शक्तिसे कई गुना अधिकका ले लेते थे। खतरा तो था, लेकिन वह कलकत्ता-बम्बईके फाटके-जैसा नहीं था। रायबहादुर इस तरह आगे बढ़ते जा रहे थे, लेकिन उन्हें यह देखकर दुःख भी होने लगा था, कि अंग्रेज बागी कांग्रेसियोंके साथ जैसा बर्ताव करना चाहिये, वैसा करनेसे हिचकिचाते हैं। इन्हीं बागियोंके हाथोंमें (यद्यपि उनके अपने प्रदेशमें नहीं) भारतके कितने ही दूसरे प्रदेशोंमें अंग्रेजोंने कितना ही शासन भी दे दिया। रायबहादुरकी गोरांगनिष्ठापर इससे बहुत आघात लगा। पहले तो एक भक्तकी तरह तिलमिलाये, फिर सोचने लगे, कि कहीं नावको गाडीपर चलनेके लिए मजबूर न होना पड़े। उनको मालूम हो गया, कि सभी अण्डोंको एक ही टोकरीमें नहीं रखना चाहिये। उनके अपने प्रदेशमें यद्यपि कांग्रेस नहीं, बल्कि अंग्रेजोंके अनन्य भक्तोंका राज्य था, तो भी रायबहादुर अग्रसोची थे, उनकी नजर वर्तमान ही पर नहीं, बल्कि भविष्यपर भी बराबर लगी रहती थी। अब भी अंग्रेजोंकी अनन्य-भक्तिसे ही वह पैसा कमा सकते थे, किन्तु वैसा करते हुए भी भीतर ही भीतर वह दुविधाके शिकार हो गये थे। रायबहादुरको अंग्रेजोंके प्रतिपूर्ण-विश्वासके कम करनेका एक कारण यह भी पैदा हो गया, कि जहाँ सभी तरहकी सैनिक-असैनिक ठेकेदारियोंमें हिन्दुओंका एकाधिपत्य चला आता था, वहाँ अब अंग्रेज मुसलमानोंकी भी पीठ ठोंक रहे थे, और मुसलमान ठेकेदार भी भारी प्रतिद्वन्द्वी बन गये थे। अपने प्रदेशमें आगे बढ़नेका रास्ता उन्हें रुकता दिखायी दिया, इसलिए अब वह पड़ोसी प्रदेशोंमें भी अपना कारबार बढ़ाने लगे। लड़ाई समाप्त होते-होते रायबहादुरका सूर्य मध्याह्नसे ढलने लगा, उन्हें कुछ बड़े-बड़े घाटे सहने पड़े, लेकिन अभी वह संभालसे बाहर नहीं थे।

(३)

लड़ाईके बाद रायबहादुरकी यही अवस्था थी, जब कि अंग्रेजोंने भारतका शासन-सूत्र भारतीयोंके हाथमें सौंपा। स्थिति इतनी तेजीसे बदलने लगी, कि इसका पता रायबहादुर जैसे तेज दिमागके आदमीको भी नहीं लगा। अभी वह अपने रोजगारके बारेमें नयी तरहसे सोचनेकी तैयारी ही कर रहे थे, कि १५ अगस्त १९४७ को अंग्रेज हिन्दुस्तान छोड़ गये। उसके बाद ही रायबहादुरके अपने प्रदेशमें आग लग गयी और उन्हें वहाँसे भागना पड़ा। लेकिन वह दूसरे लाखों आदमियोंकी तरह अकिंचन होकर अपने प्रदेशसे नहीं निकले। राजधानी दिल्लीमें भी अपना कारबार शुरू कर दिया था, और थोड़ा ही पहले वह मधुपुरीमें एक बहुत बड़ा होटल खरीद चुके थे। खरीदके लिए पैसोंका अभाव होनेके कारण उन्होंने कर्ज लेकर अंग्रेज मालिकको होटलका दाम चुकाया था।

रायबहादुरका सूर्य मध्याह्नसे ढल चुका था, जिस तरह कि उनकी उम्र ढल चुकी थी। अब नये-नये मन्सूबे बाँधनेकी हिम्मत नहीं रह गयी थी, लेकिन जिस बुद्धिसे वह इस स्थानपर पहुँचे, इतने तूफानों और झकोरोंसे नावको खेया, वह अब भी उनके पास मौजूद थी। रायबहादुरने मधुपुरीमें रहनेका निश्चय-कर लिया। उनका सबसे बड़ा कारबार यहाँके सबसे बड़े होटलके रूपमें था, इसलिए भी उन्हें मधुपुरीमें रहनेका निश्चय करना पड़ा। मधुपुरीमें आनेके समय अभी अंग्रेज-भक्ति उनसे अलग नहीं हुई थी, लेकिन चालाकपुरकी सर्वतोमुखीन गौरांग-आराधनाका इतिहास अब पीछे छूट गया था, इसलिए उसके कारण लोगोंकी अँगुलियोंके उठनेका डर नहीं था। मधुपुरीमें गौरांग-उपासनाकी अभी पूरी तैयारी नहीं हो सकी थी, कि उपास्य देवता यहाँसे कूच कर गये। गौरांग-देवताओंके प्रति अपनी भक्तिकी धारा रायबहादुरने कांग्रेसी देवताओंकी ओर मोड़ दी। उनकी बुद्धि यही बतलाती थी, कि जिधर सूर्य उगे, उसी ओर सिर नवाओ। कांग्रेसमें सीधे आनेमें अभी रायबहादुर हिचकिचाते थे। मधुपुरीके कांग्रेसी पण्डे भी नये प्रतिद्वन्द्वीको भीतर घुसने नहीं देना चाहते थे। उन्हें रायबहादुरका पुराना इतिहास मालूम नहीं था, तो इससे क्या? वह झूठ गढ़-गढ़कर उनके खिलाफ प्रचार कर सकते थे। लेकिन, रायबहादुरने तो

निश्चय कर लिया था, कि नये सूर्यकी अनन्य-भक्ति हमें हर हालतमें करनी है। मधुपुरीका सबसे बड़ा और फैशनेबल होटल उनके हाथमें था ही।

मधुपुरीसे भागते वक्त जब अंग्रेज अपनी कोठियोंको मिट्टीके मोल बेच रहे थे, तो बड़े-बड़े सेठोंने उनमेंसे कितनोंको खरीद लिया था। कितनोंने तो खरीदनेकी कीमत अपने मिलोंके मजदूर-कल्याण-फंडमें दी। इससे एक पथ दो काज हुआ—मजदूर-कल्याण-फंडमें जितना रुपया दिया गया, उसपर इन्कम-टैक्स लगनेवाला नहीं था और कल्याण-फंडसे खरीदे हुए मकानमें उनके चिथड़ेधारी मजदूर रहकर मधुपुरीका आनन्द लेंगे, इसकी सम्भावना ही नहीं थी। चाहे किसी कल्याण-फंडसे ये महल लिये और सुधारे गये हों, अब उनमें सेठ-परिवारका निवास होता था। कानून छोटे-मोटे लोगोंके लिए होता है, बड़े लोग कानूनसे ऊपर हुआ करते हैं। चाहे यह निरी धोखा-धड़ी हो, कि मजदूरोंके हकके पैसे सेठोंके विलासमहल तैयार करनेमें लगाये जायँ; लेकिन जब इन विलासमहलोंमें कानूनके धनी-धोरी, स्वयं सरकारके बड़े-बड़े मन्त्री आकर निवास करते हैं, तो किसीकी मजाल क्या, कि सेठोंकी ओर अंगुली भी दिखला सके? वैसे सेठ मजदूर-कल्याण-फंडमें लाखों देनेके लिए मजबूर नहीं थे। जो चोरबाजारीके करोड़ों रुपयों और इन्कमटैक्सकी भारी रकमोंको हजम करके डकारतक नहीं लेते, उनके लिए, यह चन्द लाख रुपये कोई चीज नहीं थे। यद्यपि मधुपुरी जैसी विलासपुरियोंकी यह कोठियाँ—जिन्हें अंग्रेजोंसे लेकर और अच्छी तरह सजानेमें लाखों खर्च किये गये—मजदूर-कल्याण-फंड द्वारा किसी दूसरे ही उद्देश्यके लिए ली गयीं, लेकिन, अब वह मन्त्रियों और बड़े-बड़े अधिकारियोंके अतिथि-प्रासादके कामके लिए अधिक उपयुक्त की जाने लगीं। हाँ, देवता तो बराबर आकर विराज नहीं सकते, इसलिए बाकी समय वह सेठ-परिवारके लिए इस्तेमाल की जाने लगीं।

रायबहादुरके लिए सेठोंके इन अतिथि-प्रासादोंसे होड़ करना आसान काम नहीं था। रायबहादुर दस-बीस लाखके आदमी रह गये थे, जब कि जगत्सेठोंको हर साल करोड़ोंका नफा था। वह अपने अतिथि-प्रासादोंमें देवताओंका सत्कार-सम्मान जितनी शाहखर्चीसे कर सकते थे, उतना रायबहा-

दुरके वसकी बात नहीं थी। लेकिन कुछ बातें रायबहादुरके पक्षमें थी, जो सेठोंको मयस्सर नहीं थी। मधुपुरीके सबसे बड़े और सबसे अधिक फैशनेबुल होटलमें आधुनिक विनोद-विलासके जितने साधन एकत्र हो सकते थे, उतने सेठोंके अतिथि-प्रासादोंमें हर्गिज नहीं हो सकते थे। बूढ़े देवता चाहे सेठोंकी इन अतिथि-सेवाओं, और उससे भी अधिक समय-समयपर मिलनेवाले उपहारोंसे सन्तुष्ट हो जायें, लेकिन देवकुमार, देवकुमारियाँ और देववधुएँ मधुपुरीमें एकान्तवासके लिए नहीं आतीं। उन्हें ऐसे स्थानकी आवश्यकता है, जहाँ उन्हें नवीन सोसाइटी अपने पूरे यौवन और सौन्दर्यके साथ प्राप्त हो। माँ-बाप या सास-ससुरके कांग्रेसी होनेसे यह मतलब नहीं, कि उनकी सात पीढ़ीने अपने भाग्यको गांधीजीके नामपर रेहन कर दिया है। अब तो बड़े-बड़े खद्दरधारी मुख्य-मन्त्रियोंकी बहुएँ और कन्याएँ एक बारके बाल सँवारने, कटाने और शपूपर सौ-सौ रुपया खर्च कर देती हैं। जब चिराग-तले अँधेरा हो, तो गांधीवादियोंकी नयी पीढ़ीसे आशा नहीं रखी जा सकती, कि वह उदुम्बरवर्णा (लाल) शराबोंसे अपनेको वंचित रखेगी। संक्षेपमें इन देव-कुमारों और देवकुमारियोंको जिस नृत्यशालाकी, जिस खान-पानकी आवश्यकता थी, और जैसे लोगोंके साथ मिलने, भेंटनेकी इच्छा थी, उसकी अच्छी तरह पूर्ति रायबहादुरके होटलमें ही हो सकती है। इसीलिए रायबहादुर सेठोंसे पीछे नहीं रहे। कितनी ही बार बूढ़े माता-पिता सेठोंके अतिथि-प्रासादमें ठहरे देखे गये, और उनके सुपुत्र और सुपुत्रियाँ रायबहादुरके होटलमें। यदि वे देव-ताओंकी पूजासे करोड़ोंकी कमाई कर सकते थे, तो रायबहादुरको भी खाली हाथ लौटना नहीं था। पिछली उथल-पुथलके समय वह बड़ी मुसीबतमें पड़ गये थे। कर्ज देनेवालोंका अलग दबाव था, इन्कमटैक्सवाले अलग परेशान कर रहे थे, और अपने प्रदेशमें छूटी सम्पत्तिके बिलकुल डूब जानेका पूरा डर हो गया था। रायबहादुरने नये देवताओंकी उपासना करके अपनी डगमगाती नैया फिर ठीक कर ली। पहले उन्हें रातों नींद नहीं आती थी, हर वक्त यही डर लगा रहता, कि न जाने कब डिग्रीकी कुड़की आवे और परिवार सहित मुझे होटलसे निकालकर बाहरका भिखारी बना दे। अब उन्हें देवताओंका वरदान मिल चुका है। सब कुछ ले-देकर भी यह विशाल होटल अब उनकी ऋणमुक्त

सम्पत्ति है। यह और कुछ और सम्पत्ति मिलाकर २०-२५ लाखकी निष्कण्टक जायदाद उनके हाथमें है।

बतला ही चुके हैं, कि रायबहादुर अब जवान नहीं रहे, और अच्छे खाते-पीते रहनेके कारण ही देखनेमें प्रौढ मालूम होते हैं, नहीं तो वह बुढापेकी सीमाके भीतर पैर रख चुके हैं। ऐसी अवस्थामें नित नये मनसूबे बाँधना उनके रायजादों और रायजादियोंका काम है। वह अब चौथेपनकी मर्यादा पूरा करनेके लिए यथालाभ सन्तुष्ट हैं। २०-२५ लाखकी अकटक सम्पत्ति कम नहीं है। रायबहादुरको भविष्यकी चिन्तामें ही अब मुक्ति नहीं मिल गयी है, बल्कि तरुणाईसे ही जिस सेवा-व्रत (उपासना) की उन्होंने दीक्षा ली, उसे भी वह अब अच्छी तरहसे कर सकते हैं। मधुपुरीके सबसे बड़े होटलसे बढकर ऐसी उपासनाका मन्दिर कौन-सा हो सकता है? छोटा-बड़ा कोई भी मन्त्री मधुपुरीमें क्यों न पहुँच जाय, रायबहादुर उसके स्वागतमें एक भोज दिये बिना नहीं रहते। यहाँ यह कह देना आवश्यक है, कि अंग्रेजोंके चले जानेके बाद जब उनकी दी हुई रायबहादुर, सर और दूसरी उपाधियोंको छोड़ दिया गया, तब भी कितने ही समयतक रायबहादुरने इतनी मिहनतसे कमाई अपनी उपाधिको छोड़ना नहीं चाहा। लेकिन, अब तो कागज-पत्रोंमें कहीं भी अंग्रेजोंकी दी हुई उपाधियोंका नाम नहीं देखा जाता, जिन्दगी भर सरके नामसे पुकारेजानेवाले लोग अब केवल मिस्टर कहे जाते हैं और केवल "स्टेट्समैन" ही जानकारी होनेपर जब-तब सरकी उपाधियाँ पुराने महापुरुषोंके नामोंके साथ लगा देता है, तो दयाचन्दकी अपने रायबहादुरके बनाये रखनेकी कैसी आशा हो सकती थी? अब उनके नौकर उन्हें बड़ा साहब कहते हैं, छोटे साहबका नाम उनके बड़े पुत्रके लिए सुरक्षित हो गया है। दूसरे लोग लालाजी या किसी और नामसे सम्मान प्रदर्शित करना चाहते हैं, लेकिन यदि रायबहादुरके हृदयकी बात पूछी जाय, तो उन्हें अब भी आनन्द आता है, जब कोई उन्हें 'रायबहादुर' कहकर सम्बोधित करता है। वह अब भी समझ नहीं पाते, कि यह रायबहादुरका शुद्ध भारतीय शब्द अंग्रेजोंके जानेसे क्यों वर्जित हो गया?

(४)

अब भी यद्यपि रायबहादुर पहलेहीकी तरह सेवाव्रत-परायण हैं, लेकिन उनकी

अनन्य-भक्ति अंग्रेजोंके साथ विदा हो गयी। उन्होंने जिस वक्त गौरांग-भक्तिको शुरू किया था, उस वक्त यही ख्याल था, कि बड़ी जातिकी कन्याओंकी तरह सारे जन्मके लिए मेरा यह एकही विवाह हो रहा है। जिस तरह मीरा कहती—"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई" उसी तरह रायबहादुर भी गद्गद होकर गा सकते थे—"मेरे तो गौरांग प्रभु, दूसरा न कोई।" गौरांग प्रभु चल बसे, लेकिन रायबहादुर उनके साथ सती नहीं हो सके। यही नहीं बल्कि उन्हें एक नहीं अनेक प्रभुओंके परिणय-सूत्रमें बँधना पड़ा। इस नये जीवनसे रायबहादुरको असन्तोष नहीं है, या असन्तोष रहा तो थोड़े ही दिनोंके लिए। अब उनके प्रेम और श्रद्धाके पात्र अनेक हैं। कांग्रेसी मन्त्री-नेता, अंग्रेजोंके समयमें भी बड़े कहे जानेवाले तथा आज भी उसी तरह शक्तिशाली नौकरशाह तो उनकी भक्तिके भाजन हैं ही; अब चौथेपनमें वह अपने देवताओंकी देखा-देखी जनता-जनार्दनकी सेवामें भी उत्साह दिखला रहे हैं। मधुपुरीके हरिजनोंके वह सबसे अधिक गमख्वाह हैं। उनकी भलाईके लिए जहाँ कहीं भी दौड़-धूप करनी हो, टेलीफोन खटखटाना हो, उसके लिए वह तैयार रहते हैं। बड़े साहबजादेने होटलका काम सँभाल लिया है, इसलिए सेवा-व्रतमें सारा समय लगानेके लिए रायबहादुर पूरी तौरसे स्वतन्त्र हैं। रायबहादुरकी हरिजन-भक्तिको देखकर मन्त्री भी बहुत सन्तुष्ट हैं, और वह हरिजनोंके लिए किसी माँगको ले जानेपर रायबहादुरको निराश नहीं करते। लेकिन इतनेमें ही रायबहादुर सन्तुष्ट कैसे हो सकते हैं? वह मधुपुरीके मजदूरोंके कष्टोंको भी दूर करना चाहते हैं। मजदूरोंकी सभा उनसे बढ़कर किसी कर्णधारको कैसे प्राप्त कर सकती है? उन्होंने मजदूर-सभा संगठित की, और कृतज्ञता दिखलाते हुए सभाने उन्हें अपना प्रधान बनाया। वह मजदूरोंमें प्रिय क्यों न होते, जब कि लखपति होते हुए भी पतलून और कोटके गन्दे होनेकी कोई पर्वाह न कर वह उनके साथ टाटपर बैठनेके लिए तैयार हैं, अपने गन्धर्व-प्रासाद समान होटलमें मजदूरोंको चायकी दावत कर सकते हैं। मजदूरोंके नेताओंके लिए उनके घरमें हमेशा स्वागत और साधु-वचन तैयार रहता है। मधुपुरीके मजदूर भी अधिकतर पाँच महीनेके होते हैं। गर्मियों और शरद्‌के दोनों बड़े-छोटे सीजनोंके खतम होते ही वह फिर अपनी पहाड़ी कन्दराओंको लौट जाते हैं। ऐसे मजदूरोंका संग-

ठन करना आसान काम नहीं है। रायबहादुरको श्रेय देना चाहिये, कि उन्होंने उनका संगठन किया, उनकी तकलीफोंको ऊपरतक पहुँचानेमें सहयोग दिया और उनके प्रभावके कारण अधिकारियोंने कुछ बातोंको मान भी लिया। बाकी, न रायबहादुर चाहते हैं, कि मधुपुरीमें मजदूरोंका राज्य हो, न यहाँके मजदूरोंके नेता जिनमें कितने ही रायबहादुरके कृपापात्र हैं। यदि मजदूरोंके सच्चे हितैषी, मजदूरोंके राज्यका स्वप्न देखनेवाले मधुपुरीमें नहीं पहुँचते, तो वह रायबहादुरके मजदूर-नेता बन जानेकी शिकायत कैसे कर सकते हैं? और जगहोंकी तरह मधुपुरीमें भी लखपती मजदूर-नेताकी खाट निकालनेवालोंका अभाव नहीं है।

रायबहादुरने सचमुच अपने अंडोंको कई टोकरियोंमें रख रखा है। यदि एकमें वह खराब भी हो जायें, तो उससे भारी क्षति नहीं हो सकती। कांग्रेसी देवताओंके यहाँ सुरखुरू हो जानेपर अब उनके रास्तेको स्थानीय छोटे-मोटे नेता कैसे रोक सकते हैं? यदि कहते हैं, कि रायबहादुरकी चाँद खुशामद करते-करते गंजी हुई, तो दुनियाँ जानती है कि आज कांग्रेसी भी दूधके धुले नहीं हैं। वह भी अपनी पुरानी तपस्याओंका आवश्यकतासे अधिक मूल्य ले चुके हैं, और ले रहे हैं। परमिट और कंट्रोलसे उन्होंने भी अपने घर भर अपनी शक्तिके अनुसार अपने भाई-भतीजे-भांजोंको नौकरियाँ दिलवा चुके हैं। काँचके महलमें बैठकर वह दूसरेके ऊपर पत्थर कैसे फेंक सकते हैं? फिर राजकाज सँभालते ही कांग्रेस-महादेवोंने घोषणा तो कर दी है, कि 'बीती ताहि बिसारि दे'। तभी तो सन ४२ के संग्राममें देशभक्तोंके खूनसे हाथ रंगनेवाले अफसर आज पहलेसे भी बड़े-बड़े पदोंपर पहुँचे हैं, पहलेसे भी उनका मान बढ़ा है। अंग्रेजोंका जूता चाटते-चाटते, उनके इशारेपर देशभक्तोंको नाकों चना चबवाते जिनके केश सफेद हो गये, वही दिल्लीके देवताओंके सबसे अधिक कृपाभाजन हैं, वही वस्तुतः सरकारी नैयाको चलाते हैं। नौकरशाह ही नहीं, बल्कि पुराने समयके देशद्रोही कहे जानेवाले अंग्रेजोंके अनन्यभक्त भी अब बड़े-बड़े पदोंपर विराज रहे हैं। जब "गणिका, गिद्ध, अजामिल" जैसोंको हमारे महादेवोंने तार ही नहीं दिया, बल्कि अपनी बिरादरीमें सबसे ऊँचे स्थान

पर बैठा दिया—किसीके लड़केसे अपनी लड़की ब्याही और किसीकी लड़कीको बहू बनाया, रोटी-बेटी एक कर डाली—तो रायबहादुर सेनारेने क्या बड़ा अपराध किया था? उन्होंने गोराग-भक्तिकी थी, लेकिन यह सब करते हुए वह उतने आततायी कभी नहीं बने, जितने कि आज बड़े-बड़े पदोंपर पहुँचे कितने ही नौकरशाह और दूसरे दिखलायी पड़ते है।

दो ही साल पहले यदि कहा जाता, कि रायबहादुर मधुपुरीकी कांग्रेसके सभापति, बल्कि सबसे बड़े कांग्रेसी नेता होने जा रहे है तो किसीको विश्वास नहीं होता। लेकिन कौन कहता है, कि हमारे देशमें सभी जगह कछुएकी चालहीसे हरेक काम होता है? दफ्तरोंमें फाइल भले ही कछुएसे भी धीमी गतिसे चलती हो—अंग्रेजोंके समय जिस कामको एक आदमी समयपर कर सकता था, उसके लिए पाँच आदमी रखे गये और तब भी फाइलें तबतक पड़ी रहती है, जबतक कि उनके कुछ भागको दीमक नहीं चाट जाता। एक तरफ ऐसी मन्द गति देखने पर भी दूसरी जगह लोगोंको हम तेजीसे तरक्की करते देखते है। दो सौ पानेवाला क्लर्क मारते-मारते १५ सौकी गद्दीपर बैठ जाता है। जिनके खानदानोंमें किसी क्षेत्रमें किसीने कभी कोई प्रतिभा नहीं दिखलायी, अब उन खानदानोंकी इजारेदारी सभी बड़े-बड़े विभागोंपर देखी जाती है। यदि कुछ वर्षोंकी प्रादेशिक और केन्द्रीय सिविल-लिस्टोंको देखा जाय, तो विश्वास हो जायगा, कि सरकारके यहाँ सभी जगह धीमी चाल नहीं है। फिर यदि दो वर्षके भीतर ही रायबहादुरको मधुपुरीकी अकंटक नेताशाही मिल जाय, तो इसमें आश्चर्य करनेकी क्या बात? अंग्रेजोंके समय मधुपुरीमें कांग्रेसियोंकी संख्या कम थी। जहाँ अंग्रेजोंका एक बड़ा अड्डा हो, जहाँ चार महीनेके लिए हर साल काफी संख्यामें फौजी गोरे रहते हो, और जहाँ जीविकाके सारे साधन उन सैलानियोंके बलपर निर्भर हो, जो स्वप्नमें भी अंग्रेजभक्तिसे विमुख नहीं हो सकते; वहाँ अधिक संख्यामें बहुत साहसी कांग्रेसी मिल कैसे सकते थे? हाथ-पैर बचाकर कुछ लोग कांग्रेसकी बात कर लिया करते थे, आसपास कोई गोरा न हो, तो गांधी टोपी भी पहन लेते थे, बिना बहुत जोखिम उठाये कुछ लोग जेलखानेमें भी हो आये। बस इसीपर यह लोग रायबहादुरको कांग्रेसी नेता

बननेके अयोग्य मानते थे। लेकिन, कांग्रेसका जितना पता मधुपुरीके इन कूप-मंडूकोंको था, उससे कहीं अधिक रायबहादुर रखते थे। वह समझ रहे थे, कि स्थानीय नेताओंकी साख अब जनतामें नहीं है, इनकी जड़ अब केवल ऊपरके नेताओं और मन्त्रियोंकी कृपामें निहित है, जिसको प्राप्त करनेकी सुविधा मेरे पास अधिक है। कोई देरतक सोता रहे, और आँख मल कर देखे, कि "चिड़िया चुँग गयी खेत", तो इसमें उसका अपना कसूर है। कांग्रेसके नेतृत्वमें राय बहादुरका अब मधुपुरीमें कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गया।

१. गुरुजी

(१)

सहस्राब्दियोंसे मिथिला (विदेह) प्राचीन विद्याकी खान रही। जनक वैदेहने हजारों गायोंका पारितोषिक रखकर ब्रह्मविद्याके विद्वानोंका टूर्नामिंट शुरू करके जो यज्ञ आरम्भ किया था, वह निर्बाधरूपेण आजतक चलता जा रहा है। सभी जगहके ब्राह्मणोंने अनर्थकरी विद्या समझकर संस्कृतका प्रायः पूरा बायकाट कर अर्थकरी अंग्रेजीको अपनाया, लेकिन मैथिल ब्राह्मणोंकी बहुत पीछे, सो भी थोड़ी-थोड़ी उसकी ओर प्रवृत्ति हुई। भारतवर्षमें कोई भी प्रदेश या जिला ऐसा नहीं होगा, जहाँ इतनी संस्कृतकी पाठशालाएँ और विद्यालय हों, तथा इतने विद्यार्थी अपने जीवनका आधा समय संस्कृतके भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके अध्ययनमें लगाते हों। गरीब विद्यार्थी भी वहाँ छात्रवृत्ति पाकर अथवा आस-पासके किसी धनी घरमें मुफ्त भोजन करके संस्कृत पढ सकते थे, यह बात भी संस्कृतके पक्षमें थी। अंग्रेजी पढनेके लिए गरीब विद्यार्थीके पास फीस, किताब और खानेका पैसा कहाँसे आए? मिथिलाने अबतक एकसे एक दिग्गज विद्वान् पैदा करके मण्डन मिश्र, वाचस्पति मिश्र, उदयन, पार्थसारथी मिश्र और गंगेश उपाध्यायकी प्राचीन परम्पराको अक्षुण्ण रखा। आज अनाजका दाम चौगुना बढ गया है, इसलिए जिन पाठशालाओंमें पहले २० की वृत्ति दी जाती थी, अब उनमें ५ को भी देना मुश्किल है। बड़ी-बड़ी जमींदारियोंके उठ जानेका प्रभाव इन पाठशालाओं और उनके विद्यार्थियोंपर बहुत बुरा पड़ा है। संस्कृत विद्वानोंकी संख्या बहुत पहलेसे ही अवश्यकतासे अधिक रही, इसलिए मिथिला-के पण्डित जीविकाके लिए सारे उत्तरी भारतमें प्रवास करते थे। जहाँ एक-एक गाँवमें दर्जनों तीर्थ और आचार्य हों, वहाँ गाँवमें रहते किस-किसको अध्यापिकी मिलेगी?

असहयोगका समय था, बिहारमें उसकी आग भारत भरके और प्रदेशोंसे अधिक लगी थी, लेकिन मिथिलाके संस्कृतज्ञ पण्डित उसकी ओर सावधानीसे दृष्टि डालनेके लिए तैयार नहीं थे। जहाँ बालकोंको तरुण जीवनमें

पाँच शताब्दियों पहलेकी ही शिक्षा-दीक्षा दी जाती हो, उसी समयकी विचार-धाराका बोलबाला हो, वहाँ प्रखर तर्कशास्त्री और बुद्धिवादी भी यदि कूपमण्डूक बने रहें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? वह एक भी रूढ़िको छोड़नेके लिए तैयार नहीं थे। दूसरे प्रदेशमें गए, सन्देह किया गया—वहाँ जरूर कुछ भक्ष्याभक्ष्यका सेवन किया है, या किसीके हाथका पानी पी लिया है, और देश लौटते ही बाकायदा प्रायश्चित करनेके लिए मजबूर किया गया, गाढ़ी कमाईमेंसे पचीस-पचास जाति-भोज और ब्रह्म-भोजमें लगाना पड़ा। मिथिलामें पुरानी भक्ष्य परम्परा आज भी मानी जाती है। 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः' के महावाक्य को मानते हुए वहाँके महान् विद्वान् और धर्मशास्त्री भी मांस और मछलीसे ही नहीं, बल्कि कछुएसे भी अपनेको वञ्चित नहीं रखते, क्योंकि कछुएके भी पाँच नख होते हैं। लेकिन, उनका मांस और मछलीका आहार भी सात्विक होता है, उसमें प्याज-लहसुन नहीं पड़ता। उसे कच्ची रसोईकी तरह ही न चौकेसे बाहर खाया जा सकता है, और न अपने सपंक्ति व्यक्तिको छोड़कर किसी दूसरेके हाथका बना भक्ष्य माना जा सकता है। जब उस समयकी पाठ्य-पुस्तकोंतक भूगोल-ज्ञानको सीमित रखा गया हो, जब कि आधुनिक भूगोलका आविष्कार नहीं हुआ था, तब भारतके मानचित्रमें कौन-सा देश कहाँ है, इसका कैसे पता लग सकता था ?

गुरुजी इसी मिथिलाके एक रत्न थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा परम्पराके अनुसार हुई थी। वह अक्षर-परिचयके लिए किसी प्राइमरी स्कूलमें नहीं गए, बल्कि पुरानी परिपाटीसे उन्होंने अपने गाँवमें ही एक संस्कृत पण्डितसे वर्णमाला सीखी। यदि दो-तीन साल किसी प्राइमरी पाठशालामें लगाए होते, तो कमसे कम जिलेका भूगोल तो उन्हें पढ़ना और नक्शा देखना पड़ा होता। उन्होंने संस्कृतका अध्ययन किया। जहाँपर अनेक शास्त्रके आचार्योंकी संख्या अधिक हो, वहाँ पण्डितोंकी अगली पंक्तिमें बैठना हरएकके भाग्यकी बात नहीं है, और जिसे अगली पंक्तिमें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हो, उसे अधिक मनस्वी होनेपर भी मिथिलासे बाहर जानेकी आवश्यकता थी। मिथिलाका कोई विद्वान किसी म्लेच्छ देशमें जाना पसन्द नहीं करता, परन्तु पेट उसे मजबूर करके बाहर ले जाता है। जिस देशमें वैदिक कालसे चले आते मत्स्य-मांसके पवित्र

आहारको अपवित्र समझा जाय, वहाँ जानेके लिए भला कोई धर्मप्राण मैथिल पण्डित कैसे तैयार हो सकता है, जब कि वह जानता है कि वहाँ सालों घासाहारपर गुजर करनेके बाद भी गाँवमें आनेपर प्रायश्चित करना पड़ेगा। गुरुजीकी उमर उस समय २४-२५ की थी, जब कि उन्होंने विद्याका अध्ययन समाप्त किया और जब उन्हें दरिद्रताके पंकमें निमग्न अपने परिवारका उद्धार करना था, और अपना भी।

मिथिलामें जनकने अपनी सीताको वीर्यकन्या घोषित किया था, जो कार्य उस समय भी शायद क्षत्रियोंतक ही सीमित था। ब्राह्मण हमेशासे क्रय्य-क्रीता कन्यासे विवाह करते आते रहे—अपवाद बहुत कम रहे और वह भी हालकी देखादेखीसे शुरू हुए। दरभंगा जिलेके सौराष्ट्रमें हजारों आमोंका वह बगीचा अब भी मौजूद है, जो हर साल पचासों हजार आदमियोंके मेलेसे भर जाता है, और यह मेला होता है केवल विवाह ठीक करनेके लिए। घटक (ब्याहके पण्डे) अपनी पुरानी पंजियों या कुलनामेकी बहियोंको लेकर वहाँ बैठ जाते हैं। उनकी साक्षी बिना किसीका ब्याह नहीं हो सकता। वही वंशकी प्रामाणिकताको बतलाते हुए कन्या और वरके परिवारोंका परिचय कराते हैं और ब्याहका निर्णय देते हैं। हालमें कितनी ही बार इन घटकोंने अमैथिल ब्राह्मणों या निम्नश्रेणीके ब्राह्मणोंसे पैसे लेकर ब्याह भी करवा दिए हैं, यद्यपि ऐसा कम ही हुआ है। सालभरमें मिथिलामें जितने भी विवाह-योग्य लड़के और लड़कियाँ होते हैं, उनके सम्बन्धी सौराष्ट्रकी इस विवाह-सभा या मेलेमें सम्मिलित होते हैं। वरको स्वयं जाना पड़ता है, कन्याके जानेकी अवश्यकता नहीं। कन्या चाहे दस वर्ष या कमकी भी हो, लेकिन वर शायद ही कोई २० से कमका मिले। उसी मिथिलामें दूसरी बड़ी जातियाँ जहाँ वरके लिए बड़े-बड़े तिलक माँगती हैं, वहाँ मैथिल ब्राह्मण अपनी कन्याके लिए कन्या-शुल्क माँगता है, जो कुछ सौसे हजारोंतक हो सकता है। गुरुजी यदि अपनी जन्म-भूमिमें रह जाते, तो चाहे किसी तरह भूखे-दूखे रहकर गुजारा भी कर लेते, किन्तु उनका ब्याह तो कभी नहीं हो सकता था। छोटी उमरकी कन्याके लिए भी तो अब पाँच-सात सौ रुपए चाहिए थे, जिसे वह कहाँसे लाते? गाँवमें रहकर वह न सौराष्ट्रकी सभामें जानेकी हिम्मत करते, और न उन अनेक मत्स्य-मांस

तथा दूसरे स्वादिष्ट भोजनोंकी आशा रख सकते थे, जो कि विवाहके समय मैथिल ब्राह्मण वरको महीने भर श्वसुरकुलमे रहकर मिलता है।

गुरुजी अभी उनका नाम नहीं था। वह तो उन्हे अगले तीन दर्जन वर्षोंके कर्मक्षेत्रमे जाने पर मिला। यद्यपि गुरुजी गॉवके रहनेवाले तथा कूपमंडूक-शिरोमणियोके कुलमें पैदा हुए और बढे थे, किन्तु हजारो दूसरे मैथिल संस्कृतज्ञो-की तरह उनके गॉवके भी कुछ पण्डित जीविकाके लिए स्वेच्छापूर्वक प्रवास करते थे। गुरुजीका भूगोल-ज्ञान इन्हीं पण्डितोकी बताई हुई बातोतक ही सीमित था। पश्चिमको मैथिल ब्राह्मण ज्यादा पसन्द करते थे, क्योंकि अभी वहाँ शास्त्रोकी मॉग थी। उनके दक्षिणमे बगाल नवद्विपामे दीक्षित हो चुका था। मैथिल ब्राह्मण रसोइयोकी मॉग यद्यपि बगालमे काफी थी, किन्तु पण्डितों-की नहीं, इसीलिए उनकी यात्रा पश्चिम दिशाके लिए होती थी। पश्चिममे राजस्थान तथा दूसरे प्रदेशोमे बहुत-से राजा भी रहते थे, जिनकी सभामें अपनी विद्वत्ताके कारण कितने ही मैथिल विद्वान् राजपण्डित भी बन चुके थे, उन्होने सम्मानके साथ धन भी काफी कमाया था। यद्यपि सबके लिए राजपण्डित होना साध्य नहीं था, लेकिन बननेकी कामना तो हर एक कर सकता था। यदि वैसे स्वभावका न भी हुआ, तो भी किसी संस्कृत पाठशालामें मिथिलाकी अपेक्षा तिगुना-चौगुना वेतन तो अवश्य मिलता। गुरुजीको गॉवके पण्डितोंने बतला दिया था, कि पश्चिम देशवाले धर्मशास्त्रकी मर्यादा से भ्रष्ट हे, उनके यहॉ मछली-मास खाना भारी पाप समझा जाता है, इसीलिए हमें वर्षो ऋषियोंके समयसे पुनीत मधुपर्कको विना मासके ही ग्रहण करना पडता है। मत्स्य-कच्छ-वाराह जैसे विष्णुके तीनो अवतारोको चट कर जानेवाले किसी मैथिल विद्वानको निरे घासाहारी देशमे जाना क्योकर पसन्द आता? यदि संस्कृत पाठशालामे नौकरी मिलती, तो वहॉ भी कसम खाकर कहना पडता, कि हमारी सात पीढ़ीने कभी मास-मछलीको छूआ नही। चुपकेसे भी मास-मछली बनानेका कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता था। घोर-से-घोर घासाहारी शहर या कस्बेमे भी पका-पकाया मास कभी-कभी सुलभ होता है, लेकिन चौकेसे बाहर बना मास तो अभक्ष्य ठहरा!

गुरुजीने देशाचार और भूगोलकी जो मौलिक शिक्षा ग्राममे प्राप्त की थी,

उसने बता दिया था कि पश्चिममें बड़ी तपस्याका जीवन बिताना होगा। उनको यह मान लेना पड़ा था, कि 'परदेश कलेसु नरेसहुको'।

(२)

एक दिन गुरुजीने दरभंगा जिलेके अपने गाँवसे शुभ मुहूर्त देखकर पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। रेल थी, इसलिए कुछ रुपयोंका किसी तरहसे प्रबन्ध करके कहीं भी पहुँचा जा सकता था, लेकिन कहीं भी पहुँचकर नौकरी थोड़े ही मिल सकती थी? गुरुजीने प्राचीन परिपाटीसे केवल संस्कृतका अध्ययन किया था। बुद्धि अच्छी थी, इसका परिचय तो इसीसे मालूम होगा, कि उन्होंने देशके बाहर पैर निकालनेका साहस किया। उनके सम्बन्धी परिचित विद्वान् उत्तर प्रदेशके पश्चिमी शहरोंमें जहाँ-कहीं भी थे, वहाँ वह जीविकाके लिए गये। कभी एक पाठशालामें कुछ समय रहकर पढ़ाया और कभी दूसरी पाठशालामें। पाठशालाओंमें वेतन बहुत कम मिलता था। स्कूलोंमें संस्कृत पढ़ानेवाले अध्यापकोंका वेतन कुछ अधिक होता था, लेकिन उसके लिए थोड़ा-सा अंग्रेजीका ज्ञान भी आवश्यक था। गुरुजीको यह बात मालूम होते देर नहीं लगी और उन्होंने किसी पाठशालामें पढ़ाते हुए ए-बी-सी-डी सीख ली, एकाध किताब भी पढ़ ली। उनकी तो इच्छा थी, कि अमरकोशकी तरहका यदि कोई अंग्रेजीका कोष होता, तो उसे रट लेते। बहुत पूछताछ करने पर जब सबने यही बतलाया, कि अंग्रेजीमें अमरकोशकी तरहका कोई पर्यायवाची कोश नहीं है, तब उन्हें विश्वास हो गया कि अंग्रेज अभी विद्यामें बहुत पिछड़े हुए हैं। यद्यपि उन्हें यह बात गलत बतलाई गई थी, चाहे पद्यमें न हो, किन्तु गद्यमें अंग्रेजीके पर्यायवाची कोश हैं, हाँ, कोशके रटनेकी परिपाटी न होनेके कारण उनका उपयोग केवल कवि तथा विशेषज्ञ ही करते हैं, दूसरे लोगोंको अकारादिक्रमवाले कोश ज्यादा लाभदायक होते हैं, और वह उन्हींके बारेमें जानते हैं। घोखनेकी महिमा गुरुजी बचपनसे ही जानते थे। वह अनेक बार सुन चुके थे 'घोखन्त विद्या खनन्त पानी।' दूसरोंके लिए घोखना चाहे शामतकी बात हो, किन्तु गुरुजी अपने दूसरे सहाध्यायिओंकी तरह उसमें विजय प्राप्त कर सकते थे। न जाने कितनी बार उनको खयाल आया—'यदि सारस्वत या लघुकौमुदीकी तरहका रटने लायक सूत्रोंमें अंग्रेजीका व्याकरण होता और अमरकोशकी तरहका

पद्यबद्ध पर्यायवाची कोश, तो कैवल एक-डेढ़ वर्षकी बात थी। दोनोंको कंठस्थ करके मै सिद्धमनोरथ हो जाता।' ऐसे साधन न रहनेपर भी गुरुजीने यह निश्चय कर लिया, कि थोड़ी-सी अंग्रेजी जरूर पढ़नी है, जिससे किसी अंग्रेजी स्कूलमें संस्कृत पढानेका काम मिल जाए। लेकिन, इस नगरके हाईस्कूलोंमे अब थोडी-बहुत अंग्रेजी जाननेवाले संस्कृतज्ञ दुर्लभ नहीं थे। गुरुजीको किसीने बतलाया, यदि पहाडोंमें चले जाएँ, तो इतने अंग्रेजी ज्ञानमें भी आप किसी स्कूलमें संस्कृत-अध्यापक बन सकते है और उन स्कूलोंमें मैदानी स्कूलोंकी अपेक्षा वेतन भी अच्छा मिलता है।

जो तरुण अपने गाँवसे निकलकर पश्चिमके बडे-बडे शहरोंकी हवा खा चुका था, उसके लिए मधुपुरी जाना कोई मुश्किल नहीं था। एक दिन गुरुजी मधुपुरीमें पहुँच ही गए।

मैथिलोंकी पण्डिताईका लोहा सभी जगह माना जाता है, इसलिए मधुपुरी-में आने पर उनके लिए यह सुभीता जरूर था, कि जानकार उनके पाण्डित्यको मान सकते थे। अंग्रेजीका ज्ञान उनका नहींके बराबर था, पर सरदीके भयके कारण मधुपुरीमें जाकर अध्यापकी करनेसे लोग हिचकिचाते भी तो थे। पहाड़ी लोगोंके लिए मधुपुरीकी सरदी कोई सरदी नहीं, लेकिन उनके यहाँ आजसे ३०-३५ वर्ष पहले संस्कृत पण्डितोंकी संख्या माँगसे अधिक नहीं थी। मधुपुरीमें आकर मैथिल तरुणको गुरुजीकी उपाधि जल्दी ही मिल गई। मधुपुरी अभी पूरी तौरसे अंग्रेजोंकी पुरी थी। गांधीजीका असहयोग आन्दोलन उस समय सारे भारतमें छाया हुआ था, और लोगोंके हृदयोंसे अंग्रेजोंकी धाक उठ गई थी। लेकिन मधुपुरी—इंग्लैण्डसे उठाकर रखे इस भूमिके टुकडे—में उनका प्रताप-सूर्य अभी भी मध्यान्हपर था। गरमी और बरसातके पाँच-छ महीनोंमें मधुपुरी अंग्रेजोंकी होती थी। उसके किसी-किसी मोहल्लेमें काले चमड़ेकी अपेक्षा गोरे ही अधिक देखे जाते थे—नौकरपेशा सरकारी अफसर भी यहाँ आते थे, व्यापारी और ईसाई धर्म-प्रचारक भी। यद्यपि ईसाईको संस्कृत पढाना पाप था, तथापि मैथिल पण्डित जब नास्तिक आर्यसमाजियों और जैनोंके हाथमें विद्या बेच सकते थे, तब उससे एक ही सीढी नीचे मधुपुरीके पादरी थे। दूसरे जहाँ ४०–५०) देकर समझते थे कि हम बड़ी उदारतासे काम ले रहे है, वहाँ

पादरी १००) देकर भी उपकार नहीं जतलाते थे। गुरुजीको पहले पढ़ानेका काम इन्हीं पादरियों और उनके स्कूलोंमें मिला। वह समझते थे, जब वेतन लेना स्वीकार किया, तब विद्याका बेचना तो हो ही गया। अब सवाल केवल इसीका है कि सस्ते बेचें या मँहगे। दूसरे मैथिल विद्वान् जिस तरह वैतनिक अध्यापक होकर भी अपने धर्मकी खान-पान और रीति-रिवाजके पालन द्वारा रक्षा करना चाहते थे, वही करनेके लिए गुरुजी भी तैयार थे। सीधे-सादे इस विद्वान से उनके शिष्य बहुत प्रसन्न रहते थे। गुरुजी झूठसाँच नहीं जानते थे और अपने कामको बड़ी तत्परतासे करते थे। देर भले ही हो, किन्तु जो भी उनके घनिष्ठ सम्पर्कमें आता, वह उनमें अपने विश्वास और श्रद्धाको बैठाए बिना नहीं रहता। गुरुजीके जब इतने प्रशंसक हों, और सो भी गोरागोंमें, तो उन्हें यहाँके हाईस्कूलोंमें संस्कृत पढ़ानेका काम मिलनेमें क्या दिक्कत हो सकती थी। सिफारिश करनेवाले भी जानते थे, कि इससे हमारी पढ़ाईमें कोई कठिनाई नहीं होगी, स्कूलके समयके बाद गुरुजी हमें पढ़ा जाया करेंगे। गुरुजी अब बाकायदा एक अर्ध-सरकारी स्कूलमें अध्यापक हो गए।

(३)

गुरुजी मधुपुरी-जैसे यूरोपीय लोगोंकी एक नगरीमें रहकर कैसे वही रह सकते थे, जो कि वह दरभंगाके गाँवमें रहते समय थे। एक-दो सालतक उन्होंने धोतीमें मधुपुरीके जाड़ोंको बिताना चाहा, लेकिन सालमें दो-चार बार जहाँ बरफ पड़ जाती हो, दो-चार हफ्ते जहाँ तापमान हिमबिन्दुसे नीचे जाता हो, वहाँ दरभंगाके मैथिल ब्राह्मणकी पोशाक कभी सुखद नहीं हो सकती। एक ही दो जाड़ोंने गुरुजीको बतला दिया, कि धोती और मिरजईका आग्रह बेकार है। उन्हें अपने ट्रंकमें जरूर रख लेना चाहिए, जिससे वे गाँव जानेके समय काम आएँ। अब वह कोट और पायजामा पहनने लगे। मोटे ऊनी पट्टूका बन्द गलेका कोट तथा पतलूननुमा पायजामा, जब उन्होंने पहले पहल दिसम्बरके महीनेमें पहना, तब उन्हें अपनी बेवकूफीपर अफसोस होने लगा—"मैंने क्यों दो वर्षतक यों ही जाड़ोंको झेला।" तबसे गुरुजी बराबर बन्द गलेके कोट और पायजामेमें रहते। गरमियोंमें वह धोती पहन सकते थे, लेकिन अब उन्हें धोती स्कूलके लिए सम्भ्रान्त पोशाक नहीं जँचती थी। स्कूलमें हो चाहे मिशनरियोंकी

पाठशालामें, सभी जगह वह इसी विनीत और सुखकर वेषमें जाते। मैथिल पगड़ी मधुपुरीतक उनके साथ आई थी, लेकिन उसकी यहाँ कोई महिमा नहीं थी। गान्धी टोपीका मिथिलाके गाँवसे लेकर सभी जगह प्रचार हो गया था, पर, मिशनरी या सरकारी स्कूलके अफसर यह पसन्द नहीं कर सकते थे, कि गान्धी टोपीवाला उनके यहाँ काम करे। इसकी दवा मुश्किल नहीं थी। गुरुजी ने सफेद गान्धी टोपीको नहीं अपनाया, दूसरे रंगकी गाधीनुमा टोपीसे किसीको चिढ़ नहीं थी। मधुपुरीने जवानीमें ही गुरुजीको अपना एक विशेष रंग इस पोशाकके रूपमें दिया, जिसे वह घरसे बाहर सदा अपनाते रहे और जाड़ेमें घरके भीतर भी।

मैथिल पण्डितोंके लिए नित्य स्नान करना और अपने हाथसे भोजन बनाना आवश्यक था, यदि वे अपने धर्मकी पूरी तौरसे रक्षा करना चाहें। इन कूप-मण्डूकोंके धर्मशास्त्रको उन्हीं पोथियोंसे मालूम हो जाता है, कि धर्मकी विधियाँ भी देश, काल और पात्रके अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। मधुपुरी-जैसे ठंढे स्थान में नित्य स्नान करना धर्मके लिए आवश्यक नहीं है। ऋषियोंने हिमालयके वायुमें पवित्र करनेकी उतनी शक्ति मानी है, जो कि मैदानमें गंगाजलमें है। यदि गरम पानी हो और गुसुलखाना, तो स्नान करनेमें अधिक कष्ट नहीं हो सकता, लेकिन गुरुजी आखिर चार पैसा कमानेके लिए घर छोड़कर आए थे।

मधुपुरी आनेके दो ही वर्ष बाद उनके पास इतना पैसा हो गया था, कि सौराष्ट्रकी सभामें जाकर उन्होंने अपना ब्याह ठीक करवा लिया। लाल धोती पहनकर दामाद भी बन गए, और श्वशुर-कुलके महीने भरके मधुर आतिथ्य, स्वादिष्ट भोजन और तरुण ब्राह्मण-कुमारियोंके मधुरालाप और व्यंगका आनन्द लेते रहे। सालमें एक बार अब घर जाना भी उनके लिए आवश्यक था। गृहिणीको साथ ले जाना मैथिल ब्राह्मणोंमें अभी निषिद्ध था। यदि वह अपनी पत्नीको साथ ला सकते, तो इसमें शक नहीं उन्हें बड़ा आराम होता, पका-पकाया खाना मिलता और घर चलानेकी चिन्तासे दूर हो जाते। लेकिन, यह तो उनकी अगली पीढ़ीके भाग्यमें बदा था। उनकी ही उमरके एक दूसरे मैथिल किन्तु अंग्रेजीके विद्वान् मधुपुरीके दूसरे छोरपर अपने बँगलेमें रहते। उनका एक मिनट भी बिना सिगारके गुजारा नहीं चल सकता था और खाने-पीनेमें भी वह परम स्वच्छन्द थे। मैथिल आचार-व्यवहार और वेषभूषा उनके पिताके

साथ ही खतम हो चुकी थी और वह स्वय विलायत भी हो आये थे। गुरुजी यह भी देख रहे थे, कि इस तरह स्वच्छन्द विहार करते भी बिरादरीमे अब भी वह सबसे कुलीन समझे जाते है, मिथिला जाने पर उनकी मान-मर्यादामें कोई कमी नही है; लेकिन, वह उनका अनुकरण नहीं कर सकते। जानते थे 'समरथको नहिं दोष गुसाईं।' उन्हे अपनी सीमाके भीतर रहना था।

मैदानी स्कूलोमे लम्बी छुट्टियाँ गरमियोमे होती है, लेकिन मधुपुरी-जैसे हिमालयके ठंडे नगरोके स्कूल जाडोंके सबसे कडे महीनो—जनवरी-फरवरी—मे बन्द होते है। मधुपुरीसे मिथिला जानेमे खर्च पडता था जरूर, लेकिन अभी रेलोका किराया उतना बढा नही था और जाए बिना काम भी नहीं चल सकता था। इसलिए जबतक जवानीकी सीमाके भीतर रहे, गुरुजी प्रायः हर साल छुट्टियोमे अपने घर चले जाया करते थे। जब दो-चार सन्ताने हो गई, तब उनका यह नियम कुछ शिथिल होने लगा। गुरुजीने ठंडे पानीसे नित्य स्नानका नियम बहुत सालोतक बनाए रखा, पीछे जब आर्थिक अवस्था कुछ बेहतर हो गई, तो गरम पानीसे स्नान कर लिया करते थे। नित्य स्नानसे ज्यादा कष्टदायक उनके लिए था, स्वय-पाकी बनना। उन्हे खाना अपने हाथ-से बनाना पड़ता। केवल एक धोती और अँगोछा पहनकर मई-जून छोड दूसरे समयमें भी रहना मुश्किल था, फिर नवम्बर-दिसम्बरमे धोती ऊपर-नीचे करके खाना बनाना जबरदस्त साँसत थी। ऐसा करनेपर आधी भूख दाँतके कड़कडानेमें ही निकल जाती थी। गुरुजी पुराने समयके पुराने ढगके पण्डित थे, पर, उन्होने अपनी अक्ल बेच नही खाई थी। मधुपुरीके वातावरणने जहाँ एक ओर उनका दाँतसे दाँत बजाना शुरू किया था, वहाँ उन्हे कुछ अक्ल भी दे दी—"क्यो झूठ-मूठ साँसत सह रहे हो। इसके कारण तुम्हारे लिए स्वर्गमे वैसा एक बँगला रिजर्व नही हो जायगा, जैसा कि तुम्हारे जाति-भाईके लिए मधुपुरीके दूसरे छोरपर बन गया है। दरभगासे तुम्हारे गाँवका आदमी रोज-रोज नहीं आ रहा है कि वह जाकर शिकायत कर देगा और तुम्हे जातिच्युत होना पडेगा।" दरभगाके गाँवोंमे भी जब गाधीकी जयजयकार होने लगी थी, और जहाँ कस्बो और शहरोमें हिन्दू भोजनालयोका कहीं पता नही था, वहाँ अब माँस-मछली-सहित सस्ते भोजन देनेवाले हिन्दू-होटलोंकी भरमार हो गई

थी, जिनमें आँख बचाकर कभी-कभी गाँवोंके पण्डित भी खा आते थे। गुरुजीको मालूम हो गया कि अब खान-पानके बारेमें पुरानी कट्टरताका अक्षरशः पालन करना निरी मूर्खता है। मधुपुरीमें वैष्णव भोजनालय भी थे, जहाँ ब्राह्मणके हाथका शुद्ध निरामिष पका-पकाया भोजन उससे सस्तेमें मिल सकता था, जितना कि खुद पकानेमें लगता। गुरुजीने अब गौड़-भोजनालयोंमें भोजन करना शुरू कर दिया; पर उन्होंने यह निश्चय कर लिया, कि सुलभ होनेपर भी मांस-मछलीका मधुपुरीमें रहते समय परित्याग करना ही अच्छा है। इसकी कसर वह छुट्टियोंके दिनोंमें अपने गाँवमें निकाला करते थे। मधुपुरीके जिस मोहल्लेमें वह रहते थे, वह बनियोंका था, जो कट्टर घासाहारी थे। गुरुजीको वह भी गुरुजी कहते, समय-समयपर उनसे कथा बँचवाते, साइत-मुहूर्त पूछते, और भोजमें बुलाकर दक्षिणा-सहित भोजन कराते। इन सबके साथ जिधरसे भी गुजरते, गुरुजीके लिए नित्य सैकड़ों अंजलियाँ उठ जातीं। यदि गुरुजीके बारेमें जानते कि वह मांसाहारी हैं, तो निश्चय ही उनकी श्रद्धा सूख जाती। गौड़-भोजनालयके भोजनको बनिए भी पवित्र मानते थे। पर यदि मिथिलामें उनके गाँवोंके लोगोंको पता लगता कि वह दूसरी जातिके ब्राह्मणके हाथकी रसोई खाते हैं, तो वह गंगाकी बालू फाँकने और स्नान करनेसे ही छुट्टी नहीं देते, बल्कि एक गवाह देकर गया भेजते और सभी जगहोंपर सात पीढ़ीके पुरखोंको पिण्डदान देकर पण्डेका प्रमाणपत्र लानेके लिए बाध्य करते। गुरुजीमें मैथिल कवि नागार्जुन-जैसी प्रतिभा नहीं थी, कि गंगापार उतरते ही साक्षीको भी लेकर पटनाके सिनेमाघरमें पहुँच जाते और सुन्दर फिल्म दिखाकर कृतकृत्य होते साक्षीको यह कहकर फँसा लेते; "क्यों पैसा-कौड़ी फेंको और उनके श्राद्ध-तर्पणपर खर्च करोगे। इसी तरह 'अर्ध अर्ध स्वाहा', बचे पैसेका आधा हमारी जेबमें और आधा आपके सैर-सपाटे और जेबके लिए। पण्डेका प्रमाणपत्र आठ आनेमें ले लेना मेरे दाहिने हाथकी बात है।" नागार्जुन हर प्रायश्चित्तके बाद चुटिया कटाते और सभी तरहके भक्ष्याभक्ष्यका सेवन करते बाहर घूमते रहे। लेकिन, गुरुजीको इतनी हिम्मत नहीं थी। वह मधुपुरीमें गौड़-भोजनालयमें भोजनकर तथा म्लेच्छोंके अधोवस्त्र और ऊर्ध्ववस्त्रको पहनकर ही सन्तोष कर लेते थे।

मधुपुरीके स्थायी निवासियोंमें गुरुजीके परिचितोंकी संख्या बहुत जल्दी बढ़ गयी। पुराने ढर्रेके बनिए तो उनका सत्कार-सम्मान करते ही थे, अंग्रेजी स्कूलके संस्कृत-पण्डित होनेसे नव-शिक्षितोंमें भी उनके परिचितोंकी संख्या काफी हो गयी थी। सबके साथ उनका बर्ताव बड़ा अकृत्रिम और मधुर होता, इस-लिए भी उनके मित्रोंकी संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी। मधुपुरीमें यूरोपीय स्कूलोंके यूरोपीय अध्यापक भी उनसे परिचित थे, पादरियोंके यहाँ भी उनका मान था। कोई पार्टी हो या भोज, उनके पास निमन्त्रण जरूर आता था। गुरुजी ऐसे निमन्त्रणकी अवहेलना करनेके लिए तैयार नहीं थे, चाहे वह हिन्दूका हो या म्लेच्छ-क्रिस्तानका। वह वहाँ पहुँच, मेजपर एक तरफ बैठ जाते थे। इसमें मेजबानको भी आपत्ति नहीं हो सकती थी कि गुरुजी निरामिषा-हारी हैं। चाय, फलाहारी देशी-विदेशी मिठाइयाँ, फल उनके सामने भी आते थे। जिस तरह गौड़-भोजनालयमें भोजन करके वह मिथिलाके धर्मशास्त्रकी अवहेलना कर रहे थे, उसी तरह यहाँ भी कर सकते थे। कौन मैथिल ब्राह्मण यहाँ देख रहा था? लेकिन गुरुजीकी बुद्धिका ताला पूरी तौरसे खुला नहीं था। सब लोग अनेक प्रकारके स्वादु भोजनपर हाथ साफ करते और वह चायके प्यालेतकमें भी हाथ नहीं लगाते। उनके चेले-चाँटे भी अब अध्यापक हो चुके थे। कितने ही ऐसे भोजोंमें गुरुजीकी बगलमें बैठते और गुरुजी अपनी तश्त-तरियोंको धीरेसे उनकी ओर खिसका दिया करते। फलोंमें कोई छूत नहीं थी, लेकिन गुरुजी शायद ही कभी फलको मुँहमें डालते। आखिर तब भी तो पानी-की जरूरत पड़ती, जो कि बैरा-खानसामाका छुआ शीशेके गिलासोंमें आता। वह हर साल सैकड़ों भोजोंमें जाते, लेकिन अपना कर्म-कमण्डल हाथमें लिए ही, जिसके कारण तुलसी बाबाके कथनानुसार 'बुन्द न अधिक समाय।' कुछ समयतक बनियोंके यहाँ भी खान-पानमें परहेज करते थे, लेकिन पीछे वह उनके घृतपक्व, पयःपक्वको भक्ष्य मानने लगे।

(४)

गुरुजीको मधुपुरीमें आए अब तीस वर्षसे ऊपर हो गए थे। मौसमके समय यद्यपि मधुपुरीमें सैलानियोंकी संख्या सात गुनी आठ गुनी हो जाती,

जिनमें बहुतसे नए चेहरे होते; लेकिन जहाँतक मधुपुरीके दूकानदारों, स्कूलोंके अध्यापकों तथा दूसरे स्थायी निवासियोंका सम्बन्ध है, वह सभी गुरुजीके परिचित थे। मधुपुरी उनके लिए अब घरसे भी बढ़कर थी। यहाँ रहते हुए वह महीनेमें इतना पैसा कमा लेते थे, जितना मिथिलाके किसी पण्डितको कल्पना भी नहीं हो सकती थी। साथही समुद्रतलसे साढ़े छ हजार फुटकी ऊँचाईपर बसी इस पुरीकी आबोहवा भी उनके लिए बड़ी मोहक थी। वह केवल जाड़ोंमें ही महीने-डेढ़-महीनेके लिए घर जाते थे, उस समय उनके गाँवमें गरमीका डर नहीं था और सरदी तो उससे कड़ी मधुपुरीकी गरमियोंमें भी वह देखते थे। गुरुजी अब ५६ सालके हो रहे थे, जिसके बाद स्कूलकी नौकरीसे अलग होना था। उन्हें सबसे कठिन बात यह मालूम होती थी, कि गरमियोंमें दरभगाके अपने गाँवकी लू मैं कैसे बरदाश्त कर सकूँगा? यद्यपि २४–२५ वर्षकी उमरतक इस लूको वह अपने गाँवमें काटते आए थे, लेकिन तब उनका परिचय मधुपुरीसे नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त, वह यह भी जानते थे, कि गाँवमें पहुँचकर मैं फिर कोई कमाई नहीं कर सकता। अर्ध-सरकारी स्कूलमें पेन्शन नहीं बल्कि प्राविडेंट फण्डका कुछ रुपया मिलनेवाला था, लेकिन वह कितने दिनोंतक चलता? कठिनाइयाँ थीं, लेकिन गुरुजीको अपने गाँवमें भूखे मरनेकी अवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उन्होंने मधुपुरीमें कमाए रुपयेसे कुछ बीघे खेत खरीद लिये थे। यदि खुद खेती कर सकते, तो कबीर साहबके बचनानुसार 'कहे कबीर कुछ उद्दम कीजे, आप खाय औरनको दीजे,' की कहावतको चरितार्थ कर सकते थे। अबतक वह अपने खेतको अधिया-बँटाई पर लगाते आए थे, जिससे घरके खर्चके लिए साल भरका चावल ही नहीं मिल जाता था, बल्कि फाजिलको बेचकर कुछ रुपए भी आ जाते लेकिन अब उनके गाँवमें भी 'खेत जोतनेवालोंका' नारा लगने लगा था। गुरुजीको डर लग रहा था कि इतनी मेहनतकी कमाईसे खरीदा गया खेत कहीं जोतनेवालोंका न हो जाए। उनको गुस्सा भी आता था, लेकिन जब सारे कुएँमें भाँग पड़ गई हो, तो गुस्सा करनेसे फायदा क्या? दुनियाकी हवा ही बिगड़ गयी थी। गुरुजी अब भी मधुपुरीमें किसी मौजमें जीभको सींचनेके लिए एक बूँद पानी भी नहीं पीते थे, और उनका भतीजा अब लाल झण्डा लिए गाँव-

गाँव घूम रहा था। बापदादोंको दिखाते शूद्रोंके साथ बैठकर भात खाता और चैलेंज करता—"आओ, जरा मुझे जातसे निकालो तो।" किसीकी मजाल नहीं थी, कि उसको प्रायश्चित्त करनेके लिए जोर देता। उसने सभी लम्बी नाकवाले पण्डितोंके लड़कोंको अड्डा खिला दिया था। गुरुजी जब-तब इन बातोंको देख-कर झुँझलाते, कभी कहते—"जो भी हो, मैंने तो अपने शरीरसे धर्म निभाया।" कभी कहते—"मैंने अपनेको पानीमें मीन प्यासी रखकर बेवकूफी तो नहीं की?" यह तो उन्हें निश्चय हो गया था, कि उनकी आँखोंके देखते-देखते कलियुगने अपने पूरे चरणसे धरतीको चाप लिया है, और अब पुरखोंकी बात कोई चलनेवाली नहीं है। जीवनमें अपनेको एक सीमामें रखकर उससे आगे बढ़नेकी उनमें हिम्मत नहीं थी और न आवश्यकता ही। अगली पीढ़ी अपना काम करती जा रही है, और निश्चय ही उनका पोता अब मधुपुरीके किसी भोजमें निमन्त्रित होकर खाली हाथ नहीं उठ सकता, और उसी पोतेके हाथका पिण्ड-दान उन्हें स्वर्गमें जाकर लेना होगा।

गुरुजीको इन बातोंकी उतनी चिन्ता नहीं, क्योंकि वह जानते हैं: बीमारी एक घरकी नहीं है, बल्कि वह महामारी होकर आयी है। लेकिन चिन्ता थी, स्कूलसे अलग होना पड़ेगा। कहने-सुननेपर दो सालतक उन्हें और अध्यापक रहनेका अवसर मिला था। इस बीच उन्होंने इस बातकी पूरी कोशिश की कि कहीं और कोई पढ़ाने-लिखानेका काम मिल जाता, तो बाकी जीवन भी मधु-पुरीमें ही बिता देते। लेकिन अंग्रेजोंके चले जानेके बाद मधुपुरीमें संस्कृतकी कदर बढ़ी नहीं, घटी है। उसकी अपेक्षा अंग्रेजीकी कदर बढ़ी है। आज भी यूरोपीय ढंगके चलनेवाले छोटे-बड़े लड़कोंके कान्वेन्टों और स्कूलोंमें मुश्किलसे नए प्रवेशार्थीको जगह मिलती है। अब भी मधुपुरीकी सड़कोंपर पहलेसे अधिक अंग्रेजी बोली जाती है। यदि गुरुजी अंग्रेजीके अध्यापक होते, तो मुमकिन है कुछ ट्यूशन मिल जाते या यहीं दूसरा काम कर लेते।

स्कूलसे अलग होनेके बाद भी कितने महीनोंतक मधुपुरीमें ही गुरुजी बाट जोहते रहे। इधर-उधर दौड़-धूप करनेका उन्हें कोई फल नहीं मिला। प्राविडेंट फण्डके पैसेको खाकर मधुपुरीमें बैठे रहना बुद्धिमानीकी बात नहीं थी, यह वह अच्छी तरह जानते थे। उनके हित-मित्र नहीं चाहते थे, कि गुरुजीकी सौम्य

मूर्ति मधुपुरीकी सड़कोंसे सदाके लिए लुप्त हो जाए। पण्डिताई-पुरोहितीकी ओर उन्होंने कभी विशेष ध्यान नहीं दिया। उनमें उनका सिर्फ इतना ही सरोकार था, जितना कि गुरुजी और पण्डितजी कहलानेके लिए आवश्यक था। अन्तमें गुरुजीको मधुपुरीसे प्रस्थान करना पड़ा। वह जब पहले-पहल मधुपुरीमें आए थे, तब अत्यन्त तरुण थे, लम्बा भविष्य उनके सामने था, चाहे उसकी रूपरेखा अभी कोई नहीं बनी थी। अब भविष्य लम्बा नहीं हो सकता था, लेकिन जबतक जीवन, तबतक उसके प्रति अनुराग तो अक्षुण्ण ही रखना पड़ना है। चलते वक्त मधुपुरी अपने पूरे गुणोंके साथ उनके सामने खड़ी थी। तीससे अधिक गरमियाँ और बरसातें उन्होंने यहाँ कितने आनन्दके साथ बिताये! न कभी पसीना आया न पखा झलनेकी जरूरत पड़ी। मधुपुरीमें उनके कितने अधिक मित्र और परिचित थे। अब उनकी जगह गाँवके वे चेहरे मिलेंगे जिनके ऊपर पारस्परिक सहानुभूति कम और ईर्ष्याकी रेखाएँ ही अधिक, दिखाई पड़ेंगी।

भक्तोंने बड़ी सहृदयताके साथ विदाई दी और गुरुजी एक दिन मधुपुरीसे चले गए।

१०. मीनाक्षी

मधुपुरीको अंग्रेजोने अपनी विलासपुरीके तौरपर बनाया था और बहुत समयतक वह एकमात्र उन्हींकी विलासपुरी रही। पीछे सामन्त-वर्ग अर्थात् राजा-महाराजा-तालुकदार लोग भी "ग्रीष्म काले च शीतल" की प्रसिद्धि सुनकर इधर दौड़ने लगे। पहले तो उनकी संख्या बहुत कम थी और दूसरे अंग्रेजोंके रंगभेदके कारण उन्हें बहुत बच बचकर साधारण स्थानोंमें रहना पड़ता था। अभी उनके अन्तःपुरोंमें सात-सात ताले लगे हुये थे, इसलिये यहाँ कोई अपनी रानी या बेगमके साथ आता भी था, तो उसे सात तालोंका इन्तजाम करना पड़ता था। २०वीं शताब्दीके आरम्भके साथ मधुपुरीका यौवन खतम होने लगा। इस समय अभी-अभी अन्तःपुरोंमें जरा-जरा आधुनिकताका प्रकाश पड़ने लगा था। पहले महायुद्धके समय मधुपुरीका बुढ़ापा आ गया। इसी समय अन्तःपुरिकाओंके सात ताल टूटने शुरू हुये। अन्तःपुरके दरवाजे तो उस समय तोड़े गये, जब कि द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। महायुद्धके बाद ही अंग्रेज बोरिया-बँधना बाँधकर चल पड़े। अब मधुपुरी हमारे सामन्तोंके लिये मुक्त-भोग्या थी। बहुतेरे अन्तःपुर शताब्दियोंका अन्धकार खोकर प्रकाशमें आ गये। जिनके यहाँ अब भी कुछ रोक-थाम थी, वहाँकी भी अन्तःपुरिकायें मधुपुरीमें आकर कितनी स्वच्छन्दविहारिणी हो गई, यह इसीसे मालूम होगा कि एक दिन राजस्थानकी एक ठाकुरानी अपनी बहू और बेटीके साथ मुँह खोले ही नहीं घूम रही थी, बल्कि उनके गंगा-जमुनी केशोंपर भी आँचल नहीं था। जब इसी समय उनके सामने अपनी सम्बन्धिनी आ गई, तब बेचारीने हड़बड़ाकर सिरको ढाँक लिया। आजन्म बन्दिनियोंकी जब यह हालत है, तो उनके बारेमें क्या कहना, जो २०-२५ वर्ष पूर्व अन्तःपुरमें पैदा हुई। पर यह चाँदनी चार दिनकी ही साबित हुई। यद्यपि अन्धेरी रात फिर नहीं आई, किन्तु सामन्तोंके लिए तो इस स्वच्छन्दताके साथ-साथ मौतका वारण्ट कट गया—

रियासतें और ताल्लुकदारियाँ खतम हो गई और नपे-तुले मिलनेवाले पैसेको निस्सकोच खर्च नही किया जा सकता।

अन्तःपुरोंमे आधुनिकता एक रूप और एक मात्रामे नही प्रविष्ट हुई। इस शताब्दीके आरम्भमे कुछ अन्तःपुरोंके फाटक बिलकुल खोल दिये गये, दूसरों-में केवल दरारसे ही प्रकाश जाने लगा, इसलिए अन्तःपुरिकाओंके विकास भी असमान हुए। तो भी उन्हे यह सुभीता जरूर था, कि राजाओंके आपसमे विवाह-सम्बन्ध थे, और २० वी सदीमे राजपूत राजाओंने—जिनकी ही भारी सख्या रियासतो और ताल्लुकदारियों मे थी—जात-पॉतके बारेमे बडी उदारता दिखलायी। धर्मशास्त्रमे सर्वथा निषिद्ध समुद्र-यात्रा राजपूतोने ही सबमे पहले शुरू की। मौ वर्ष पहले उनमेसे जो विलायत गये, वह अपने साथ गंगाजल ही नही, बल्कि भारतकी मिट्टी भी हाथ धोनेके लिए ले गये थे। मालवीयजीने तो इस तरहकी बेवकूफी वर्त्तमान शताब्दीके प्रथम पादके अन्त होनेके समय भी की और तिलक जैसे राष्ट्रनेता ने भी विलायतसे लौटने पर पापका प्रायश्चित्त करना आवश्यक समझा, लेकिन राजपूत राजाओंके दिलसे यह ख्याल बहुत जल्दी उतर गया। राजस्थानी राजपूत राजा कच्ची-पक्की और खाने-पीनेमे छूत-का ख्याल नही रखते थे, न चौके-चूल्हेसे उनको सरोकार था। उनके महलोंमे एक फर्लांगसे सभी तरहके बने हुए कच्चे-पक्के भोजनोंका जूते पहनकर नौकर लाते-ले जाते थे, और खानेके समय एक पॉतमे उनके सजातीय मुसलमान भी खा सकते थे। हॉ, जातका बन्धन जरूर था, खानदान देखते थे और खॉटी राजपूतके साथ ही ब्याह-शादी करते थे। लेकिन हजार-डेढ हजार वर्ष बाद इतिहास फिर दोहराया गया, पैसे और तलवारके बलपर पहले भी जातियाँ बनती और बिगड़ती थीं, और अब फिर वैसा ही होने लगा। हमारी ऑखोंके सामने तिरुवाकुर, कोचिन, पुदूकोट्टै जैसे कुछ राजाओं को छोडकर बाकी सभी रियासतोंके स्वामी विवाहसूत्रसे एक दूसरेके साथ बॅध गये। लोग ऑखें मलकर देखते ही रह गये, कि कलके कुम्हार, गडरिये, कुर्मी, जाट, कलवार और दूसरी जातियोंके राजा कैसे राजपूत बन गये? लेकिन जिनके घरोंमे खॉटी सूर्यवंशियों, चन्द्रवंशियों या अग्निवंशियोंकी राजकन्याये आ गई, उन्हे आप कैसे राजपूत छोडकर दूसरा कह सकते हैं? विवाह-सम्बधसे अन्तःपुरोंपर

बहुत जबर्दस्त प्रभाव पड़ने लगा। जो राजकन्या कभी अन्तःपुरकी चहार-दीवारीके भीतर बन्द नहीं रही, वह ब्याह होकर सासरेमें आने पर कैसे पर्देको स्वीकार कर सकती थी? आखिर ब्याह भी जान सुनकर हुआ था, न राजकुमार नाबालिक थे, न उनकी परणीता। पहले साड़ी पहनकर सिर ढाँके, मुँह खोले शर्मीली आँखोंवाली कोई रानी जब बाहर दिखाई पड़ती, तो लोग चकित होकर देखते। लेकिन मधुपुरीके लिये वह कुछ भी नहीं थी, उसे तो यहाँ पुराणपंथिता कहा जाता। आज अपने सारे लम्बे बालोंको रखना कोई राजकुमारी पसन्द नहीं करती, सभीके बाल कटे हुये हैं, लेकिन जैसा कि पहले बतलाया, आधुनिकताका प्रभाव सबपर एक-सा नहीं है। ऐसी रानी है, जो पतलून पहनकर घूमती है, उसके बाल भी कटे हुये हैं, पति क्या अपने बच्चोंसे भी वह केवल अंग्रेजीमें बोलती है और नौकरों-चाकरोंसे हिन्दी बोलना होता है, तो उच्चारण और व्याकरणमें अंग्रेज-मेमोंके कान काटती है। तो भी उसका सिन्दूर नाककी जड़से शुरू होता है, नाकमें लौंग पड़ी है, सासुओंके पगे लागनेमें पुरानी बहुओंसे कोई अन्तर नहीं रखती और पौढ़ने पर सासूके पैर भी दाब आती है। मन्दिरों और पूजास्थानोंमें बड़े भक्ति-भावसे दण्डवत-प्रणाम करती है। ऐसी रानियां या राजकुमारियोंको कैसे आप शुद्ध आधुनिक कह सकते हैं!

जिनके कुलमें आधुनिकताकी तीसरी पीढ़ी चल रही है, वहाँ कुछ और ही डौल दिखलाई पड़ता है। चाहे दोनों तरहकी राजकुमारियाँ बालकटी और पतलून पहने घूम रही हैं, किन्तु दोनोंको एक साथ देखनेमें फर्क साफ मालूम हो जाता है। पूर्णतया आधुनिक तरुणीकी नाक छिदी नहीं मिलेगी, न उसे लौंग पहननेकी अवश्यकता है। उसके ललाट और माँगमें सिन्दूर भी नहीं दिखाई पड़ेगा। सिनेमा-तारिकाओंको इसका धन्यवाद देना चाहिए, कि उनकी निकाले फैशनके कारण कभी-कभी इन आधुनिकतम रानियोंके ललाटपर भी कोई छोटी-सी बिन्दिया दिखाई पड़ जाती है। बुद्धीके साथ पाश्चात्य या आधुनिक सभ्यताको अपनाया, इसलिए उनकी किसी बातमें बनावट नहीं मालूम होती, उनके परिधानसे पतलून, कमीज या कोटसे यह साफ मालूम होता है। यद्यपि इसका यह मतलब नहीं, कि कृत्रिम शृंगारसे वह अपनेको बचा सकती है।

आधुनिकतम राजकुमारियाँ सीजनमें मधुपुरीमें काफी देखी जा सकती हैं। शामके वक्त होटलों और रेस्ताराओंकी नृत्यशालाओंमें उन्हें बाल डान्स करते देखा जा सकता है। कोई भी बड़े कर्मचारी या मन्त्री का स्वागत हो, वहाँ वह जरूर पहुँची रहती है। कुलकी मर्यादाका ख्याल करके उन्हें अगली पक्तिमें स्थान दिया जाता है। अन्तःपुरके अन्धकारमें जिस तरह वह पहले गुमनाम-सी रहा करती थी, अब वह उसी तरह सम्यग् उजागर दीखती है।

मीनाक्षी ऐसी ही आधुनिकतम राजकुमारी है, जिनको मधुपुरीमें गर्मीके सीजन में ही नहीं, उसके बाद भी देखा जा सकता है। धूप हो तो उन्हें बर्दाधारी रिक्शेमें ही देखा जायगा, नहीं तो मधुपुरीकी प्रधान सड़कपर वह पैदल भी घूमती मिलेगी। मीनाक्षी उनके लिए अनुपयुक्त नाम नहीं है, बल्कि पिछले हजार वर्षोंमें हिमालयसे कुमारीतक, आसामसे राजस्थानतक फैले इस विस्तृत महादेशमें यदि किसीके लिए मनीक्षी शब्दका ठीकसे उपयोग किया जा सकता था, तो इन्हींके लिए। इतनी बड़ी आँखें देखनेके लिए आपको जैन हस्तलिखित पुस्तकोंके पन्नोंको उलटना पड़ेगा, न ऐसे किसी देवताकी झाँकी करनी पड़ेगी, जिसके चेहरेकी अपेक्षा कहीं अधिक बड़े आकार-की आँखें ऊपरसे चिपका दी गई हैं। सचमुच जीते-जागते, चलते-फिरते मनुष्यमें ऊपरसे बड़ी आँखका चिपकाया जाना असम्भव है, लेकिन असम्भव बात मीनाक्षीके लिए सम्भव हो गई है। उनकी आँखोंके समान भौंहें नहीं हैं, इसलिए उन्हें पतली करते समय बराबर काली पेन्सिलसे रेखाको लंबा करना पड़ता है। आधुनिकतम होने पर भी वह सभी प्राचीन शृंगार-सामग्रियोंको बायकाट करनेके लिए तैयार नहीं हैं। सुरमा नहीं, बल्कि घना-काला काजल उनको बहुत पसन्द है, और उसे आँखोंमें लगाते समय सलाईको अंगुल-डेढ़-अंगुल आँखोंकी कोरसे बाहर खींचना पड़ता है। आँखोंकी वृद्धि करनेमें इससे तो कोई सहायता नहीं मिलती और उसकी जरूरत भी नहीं है, लेकिन भौंहोंकी पंक्ति इससे जरूर दब जाती है। उभरे हुए सफेद अक्षिगोलकोंमें चमकती काली पुतलियाँ अद्भुत हैं। अगर नकली बालों-की तरह नकली आँखें भी चिपकाई जा सकती, तो मीनाक्षीकी दोनों आँखें लाखों—करोड़ोंकी नहीं बल्कि अनमोल होतीं। मीनाक्षी कभी अपने भालको

किसी रंगकी बिन्दीसे कलंकित नहीं करती। उनके बाल कटे, घुँघराले और खुले रहते हैं। उनकी माँ भी जब-तब पुत्रीके वेषमें ही मधुपुरीमें दिखाई पड़ती हैं। देखनेवालोंको भ्रम हो जाता है, कि शायद दोनों छोटी-बड़ी बहनें हैं। लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं कि माँको भी मीनाक्षी जैसी आँखें मिली है। जब पहली पीढ़ी ही बाल कटा पतलून पहन बिल्कुल आधुनिक बन गई, तो नई पीढ़ीके बारेमें क्या कहना?

मीनाक्षीकी आँखोंके देखनेके बाद एक बार उनके नख-शिखपर नजर डालने पर ब्रह्माकी बुद्धिपर तरस आता है। आँखोंके देनेमें जब उसने इतनी उदारता दिखलाई, तो और बातोंमें इतनी कृपणता करके अपनी नीरसहृदयताका परिचय क्यों दिया? चेहरा आँखोंके अनुरूप बिल्कुल नहीं है। वह लम्बा, निर्मांसल और बेपानीका है। बेचारी मीनाक्षी गालोंको बारबार रूज लगाकर लाल करती रखती है, ठुड्डियोंपर भी लेप करती है, चेहरा तो हर वक्त बड़ी सावधानीके साथ लगाये मुखचूर्णसे ढँका रहता है। लेकिन, दर्पणमें देखते हुए वह अच्छी तरह समझ सकती है, कि दुश्मन ब्रह्माकी करतूतके ऊपर मैं किसी तरहसे भी पर्दा नहीं डाल सकती। शायद इसीलिये खीझकर वह अपने होंठोंपर उतर आती है। सचमुच यदि किसी तरुणीको मन-मन भर लिप्स्टिक लगानेवाली कहा जा सकता है, तो मीनाक्षी को ही। उनके कटे हुए काले केश किसी भी सुन्दरतम सिनेमा-नायिकाके केशोंसे होड़ ले सकते हैं, लेकिन मुखकी ओर देखनेसे मन उतर जाता है। ब्रह्माकी रेखपर मेख कौन लगा सकता है? आँख छोड़ मीनाक्षीके विरुद्ध षड्यन्त्र करनेमें उनका सारा शरीर शामिल है। हाथ और पैर मानो लकड़ीके गढ़कर चिपका दिये गये हैं। जिनको छिपानेके लिए सबसे अच्छे पतलून और सबसे भड़कीला कोट भी समर्थ नहीं है। मीनाक्षीको लाल रंग बहुत ज्यादा पसन्द है, यह ओठोंके अधर-रागसे ही नहीं मालूम होता, बल्कि अधिकतर उनके शरीरपर देखे जानेवाले लाल कोटसे भी मालूम होगा। कभी-कभी खिलाड़ियोंका कोट भी वह पहनती है, यद्यपि यह कहना मुश्किल है, कि उन्हें किसी प्रकारके खेलका कोई विशेष शौक है। यदि मौसिमकी जबर्दस्त माँग न हो, तो मीनाक्षी केवल कमीज और पतलूनमें घूमती रहे। इससे कुछ सौन्दर्यका भ्रम जरूर हो जाता

है, यदि आदमीकी नजर चेहरेपर न जाये। यह कहनेकी अवश्यकता नहीं, कि चेहरेपर आनेपर भी यदि आदमीकी नजर केवल उन विशाल आँखोंको ही देखती रहे, तो वह उनकी प्रशंसामें कालिदाससे लेकरके आजतकके सभी महाकवियोंकी हजारों पंक्तियोंको पढ़नेका आनन्द ले सकता है। हाथ पैरोंका ही अनुकरण उनकी सारी शरीरयष्टि करती है, जहाँ मांस बहुत कम दिखलाई पड़ता है, और चर्बी तो कहीं है ही नहीं। इस शरीरयष्टिके लिये कद भी कुछ लम्बा और अनुकूल नहीं है। चलनेमें वह न गजगामिनी है, न हंसकी-सी चालवाली। बोलनेमें बचपनसे ही अपनी अंग्रेज आयाओं और दूसरी शिक्षिकाओंके निर्देशनमें उन्होंने नाकसे धीरे-धीरे बोलनेका अभ्यास डाला, लेकिन उससे स्वर-माधुर्य नहीं हुआ।

मीनाक्षीके साथ भी २०वीं शताब्दी तोताचश्मी, अर्थात् उन्हें प्रेम-वंचिता करे, यह सरासर अन्याय है। ऐसी अनमोल आँखोंका ग्राहक न पैदा हो, इससे बढ़कर पुरुषकी कृतघ्नता और क्या हो सकती है? क्या राजकुलमें किसी भी कवि-हृदय या कविता-पारखी राजकुमारको पैदा करनेकी शक्ति नहीं है? यदि एक-एक दोहे और एक-एक श्लोकपर पुराने राजा लाखों अशर्फियाँ देते थे, उनके आधा राजपाट बकसनेकी भी बात सुनी जाती है; तो मीनाक्षीकी सचमुच मीन जैसी—मीनमें भी सिधी, रोहू या चिटहवा जैसी साधारण मछलियाँ नहीं, बल्कि ठीक शफरी जैसी आँखोंपर मरनेवाले किसीको पैदा न करके ब्रह्मा, सचमुच ही तूने अपनेको पाषाण-हृदय साबित किया। अगर यह मृग और कमलको मात करनेवाली आँखें अन्तःपुरमें छिपी होतीं, कोई राजकुमार उन्हें देख नहीं पाता, तब यदि उनके साथ ऐसा बर्ताव हुआ होता, तो किसीको दोष नहीं दिया जा सकता था; किन्तु आज तो मधुपुरीकी एकमात्र प्रधान सड़कपर ये मीन जैसी आँखें वर्षमें छ महीने बराबर घूमती रहती हैं। सभी देखनेवाले उन असाधारण आँखोंको आँख बचा अतृप्त होकर अवलोकन करना चाहते हैं। राजकुमारी मीनाक्षी अपने वंशके अनुरूप कुमारको ही वर सकती हैं, साधारण बाबू या सेठ वर्गका तरुण उनके हाथोंकी ओर अपना हाथ नहीं फैला सकता। मधुपुरीकी सड़कोंपर पिछले दस वर्षोंमें जबसे कि मीनाक्षीका मधुपुरीमें हर साल आना जाना रहता है, हजारों कुमार गुजरे होंगे। संसार

कितना कठोर है। और अब, जब कि वह समय भी नजदीक आ रहा है, जब कि उजडे बहारमें बुलबुलोंका चहकना बन्द हो जायेगा। पुराने अन्तःपुरकी कुमारियोंके भाग्यपर मीनाक्षी अब ईर्ष्या कर सकती है, जिन्हें एकान्त जीवन इस तरह बितानेकी अवश्यकता नहीं होती थी। पति देवता घरमें आ जानेपर ही नवपरिणीताका मुख देख सकते थे, उनकी ओरसे देखनेके लिये भेजी गई लौंडियोंने कुछ भेट रखकर सर्टीफिकेट ले लेना मुश्किल नहीं था। और यदि कोई सीखी-समझी लाडी मीनाक्षीकी आँखोंकी प्रशंसामें बिहारीके कुछ दोहोंको उद्धृत करती, तो उसपर झूठ बोलनेका इल्जाम भी लगाया नहीं जा सकता था। अधरराग, रूज, मुखचूर्ण, खिजाब कुछ ही दिनों और यौवनकी आयुको बढा सकते हैं, लेकिन असली वसन्तमें जब भँवरे नहीं आये, तो बनावटी वसन्तमें उनके आनेकी क्या सम्भावना हो सकती है?

मधुपुरी अब गौरांगोंकी नहीं रही, शासनके लिहाजसे ही नहीं, बल्कि प्रभावके ख्यालसे भी। अंग्रेज और दूसरे यूरोपियन मिश्नरी बहुत थोडेसे देशमें जहाँ-तहाँ रह गये हैं, जिनमें से कुछ गर्मियोंमें मधुपुरीमें भी चले आते हैं। भारतीय भाषाओंके सिखलानेके लिये एक ही केन्द्रीय स्कूल होनेके कारण उनकी सख्या दो-तीन सौ हो जाती है। उनमें कुछ गौरांग महिलायें भी होती हैं, लेकिन जिस तरह यूरोपके छटुये पुरुष मिश्नरी बनकर दुनियाके और देशोंकी तरह भारतमें ईसा मसीहका झण्डा गाडने आते हैं, उसी तरह वहाँकी छटुई स्त्रियाँ इस क्षेत्रमें कदम रखती हैं। सुन्दरियाँ नहीं, यदि कुरूपाओंकी प्रतियोगिता करनी हो, तो विश्वकुरूपाये इनमें मिल सकती हैं। फिर वह मधुपुरीमें फैशनकी डिक्टेटर कैसे बन सकती है? दूसरी गौरांगनायें दिल्लीके दूतावासोंकी होती हैं, लेकिन उनकी सख्या अत्यन्त अल्प तथा वह भी एक कोनेके होटलमें रहती है। हा, उनके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता, कि उनमें सौन्दर्यका अभाव है। इस प्रकार मधुपुरीके रूपके बाजारमें अब केवल स्वदेशी महिलाओंका ही आधिपत्य है, जिसके लिये हरेक देशाभिमानीको उचित अभिमान होना चाहिये। कमसे कम इस एक क्षेत्रमें तो, चाहे अपने देशके भीतर ही सही, अपनी महिलाओंका नेतृत्व स्थापित हो चुका है। कितने ही लोग इसे "देशी चिड़िया मराठी बोल" या "देशी बोतलमें विलायती शराब" कहकर उपहास

करेंगे, लेकिन टोप निकालनेवाले खलोंका तुलसीबाबाके समयमें भी अत्यन्ताभाव नहीं था।

मधुपुरीके रूप-हाटमें देशी सुन्दरियोंकी प्रधानता है, जो तीन वर्गोमें साफ बटी हुई है। परम्पराका अनुसरण करते हुये हम कह सकते हैं, कि पहली श्रेणी राजरानाओं और राजकुमारियोंकी है, जिनमें मीनाक्षी तथा उनसे अधिक सौभाग्यशालिनी भूतपूर्व अन्तःपुरिकायें या उनकी सन्तानें हैं। दूसरी श्रेणी नौकरशाहीके घरोंमें पली तितलियोंकी है, जो आधुनिकपनमें सामन्तनियों और सामन्त-कुमारियोंसे अधिक प्रौढ़ हैं, इसे कहनेकी अवश्यकता नहीं। तीसरी श्रेणी सेठानियों और सेठ-कुमारियोंकी है। इनके बाद नगण्य बाबु-आनियों और दूसरोंकी, जिनका न हम तीनमें रख सकते हैं, न तेरहमें।

फैशनके बाजारमें केवल रूपका शासन नहीं है, वहाँपर भी लक्ष्मी ही प्रधानता रखती है। लक्ष्मीसे मतलब सौंदर्य-लक्ष्मी नहीं बल्कि धन-लक्ष्मी-से है। फैशनकी दुनिया सबसे अधिक खर्चीली है, इसलिये वहाँ लक्ष्मीका एकमात्र आधिपत्य हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। पुराने जमानेमें भी कहा गया था "व्यापारे वसति लक्ष्मीः," लेकिन उस समय यह वाक्य आधे दिलसे ही निकला था। शासन सामन्तोंके हाथमें था, जिनकी तलवारें महासेठोंके भी खजानेको क्षण भरमें लूटकर अपना घर भरनेमें समर्थ थीं! इसलिये लक्ष्मीके स्वामी उस समय केवल सेठ नहीं थे। अब जब कि हमारे देशका शासन भी सेठोंके हितके लिये हो रहा है, तो उनका स्थान कुछ दूसरा ही हो गया है, ऐसा स्थान, जो इतिहासमें उन्हें कभी नहीं मिला था। वही शासन-सूत्रके वास्तविक सूत्रधार हैं। उनके घरोंमें बैंकों, बीमा कम्पनियों और चोरबाजारोंके रूपमें सचमुच कल्पवृक्ष लगे हुये हैं, सोनेकी टकसाल तैयार है। उनकी सम्पत्तिकी सीमा नहीं है। आज किसी बड़े सेठको लखपति क्या करोड़पति कहना अपमान की बात है। यह सेठवर्ग मधुपुरीके लिये सबसे नया रंगरूट है। सख्यामें वह अभी सामन्तों और नौकरशाहोंके बराबर नहीं है, लेकिन अंग्रेजोंकी बड़ी-बड़ी कोठियाँ उन्हींके हाथोंमें हैं; जिनमें दस-बीस नौकरोंके साथ रहनेकी केवल वही हिम्मत कर सकते हैं। यद्यपि सेठ तरुण-तरुणियोंके भीतर आधुनिकताकी बाढ़ फूट पड़ी है, लेकिन पूरे वेग से नहीं। उनके तरुण

घरके कितने ही संकोचोंको मधुपुरीमें भी लाते हैं, और पैन्टपर बन्द गलेका कोट पहनकर चलते हैं। उनमें जो व्हाइटवे-लैडलाके सूटको मधुपुरीके लिये खासकर खरीदकर लाते हैं, वह भी यह भूल जाते हैं, कि कोट पैन्टके साथ चलनेकी चाल दूसरी होती है। वह ऐसे चलते हैं, मालूम होता है, अपने बाप-दादाकी तरह धोती और चोबन्दी पहने जा रहे हैं। बातमें भी आधुनिकताकी छाप बहुत कम मिलती है। वह यह नहीं समझते, कि मधुपुरीकी यह एकमात्र प्रधान सडक केवल अंग्रेजी बोलनेके लिये है। कमसे कम आधुनिक वेषभूषामें सज्जित नर-नारीके लिये तो सौगन्ध है, कि वह अंग्रेजी छोड़कर किसी और भाषाको अपने सगे सम्बन्धियोंके साथ भी बोलें। ये सेठ-कुमार गाँठके पूरे भले ही हों, लेकिन उनकी आँखोंमें अभी देखनेकी ताकत नहीं आई है। वह कभी आपसमें मारवाड़ी बोल देते हैं, या गलत-सलत हिन्दी उनके मुँहसे निकल आती है, जिसके कारण आधुनिक नर-नारी उनकी ओर मुस्कुराकर देखते हुये आपसमें व्यंग करते चले जाते हैं। इनको अभी अपना दोष मालूम नहीं हो रहा है, लेकिन टीका-टिप्पणियोंकी भनक कभी-कभी तो उनके कानोंमें पहुँच ही जाती है।

अन्तःपुर पचासों पीढियोंसे देशकी सबसे अधिक सुन्दरियोंका संग्रहालय ही नहीं, बल्कि सुन्दरियोंकी नर्सरी भी रहे। वहाँ ही अनिन्द्य सुन्दरियाँ पैदा होती थीं, जो किसी समय स्वयम्बरोंमें पारितोषिकके तौरपर रक्खी जाती थीं। शायद स्वयम्बर-प्रथाके उठ जानेके कारण ही अन्तःपुरोंने सुन्दरियोंके नर्सरी होनेके अपने विशेष पदको खोया। उसी अन्तःपुरसे कुमार भी पैदा होते हैं और कुमारियाँ भी। यदि कुमारोंमें आप कुरूपोंकी संख्या अधिक देख रहे हैं, तो कुमारियोंमें भी सौंदर्यकी मात्रा उनसे बढ़कर नहीं है। जिस समय देशकी सौंदर्यराशि खिंचकर महलोंमें आती थी, और हमारे ऋषि मुनियोंने विधान बनाया था "स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि" उस समय, वस्तुतः सौंदर्यके हाटमें अन्तःपुरोंका एकाधिपत्य था। अब तो क्या है? तो भी, सेठानियों और सेठ-कुमारियोंसे मुकाबिला करनेपर अभी सामन्तवर्ग बहुत आगे है, यह मधुपुरीमें आसानीसे समझा जा सकता है।

इन दोनों श्रेणियोंके अतिरिक्त तीसरी श्रेणी नौकरशाहों की है। बुद्धिजीवी

शिक्षितवर्गको भी एक हाड-माँसके होनेके कारण हम इनके भीतर रख सकते हैं, लेकिन यह साफ है, कि पिछली तीन दशाब्दियोंमें स्वयम्वर-प्रथाके अनुसार सुन्दरियोंका वितरण सारे शिक्षितवर्गमें नहीं बल्कि नौकरशाह-श्रेणीमें हुआ है। आई० सी० एस० दामाद पानेके लिये कितने ही पिता लोग वैसे ही तपस्या करते थे, जैसे राजर्षि, भगीरथ। वह अपना सब कुछ लगाकर घरमें पैदा हुई लड़कीको सुशिक्षित करते, आधुनिक समाजके रीतिरवाजोंके सीखने, समझने और आचरण करनेमें अपनी कन्याको निष्णात करते और विलायतसे लौटे दामादकी सभी इच्छाओंकी पूर्ति करनेके लिये कन्याको हर गुणसे अलंकृत करनेमें कोई कसर नहीं उठा रखते। प्राचीन स्वयम्वर-प्रथा और इस स्वयम्वर-प्रथामें अन्तर इतना ही था, कि जहाँ पहले निर्वाचनका अधिकार कन्याको था, वहाँ अब वह स्वयं वरको था। अंग्रेजोंके समय सालमें २५-५० आई०सी० एस० हो पाते थे, जिनके लिये हजारों नव-शिक्षिता सुन्दरियाँ जयमाला लिये खड़ी रहतीं। एक साल असफल होनेपर भी वह और उनके अभिभावक हताश नहीं होते। वह तबतक खड़ी-खड़ी प्रतीक्षा करती रहतीं, जबतक कि जयमाला मुरझा नहीं जाती। इस प्रकार सौंदर्य-निर्वाचनका क्षेत्र सामन्त और सेठवर्गमें नहीं, बल्कि नौकरशाह-वर्गमें चला आया था, यह बिल्कुल स्पष्ट है। मधुपुरीमें सेठ और सामन्तवर्गकी ललनायें नौकरशाह-पत्नियों और पुत्रियोंके सामने उसी तरह निष्प्रभ मालूम होती हैं, जिस तरह सूर्यके सामने दीपक। कुछ सामन्त अब भी अधिक पैसे खर्च कर सकते हैं। सेठ-कुमारियोंके बारेमें तो कुछ कहना ही नहीं। पुराने सेठ अपने सपूतों और सपूतनियोंकी शाहखर्चीको देखकर हार्टफेल कर जाते, लेकिन सौभाग्यसे वह मधुपुरीमें पैर नहीं रखते। खर्चके हिसाबमें चोकसीकी विद्या चोरबाजारीने यदि बूढ़ोंको सिखायी है, तो नौजवान उनसे पीछे क्यों रहें। बूढ़े या प्रौढ़ सेठको अपने खर्चका लेखा-जोखा देनेके लिये तरुण सेठ मजबूर भी नहीं हैं। संयुक्त-परिवार अब इस वर्गमें भी बड़ी तेजीसे टूट रहा नहीं, बल्कि टूट चुका है। सेठ-पत्नियों और पुत्रियोंमें अब उनकी जातीय वेषभूषा जैसे उठ चुकी है, वैसे ही शील सकोच भी खतम हो चुका है—बुरे अर्थमें हर्गिज नहीं। जिस तरह पिंजड़ेमें बन्द अन्तःपुरिकाओंने अपनेको आजाद किया उसी तरह सेठ-परिवार भी आगे बढ़ रहा है। उमरके

अनुसार इनमें भी आधुनिकताके प्रभावके तारतम्यको देखा जा सकता है। अधिक उमरवाली सेठानियाँ साड़ी और ऊँची एड़ीकी बूटमें भी वैसी ही चलती है, मानो लम्बा-चौड़ा घाघरा और चुनरी पहन हुई हैं। आजकलकी सिनेमा-तारिकाओंकी नकलपर थोड़ेसे किन्तु बहुत कीमती आभूषणोंसे अपनेको सजा-धजाकर निकलनेपर भी मालूम होता है, कि उनका हाथ कभी-कभी अपने सिरपरके बोरको ढूँढा करता है। प्राचीन प्रभाव अभी जड़से निकला नहीं है, लेकिन उनके लिये क्या इतना कम है, कि अब वह आरपार दिखनेवाली महीन चुनरीके पेटतक लटके घूँघट और खुली लाट लिये अपनी सासुओंकी तरह नहीं निकलतीं, उनकी पोशाकमें एक तरहकी नफासत और सजीदगी मालूम होती है। जब उनके पति लोग कोट-पैन्ट पहन कर भी हंसकी चाल नहीं अपना पाते, तो इनका क्या कसूर है? लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इनमें विभीषण या विभीषणाएं नहीं हैं। अब वैसी भी अपेक्षाकृत प्रौढ़ सेठानियाँ देखी जाती हैं, जो नौकरशाह-पत्नियोंकी तरह ही अपनी लड़कियोंसे राजस्थानी या हिन्दीमें नहीं, बल्कि अंग्रेजीमें बात करती हैं। "पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।" के ऋषिवाक्यको ताकपर रखकर अब तो सेठ-पत्नियाँ अकेली विमानोंपर आकाशमें विचरण करती दिखाई पड़ती हैं। अति तरुण सेठानियाँ अब ठीक उसी रास्तेपर चल रही हैं, जिसपर आजकलकी सामन्त-पत्नियाँ और नौकरशाह-ललनाएँ। यही दोनों उनके सामने आदर्श हैं। अभी मधुपुरीमें उनमेंसे बहुतोंमें नौसिखियापन दिखाई पड़ता है, लेकिन कोई-कोई आगे बढ़नेमें काफी सफल हुई हैं। अब तो सेठ-कुमार और सेठ-कुमारियाँ युरोपियन ढंगके स्कूलोंमें शिक्षित-दीक्षित होने लगे हैं। समुद्रयात्रासे धर्म मिट जाता है—की बात उनके लिये एक उपहासकी चीज रह गई है और टीकाधारी सेठोंके पुत्र अब धड़ल्लेसे यूरोप और अमेरिकाकी सैर कर रहे हैं। कितने ही प्रौढ़ विधुर सेठ पत्नीके मर जाने पर यूरोपीय सेठोंके ढगका एकपत्नीव्रत पालन कर रहे हैं। तरुण सेठ आज विलायतसे लौटकर आनेवाले नौकरशाहोंसे कम पाश्चात्य प्रभावको अपने समाजमें नहीं प्रवेश करा रहे हैं।

सामन्त, नौकरशाह और सेठ तीनों एक ही नावपर चढ़े हुए हैं। उनका

जीवन एक दूसरेके बहुत नजदीक और समान होता जा रहा है! भारतकी अपनी विशेषताको लीजिये। यह जात-पाँतकी रूढ़ि है, जो कि एक नावमें बैठी हुई इन तीनों श्रेणियोंको एक होनेमें बाधा डाल रही है। यूरोपमें भी कभी राजकुल सामन्त-कुलोंके साथ रक्त-सम्मिश्रण नहीं होने देता था और दोनों धन्नासेठ-बनियोंको दूधकी मक्खी मानते थे। लेकिन अब वहाँ एकतामय देखी जाती है। लक्ष्मीपात्र सभी एक जाति के हैं। हमारे देशमें भी कबतक यह मृत रूढ़ि चलती रहेगी? समय दूर नहीं है, जब तीनों श्रेणियाँ उसी तरह मिलकर एक हो जायेंगी, जिस तरह इस शताब्दीके आधे कालमें भारतकी सभी रियासतोंके राजा एक राजपूत बिरादरीमें मिल गये। लक्ष्मीपुत्रों और सत्ता-धारियोंके खिलाफ एक नया वर्ग भी तैयार हो रहा है, किन्तु उसकी आवाज धीरे-धीरे जोर पकड़ रही है, और भारतकी अडिग प्राचीनतापर विश्वास रखनेवालोंको उससे डरनेकी जरूरत नहीं। उस समय शायद मीनाक्षीकी आशाका क्षेत्र बहुत विशाल होता।

अवश्य आनेवाला जमाना लेकिन कब आयेगा? उस वक्त आनेपर क्या हुआ "जब चिड़ियाँ चुग गई खेत", "का बर्षा जब कृषी सुखाने"। मीनाक्षीके लिये उससे क्या आशा हो सकती है? आज तो उसका क्षेत्र नंगे हो या भूखे, सामन्तोंकी श्रेणीतक ही सीमित है। सेठों और नौकरशाहोंके विस्तृत क्षेत्र तक आधुनिकतम होते भी वह अपने पैरोंको नहीं रख सकती। वह मनमें सिर्फ यही ख्याल रख सकती है, कि मेरी श्रेणीकी दूसरी तरुणियाँ कदम आगे बढ़ाकर उस युगको जल्दी लायें। अपनेको आगे बढ़ानेकी हिम्मत न रखकर वह अपनी आधुनिकतापर बट्टा लगा रही है, इसमें सन्देह नहीं। मीनाक्षीकी इस दयनीय और दुविधा भरी स्थितिको देखकर कलिम्पोंग-जेलके वार्डर बलिया जिलेके तिवारी याद आते हैं जो ५० के करीब पहुँच रहे थे और अबतक कुँवारे ही थे। उन्हें आशा नहीं रह गई थी, कि ब्याह कभी भी हो सकेगा। बड़े दयनीय स्वरमें बेचारे कहते थे "आखिर सगैया (विधवा-विवाह) होई, लेकिन...तिवारीके मुआ के।" अगर तिवारीजीसे कहा जाता, कि आप ही क्यों न किसी ब्राह्मणी बालविधवाका हाथ पकड़ते, तो उन्हें भी मीनाक्षीकी तरह ही आगे कदम बढ़ानेमें डर लगता। वह चाहते थे, दूसरे पहले करके रास्ता बनायें, तब मैं उसपर कदम रक्खूँगा।

११. गोल्हू

(१)

—राम-राम बाबूजी।

—राम-राम गोल्हू,—मैंने कहा। मधुपुरीमें गोल्हूकी श्रेणीके लोग आपसमें ही राम-राम कहते हैं, नहीं तो अधिकतर यहाँ अपनेसे बड़े वर्गके लोगोंको सेठजी कहकर सम्बोधित किया जाता है। लेकिन, गोल्हू अधिकतर राम-राम ही कहता है। इसे बुढ़ापेका असर कह सकते हैं। गोल्हू यद्यपि अभी ५० वर्षसे ऊपर नहीं गया है, लेकिन देखनेमें बहुत बूढ़ा मालूम होता है। जाड़ोंके दिन थे। सैलानी अक्तूबरके दूसरे सीजनको भी खतम करके अपने घरोंको लौट गये थे। दूसरे सीजनमें पहले सीजनके छठेंसे भी कम ही लोग आते हैं, लेकिन तो भी बुझते हुये दीपककी तरह उनके कारण मधुपुरीमें एक बार फिर जीवन आ जाता है—मजदूरोंको काम मिल जाता है, बनियों और दूकानदारोंकी कुछ चीजें बिक जाती हैं। लेकिन, नवम्बरके मध्यतक पहुँचते-पहुँचते यहाँ वही लोग रह जाते हैं, जिनका और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है। मैं भी उन्हीं में से हूँ, और गोल्हू भी। शायद इसलिये हम दोनोंमें भाईचारा स्थापित हो गया है। उस दिन घण्टा भर रात गये सड़कके किनारे वह सूखी लकड़ियाँ जमा करनेकी कोशिश कर रहा था। चाँदनी रात थी, लेकिन वहाँ वृक्षोंकी छाया थी। उँगली जैसी पतली छोटी छोटी पाँच छ लकड़ियाँ उसने जमा करके बत्तीके खम्भेके पास रक्खी थीं। दिनमें उसे आसानीसे और अधिक अच्छी लकड़ियाँ मिल जातीं, पर दिन तो उसके लिए कामके वास्ते बना है। जब कभी काम नहीं रहता, तो वह दिनमें भी लकड़ियाँ जमा कर लेता। मधुपुरीकी घनी बस्तियोंके आस-पास जंगल कम रह गये हैं और वहाँ लकड़ियाँ जमा करना आसान नहीं है। पर, गोल्हूको तो इस विलासनगरीके एक छोरसे दूसरे छोरतक प्रतिदिन कमसे कम दो चक्कर लगाने पड़ते हैं। जाड़ोंमें यदि दो चक्कर करनेको मिल जाये, तो वह अपनेको भाग्यवान् समझता है। अधिकतर वह बनियोंके सौदोंको

होता है। दूसरे मजूर जिसका एक रुपया लेते हैं, गोल्लू उसका १२ आना लेनेके लिए तैयार है, इसलिए अगर माल रहा, तो बनिये उसीसे ढुलवाना चाहते हैं। गोल्लू मधुपुरीके हमारे छोरपर अक्सर देखा जा सकता है। यहाँके दूकानदार सैलानियोंपर कम और पास-पड़ोसके पहाड़ी गाँवोंपर ज्यादा निर्भर करते हैं, इसीलिए उनका कारबार कुछ-न-कुछ साल भर चलता रहता है। और गोल्लू उनका स्थायी भरिया (भारवाहक) है।

गोल्लू यद्यपि इस ओर दिनमें बराबर आता-जाना रहता है, लेकिन वह रहता है अपने लोगोंके साथ यहाँसे दो मीलपर मधुपुरीके केन्द्र-स्थानमें। उसके भाई-बिरादरीवाले भी उसीकी तरह खटते हैं। गोल्लूकी आँख एक बार बिलकुल खतम हो गई थीं, लेकिन डाक्टरने आपरेशन करके उनको कुछ ठीक कर दिया है, तो भी उसे बड़ा मोटा चश्मा लगाना पड़ता है। लकड़ी जमा करते समय भी वह मोटा चश्मा उसकी आँखोंपर था। उसके साथवाले उसकी रोटी बना देते हैं और वह जलानेके लिए लकड़ी जमा करके ले जाता है। वह बहुत दुबला-पतला है, हड्डियोंपर बहुत थोड़ा मांस है। सहारेके लिए अपने एक हाथमें एक मोटा डण्डा वह बराबर रखता है। उसका बोझ मनभर पक्केसे कम शायद ही कभी हो। यदि कम होता, तो बनिये या तो आधी मजूरी देते, या उससे ढुलाई नहीं कराते। उसका गोरा चेहरा अब पीला पड़ गया है। कद पहाड़में जैसे आमतौरसे होता है, वैसा ही मझोला है। अपने इस शरीर-सम्बलसे वह मनभरका बोझ पीठपर लादे तेज नहीं चल सकता, यह स्वाभाविक है। दो मील जाना दो मील आना तो आम तौरसे उसे करना पड़ता ही है, कभी-कभी इस छोरसे मधुपुरीके अन्तिम बाजारके अन्तिम छोरतक भी बोझ ले जाना पड़ता है, उस वक्त उसे चार मील आना-चार मील जाना पड़ जाता है। आठ मीलसे कम तो शायद ही कभी गोल्लूको जाना-आना पड़ता हो। बोझ मिल जायें, तो वह बारह मील या अधिक भी हो सकता है। वह नपी-तुली चालसे चलता है, जिसे मन्द नहीं कहा जा सकता। सुस्तानेका हरेक स्थान निश्चित है। वस्तुतः उसको चलते और बैठते देखकर मालूम नहीं होता, कि कोई आदमी चल रहा है। उसकी क्रियायें यन्त्रवत् होती हैं। रास्तेमें कोई परिचित मिल गया, तो राम-रामकर

दिया. नहीं तो देगेंमे धरतीको नापना और ठहरावपर थोड़ी देरके लिये दम लेना, बस यही देखा जाता है। गोलूको देखकर लद्दू पशु याद आते है। फर्क इतना ही, कि पशु अपनी इच्छासे इस तरह नहीं कर सकता, लेकिन गोलू सब कुछ अपनी इच्छासे करता है। उसे जीना है, जीनेके लिये खाना चाहिये। मधुपुरीकी साढे छ-सात हजार फुटकी ऊँचाईपर जाडोंमे वर्फ पडा करती है। जाड़ा हो या गर्मी, वसन्त हो या वर्षा, गोलूके लिये सब बराबर है। शरीरको और पैरोंको ढॉकनेके लिये काफी कपड़ा न हो, तो यहॉ आदमी एक ही दिनमें ठंडे बोल जाये। जाडेके निवारणके लिये गोलू कैसे कपडेको पहनता है, इसे पाठक स्वयं जान सकते है। कबाडियेके यहॉसे वर्षो पहले पुराने ऊनी कोट और पायजामेको उसने लिया था, जिसमे साल-ब-साल और पैबन्द लगते गये। उन्हें धोनेको धोनेके लिये गोलू देगा, इसकी सम्भावना नही। उसने स्वयं भी कभी उनको पानीमे डाला हो, इसमे भी सदेह है। पैरोंमें मोटरके टायरका बना हुआ एक जूता भी कबाडीसे उसने खरीदा। सिरपर गढ़वाली टोपी जरूर रहती है, जो शायद गजी चॉदकी रक्षा कुछ कर सके—गोलू गजा नहीं है।

गोलू क्यों इस तरह सारे दिन पशु बना रहता है? शायद माल ढोनेवाले खच्चर भी दिनमे इतने घंटे काम करनेके लिये तैयार नहीं होंगे। उसका यह काम जवानीके समयसे ही चल रहा है। पहले शायद कुछ दूसरी तरफ भी आकर्षण रहे हों, किन्तु वह अब नहीं है। पहाडके लोग मशक्कत करके चूर हो जाते है, तो सस्ती शराबसे गलेको तरकर दुःखो और चिन्ताओको भूलनेकी कोशिश करते है, लेकिन, गोलूको मैने कभी शराब पिये नहीं देखा। मधुपुरीके इस छोरपर शराब बहुत सस्ती बिकती है। यह वैध शराब नहीं होती, बल्कि पास-पडोसके इलाकेमें पहाडी जन-जातिके लोग रहते है, जो अनादि कालसे अपने घरोमें नाजको सडाकर शराब बनाते आये है। शायद सरकार उनके इस हकको छीनना नहीं चाहती। छीनने पर भी उसमें सफलताकी आशा कम है, क्योंकि वहॉकी शत-प्रतिशत जनता अपने इस सनातन हकको छोड़नेके लिये तैयार नहीं है। सस्ती शराब पीनेकी इच्छा रखनेवाले लोग मधुपुरीके छोरोंपर पहुँच जाते हैं, और ६० रुपये बोतल पीनेवालोंके लिये दूकानें जाड़ोंमे

कम हो जानेपर भी नगरीके केन्द्रमें बराबर बनी रहती है। गोल्दूका यह जीवन कब खतम होगा, इसे कोई नहीं कह सकता। बर्फानी रातोंमें उसकी छातीमें जरूर सर्दी लगकर दर्द होता होगा, किन्तु यदि वह दर्दकी पर्वाह करे, तो जीवन-नैयाको कैसे खेवेगा? गोल्दूको देखकर सैलानियोंमेंसे शायद एकके दिलमें भी ख्याल नहीं आता होगा, कि यह मनुष्य होकर भी ऐसा जीवन बितानेके लिये क्यों मजबूर है? जो उसे जानते हैं, उनमेंसे भी बहुत कमके दिलमें ऐसा भाव उत्पन्न होता होगा, जिसे करुणाका हल्का-सा रूप कह सकते हैं। शायद वह गोल्दू जैसे और कितनोंहीको रोज देखा करते हैं। लेकिन, यह गलत है। मसूरीमें गोल्दू जैसा जीवन बितानेवाला मैंने तो किसीको नहीं देखा। दूसरे यदि उसके जैसे कोई होंगे भी, तो वह दुनियामें अकेले नहीं होंगे, स्त्री, बेटा-बेटी या कोई यार-मददगार उनके जरूर होगा।

(२)

वर्तमान शताब्दी शुरू ही हुई थी। भारतके बहुत से भागोंमें उस समय आबादी आजकी दो-तिहाई भी नहीं थी, अर्थात् खानेवाले मुँह अभी एक-तिहाई कम थे। आजके बूढ़ोंकी बातपर यदि विश्वास किया जाय, तो सत्ययुग अभी धरतीपरसे बिल्कुल उठा नहीं था। इसमें तो शक नहीं, कि उस समयतक केदारखण्डके पहाड़ी लोग चोरी करना नहीं जानते थे, झूठ बोलना सीखे नहीं थे। देशके आनेवाले यात्री उनके भोलेपनको देखकर सराहना करते नहीं थकते थे। उस समयके बूढ़े अपने सत्ययुगको अपने बचपनमें खींच कर ले जाना चाहते हैं। रुपयेका बीस सेर गेहूँ और डेढ़ सेर घी होना बतलाता था, कि लोगोंके पेटकी समस्या आज जैसी कठिन नहीं हुई थी। चाहे रुपयेका मन या दो मन गेहूँ क्यों न बिके, लेकिन जब सभी आदमियोंको सालमें कुछ महीनोंके लिये ही काम मिले, तो सस्ता होनेपर भी वह खानेके लिये अनाज खरीद कैसे सकते थे! जो भी हो, इसी समय केदारखण्डके एक ऊँचे पहाड़ी गाँवमें गोल्दूका जन्म हुआ था। बाप जवान था, उसकी पहली बीबी भी जवान थी और शायद गोल्दू दोनोंका पहला लड़का था। पहला नहीं तो माँकी जीवित सन्तानोंमें वह एकमात्र था। भारतके और प्रदेशोंकी तरह यहाँ भी हरेक लड़के लड़की जीनेके

लिये पैदा नहीं होते। उनके जीवनकी अवधि निश्चित है। कोई पैदा होते ही मर जाता, कोई कुछ महीने या कुछ वर्षों बाद बचपनमें ही बिन खिले मुर्झा जाता। पूरी जवानीपर पहुँचनेवाले आधे भी नहीं होते और आधी शताब्दी लाँघनेवाले तो विरले ही होते हैं। लेकिन, बच्चा चाहे महलमें पैदा हो या झोपड़े में, माँ-बाप के हृदयमें उसके कारण उल्लास अवश्य होता है। गोल्का बाप अकेला था, या उसका कोई और भी भाई था, यह कहना मुश्किल है। यदि था, तो वह अलग रहता था। उसकी झोपडी नहीं पत्थरकी दीवारों और छतोंवाला बहुत-सा लकड़ीका बना एक छोटा सा मकान था। ऊँचाई एकमंजिला मकानसे अधिक नहीं थी, लेकिन शताब्दियोंके तजर्बेमें लोग सीख जाते हैं, कि किस आबो-हवामें कैसा मकान बनाना चाहिये। गाँवमें कभी कभी बर्फ भी पड़ जाती, न भी पड़नेपर जाड़ोंमें सर्दी बहुत होती, इसीलिये वहाँ बहुत हवादार अतएव ऊँचे तथा खिड़कीवाले कमरेको बनाना पसन्द नहीं किया जाता। गोल्के बापके मकानमें आम रवाज के मुताबिक निचली मंजिल पशुओंके लिये थी, और उपरली मंजिल मनुष्योंके लिये। दोनों मंजिलोंमें दो-दो कोठरियाँ थीं, जिनकी लम्बाई-चौड़ाई इतनी ही थी, कि आदमी पैर फैला कर सोये तो सिर और पैर दीवार छूने लगते।

यदि गोल्के बापका घर नीचे नदीके पास होता, तो उसके पास धानके भी खेत होते, लेकिन यहाँ ऊँचे स्थानपर गाँवके पास थोड़े-से बाकायदा खेत थे—अर्थात् अनगढ़ पत्थरोंकी नीचेकी ओर दीवार खड़ी करके मिट्टीको भरकर समतल बने खेत। खेत क्या इन्हें अधिक चौड़ी सीढ़ियाँ कह सकते हैं। लेकिन, गोल्के बाप के पास यह सीढ़ियाँ बहुत थोड़ी ही थीं। गाँव के ऊपरी भाग में खिल जमीन थी—अर्थात् जंगल काट कर जमीन को साफ कर दिया गया था, दीवार नहीं खड़ी की गई थी। रामभरोसे बरसातमें वहाँ जरा खोद-खादकर बीज छींट दिया जाता और जो कुछ भाग्य-भोग में होता, वह मिल जाता। गोल्के बापके पास ऐसी ही कुछ जमीन थी। बचपन सभीका बड़ा मधुर होता है। इसका यह अर्थ नहीं, कि उस वक्त हरेक बच्चेको खाने-पहननेकी निश्चिन्तता होती है। माँ-बाप भूखे रहकर बच्चेको सुखी रखना चाहते हैं। उस वक्तकी निश्चिन्तता वस्तुतः बच्चेके अपने भीतरसे पैदा होती

है। फिर जैसे-जैसे वह होश सँभालता है, वैसे ही वैसे उसके चारों ओरकी परिस्थितियाँ वास्तविकताके समझानेमें सहायता करती हैं। गोल् और गरीब बच्चोंकी तरह ही शैशवसे बचपनमें पहुँचा। बकरी जितनी नहीं, पर बकरीके बराबर ही दूध देनेवाली उसके घरमें दो-तीन गायें थीं. उतनी ही बकरियाँ भी थीं। बैलके लिए खेत नहीं था, इसलिए गोल्के बापने माँग-जाँच कर ही काम निकालना पसन्द किया था, नहीं तो खेती दोनों पति-पत्नी पहाड़ी छोटी-छोटी कुदालोंके सहारे कर लिया करते थे। लँगोटी लगानेकी भी योग्यता जब नहीं थी, तभीसे गोल् अपने पशुओंको जगलमें ले जाने लगा। इसमें चरवाहीसे भी ज्यादा उसे खेलका आकर्षण था, और रोज गाँवके और बच्चोंकी तरह वह भी गाँवके ऊपरवाले काफी दूरपर बने खुले जगलोंमें चला जाता। साथमें भुना हुआ दाना या रोटीका टुकड़ा होता। वह अपने पशुओंके साथ ही शामको घर लौटता। नदी दूर थी। गोल्के गाँवमें सर्दी बारहों महीने कुछ-न-कुछ बनी ही रहती थी। लोग पानी भरनेका पीते थे, जो बराबर ठण्डा रहता। लेकिन, नहानेको वहाँ शौकीनी माना जाता, इसलिए गोल् भी बचपनसे ही उसकी आवश्यकता नहीं समझता था। गरीबोंके पास पहननेके चिथड़े ही होते हैं, और चिथड़ोंका धोना उससे भी वंचित होना था। ऐसी गुदड़ियोंमें यदि जूँ और पिस्सू बराबरके लिए अपना डेरा डाल दें, तो आश्चर्य क्या? उनके काटनेकी फिकर वही करते हैं, जिनको इत्तिफाकसे कभी उनका सामना करना पड़ता है।

गोल् १४-१५ वर्षका हो गया। अब वह उन सभी कामोंको कर लेता था, जिन्हें उसके बाप-माँ कर सकते थे। कुदाल लेकर खेत गोड़ना, फसलकी निकाई करना, जगलसे काटकर पीठपर लकड़ी ढो लाना, खेतोंमें खाद पहुँचाना, किसीके यहाँ खरीदे ऊनको चलते-बैठते तकुएपर कातते रहना आदि-आदि। आजके गोल्को देखकर कैसे कोई समझ सकता है, कि वह कभी गाता भी था। उसकी तान पहाड़में दूर-दूर तक गूँजती थी? वह छोरियोंमें गानेमें होड़ लगाता था। गोल्को सुरीला कण्ठ मिला था, यह नहीं कहा जा सकता। वैसे पहाड़के तरुण-तरुणियाँ देशकी अपेक्षा अधिक सुकण्ठ होते है। गोल् अपने गाँवके उत्सवोंमें नाच भी सकता था। यद्यपि वह राजपूत था, लेकिन

पहाड़के गरीब राजपूत कई ऐसी बातें करनेमें स्वतन्त्र हैं, जो देशमें नहीं होतीं। राजपूत क्या ब्राह्मण भी वहाँ विधवा-विवाह कर सकते हैं। स्त्री पसन्द न आने पर पुरुषको छोड़कर दूसरेकी बन सकती है, यदि नया पति विवाहका खर्च लौटानेके लिए तैयार हो।

गोलूके घरमें फसलके वक्त पेटभर खानेको मिलता, बाकी समय आध पेट भी मिल जाय, तो वह इसे अपना सौभाग्य समझता था। ऐसे पखवारे भी आते थे, जब अन्नके नामपर जंगलसे जमा किया हुआ साग, कन्द या कुछ फल ही प्राप्य थे। लेकिन, जब वसन्तके समय काफल पक कर लाल होता, तो लड़के और तरुण "काफल पाक्यो" गाते नाचने लगते। उन्हें यह नहीं मालूम था, कि बड़ी गुठली और थोड़े गूदेवाले इस फलमें विटामिन और ताम्बा कूट कूटकर भरा हुआ था, जो स्वास्थ्यके लिए सबसे लाभदायक चीज है। उन्हें तो यही मालूम था कि देर तो होगी, लेकिन चाहनेपर काफलके रससे अपने पेटको भर सकते हैं। निश्चिन्तताका जीवन समाप्त होते-होते अब अपने अन्तपर पहुँच रहा था, और चिन्ता अपने पैरोंको बड़ी तेजीसे आगे बढ़ा रही थी। गोलूके लिये माँ-बापकी झिड़की और थप्पड़ मामूली-सी बात थी। लेकिन, जवानीपर पहुँचते-पहुँचते अब वह पहलेकी तरह उसे बर्दाश्त करनेके लिये तैयार नहीं था। माँ बेचारीने तो वर्षोंसे बल्कि उसे कभी छूआ नहीं था।

(२)

गोलू १७ वर्षका था, जब कि उसकी माँ मर गई। आखिरी बच्चा पैदा होते ही चल बसा, साथ ही माँको जल्दी आनेका निमन्त्रण दे गया। बाप अभी जवान था। उसे ब्याह करनेकी इसलिये भी आवश्यकता थी, कि घरमें रोटी पकाकर देनेवाला कोई नहीं था। पर, अभी वह उसके लिये जल्दी नहीं कर रहा था, क्योंकि पैसेका सवाल था। पहाड़में आम-तौरसे लोग तिलक पानेकी आशा नहीं रखते, बल्कि उन्हें पैसेसे लड़कीको खरीदना पड़ता है। गोलूकी माँके खरीदनेमें उसके बापका सबसे अच्छा खेत बिक गया। यह भी एक कारण ब्याहके ख्यालको मुल्तवी रखनेका था। जीवन बड़े संघर्षका था, पर लड़का कमाने लायक हो गया था। पहाड़के लोग बदरी-केदारकी यात्राके

मर्दोनोंमें तीर्थयात्रियों या उनके सामानको पीठपर ढोते। लेकिन, आस-पासके सभी गाँववालोंके टूट पडनेके कारण माँगमें पूर्ति अधिक हो जाती है, जिसके कारण मजूरी गिर जाती है। फिर तीर्थयात्रियोंमें सभी बडे धनी नहीं हुआ करते, इसलिये वह पैसेको बहुत सकोचसे खर्च करते है। मधुपुरी जैसी विलास-पुरियोंमें मजदूरी अधिक मिलती, आदमियोंकी माँग भी अधिक थी। गोल्ड्के गाँवके दो-तीन आदमी मजूरी करने मधुपुरी पहुँच चुके थे। गोल्ड्ने भी भाग्य-परीक्षा करनी चाही। बापने बडी खुशी खुशी एक दिन उसे विदा किया, उस दिनसे उसका वह जीवन आरम्भ हुआ था, जो आज भी चला जा रहा है। मधुपुरीमें आने पर उसे मालूम हुआ, कि जो बातें उसने सुन रक्खी थीं, वह सब उसी तरह नहीं है। इधरके पहाडी और नेपाली पहाडी दोनोंकी होड़ थी। नेपाली दूना बोझ उठा सकते है, इसलिये वह अपेक्षाकृत सस्ती मजूरी भी ले सकते हैं। लेकिन, आजसे तीस वर्ष पहले जब गोल्ड् मधुपुरीमें आया, बोझा-ढोनेमें नेपालियोंका वह एकाधिपत्य कायम नहीं हुआ था, जो आज है।

मधुपुरीमें आकर कुछ दिनों उसे बैठा रहना पडा, वह घरसे बाँधकर लाये आटेकी रोटी नमकके साथ खाता रहा, फिर कुछ ढुलाईका काम मिला। अन्तमें उसे रिक्शाका घोडा बनना पड़ा। बँधी हुई मजूरी होनेसे रिक्शा खींचना इधरके पहाडियोंका काम हो गया है, जब कि बोझा ढोना नेपालियोंका काम है। किरायेपर ६ आदमियोने मिलकर एक रिक्शा ले लिया, और उसे लेकर अड्डेपर वह मुसाफिरोंकी प्रतीक्षा करते। अभी मोटरें बहुत कम देखनेमें आती थीं। मधुपुरी आनेवाले सैलानी उस वक्त साधारण लोग नहीं थे—अंग्रेज साहेबोंके बाद बड़ी संख्यामें राजा और नवाब यहाँ आते थे, फिर बडे-बडे हिन्दुस्तानी अफसरोंका नम्बर आता था। यही कारण है, जो उस समय भी मधुपुरीके पहाडके नीचे काफी मोटरें देखी जा सकती थीं। मधुपुरीतक अभी मोटर-सड़क बननेमें एक दशाब्दीकी देर थी, नहीं तो वह यहाँ भी पहुँच गई होती। इसके फलस्वरूप रिक्शावालोंको ढोकर लानेके लिये नीचेसे सवारी मिल जाती थी। रिक्शावाले यही कोशिश करते, कि किसी अंग्रेजकी सवारी मिले। वह बिना माँगे ही मजूरी देनेमें बड़ी उदारता दिखलाते थे। राजा-नवाबके नौकर मजूरीमेंसे कुछ अपने लिये रखना चाहते थे, तो भी दूसरे

नम्बरपर वह उनको पसन्द करते थे। बाबुओं-बनियोंकी सवारी उनके लिये किस्मत फूट जाने जैसी थी। पहाड़में चाहे बोझा ढोना हो, या रिक्शा खींचना; चढ़ाईमें आदमीका प्राण निकल जाता है। लेकिन, जो उनपर चढ़कर चलते हैं, वह इसे खेल समझते हैं, और बहुतेरे तो मुफ्त जैसी सवारी करना पसन्द करते हैं। आजकल भी आम-तौरसे देखा जा सकता है—लोग अड्डेपर बिना किराया किये बैठ जाते हैं—किराया ठीक करनेकी जरूरत भी नहीं, क्योंकि सभी जगहोंका किराया नगरपालिकाने बाँध दिया है। अपने स्थानपर पहुँचने पर रिक्शेवाला दरके अनुसार किराया माँगता है, तो उसे झिड़कियाँ ही खानी नहीं पड़तीं, बल्कि बाज-वक्त लोग गाली-गलौजपर भी उतर आते हैं। यह रिक्शेवालोंका सौजन्य ही समझिये—जिसे दूसरे दब्बूपन बतलाते हैं—जो हर जगह ले-दे नहीं होने पाती।

पहले ही सीजनमें गोलू रिक्शेवाला बन गया—रिक्शेका मालिक नहीं, बल्कि रिक्शा खींचनेवाला घोड़ा। पैसा मिला, लेकिन उसे खर्च करते वक्त उसे बराबर ख्याल रहता था, कि सीजनके बाद घर लौटना है, कुछ पैसा साथ ले जाना होगा। इसीलिये खाने-पीनेमें वह बहुत सकोच रखता था। मधुपुरीका पहला ही सीजन (मई-जून) मुख्य होता है, जिसका आधा उसे करीब-करीब बेकारीमें काटना पड़ा था। बरसातके दिनोंमें कभी सवारी मिलती, कभी नहीं मिलती। नवम्बरके शुरूमें जब गोलू दूसरे साथियोंकी तरह अपने गाँवके लिये लौटने लगा, तो उसने ४० रुपये बचा पाये, इसके अलावा अपने और बापके लिये कुछ कपड़ा भी ले लिया था। कमाऊ पुत्र गरीब बापको पसन्द आते ही है। बापकी ओरसे बड़ा स्वागत हुआ। जाड़ा बिताकर उसका फिर मधुपुरी जाना निश्चित था। बापकी बातसे वह सहमत हो गया, जब कि उसने कहा, कि रोटी-पानीके लिये ही नहीं, बल्कि खेती-बारीके काममें सहायता देनेके लिये भी घरमें स्त्रीकी अवश्यकता है। गोलूने समझा, शायद वह मेरी शादीकी बातकर रहा है। वह इसे क्यों न पसन्द करता। उसने अपनी सहमति प्रकट की। अगले साल वह पूरे सौ रुपये बचाकर ले गया। उसे बहुत खुशी हुई, इतना पैसा हाथमें देखनेसे ही नहीं, बल्कि इस ख्यालसे भी कि जल्दी ही उसका ब्याह हो जायेगा।

(४)

ब्याह हुआ, लेकिन गोलूका नहीं, बल्कि उसके बापका। सौतेली माँ कमाऊ गोलूके साथ अपना सम्बन्ध बिगाड़ना पसन्द नहीं कर सकती थी, और न बाप ही। लेकिन, गोलू उनसे खिंचा-खिंचा-सा रहता। बापको डर लगा, कहीं वह हाथसे बेहाथ न हो जाये, इसलिये उसके ब्याहकी बातचीत चलाने लगा, और मधुपुरीके पूरे दस सीजनोंको बितानेके बाद गोलूका भी ब्याह हो गया। वह इससे पहले ही हो जाना चाहिये था, लेकिन बापको जल्दी नहीं पड़ी थी, और सीधे सादे गोलूको आशापर रखना उसने काफी समझा था। गोलू बैलकी तरह कमाकर एक-एक पैसा बचाकर ले जाता, और बाप उसे उड़ानेके लिये तैयार था। उसने अपनी स्त्रीके लिये जेवर बनवाये, बहूके लिये भी वैसे ही चाँदीके कुछ जेवर बना दिये, कुछ लड़कीके बापको देना पड़ा। उससे भी अधिक बापने पीने-खानेमें उड़ाया। यही नहीं, ब्याह करनेके बहाने उसने हजार रुपया कर्ज भी लाद लिया। सभी पहाड़ी मजूरोंकी तरह गोलू भी अपनी बीबी-को मधुपुरी नहीं लाना चाहता था। मधुपुरीमें जहाँ दूसरी तरहके सैलानी मौज-मेलेके लिये आया करते हैं, वहाँ अंग्रेजोंके समय यहाँ कई सौ फौजी गोरे रहा करते थे, जिनके कारण स्त्रियोंकी इज्जत दिनदहाड़े लुट जाती थी। ऐसी अवस्थामें भला कौन मजूर अपनी स्त्री साथ लाना चाहता?

गोलूके दो सौतेले भाई भी पैदा होकर बढ़ने लगे। घरके भरण-पोषणका सबसे अधिक भार गोलूके ऊपर था। हाँ, घरमें दो स्त्रियोंके आ जानेसे अब खेतका काम कुछ अधिक मुस्तैदीसे होता था। बकरियाँ भी बढ़ा ली गई थीं, गायें भी पाँच हो गई थीं। उस घरमें और अधिक पशुओंका रखना सम्भव नहीं था, नहीं तो उन्हें और बढ़ने दिया जाता। यदि कर्ज न किया होता, तो इसमें शक नहीं नाज-पानीका काम घरसे चल जाता। लेकिन महाजनका सूद बढ़ रहा था, कर्जकी फिकर बापसे ज्यादा गोलूको थी; यदि सारी जमीन बिक गयी तो फिर सीजनके बाद वह कहाँ लौटके जायेगा? गोलू फिर उसी तरह हर साल मधुपुरी आता, पुराना होनेके कारण अपने रिक्शेके ६ मजूरोंका खुद ही मुखिया हो गया। उससे पूछिये, तो वह इसे भाग्यकी बात समझेगा, किन्तु

वस्तुतः यह उसकी मुस्तैदी और मिलनसारी थी, जो उसके रिक्शेकी माँग सबसे अधिक हुआ करती थी, और साल व साल वह अधिक रुपया बचा कर अपने घर लौटता। यदि कर्ज ही बेबाक करना होता, तो इतना समय नहीं लगता, किन्तु बापकी और भी कितनी ही फरमाइशें उसे पूरी करनी पड़ती थीं, घरवालोंके लिये एक-दो कपड़ा ले जाना पड़ता, साथ ही बाप इधर-उधरसे उधार लेनेसे बाज नहीं आता था। सारे कर्जको उतारते-उतारते दूसरा महायुद्ध खतम होनेको आया, इसी समय बाप भी चल बसा।

गोलू अब अपने घरका मुखिया था, खानेवाला नहीं बल्कि कमानेवाला, इसलिये भी घरमें उसकी बात बहुत चलती थी। उसके दोनों सौतेले भाई भी उस उमरको पहुँच रहे थे, जिसमें वह पहलेपहल मधुपुरी आया था। उसे अच्छे दिनोंकी आशा होने लगी। रिक्शेवालेको अधिक परिश्रमके कारण छाती और फेफड़ेको नुकसान पहुँचता है। इसी मेहनतके कारण जवानीमें भी गोलूके शरीरपर अधिक मांस कभी नहीं चढ़ने पाया। उसे आँखों से कम दिखलाई पड़ने लगा, लेकिन यह डर नहीं था, कि वह कुछ ही समयमें अपनी आँखोंसे हाथ धोनेवाला है। लड़ाईके बाद दो-तीन सालतक वह किसी तरह मधुपुरी आता रहा, फिर आँखोंकी रोशनी एकदम जाती रही, और वह अपने गाँवमें बैठ जानेके लिये मजबूर हुआ। लेकिन बेबस बैठकर खानेवालेको गरीब परिवार कबतक ढो सकता है? उसका आदर घटने लगा, फिर अवहेलना होने लगी और अन्तमें चारों ओरसे हर वक्त वाग्बाण ऊपर छूटने लगे। गोलू इसका अभ्यासी नहीं था।

मधुपुरी आनेवाले अपने यहाँके एक आदमीसे उसने बड़ी चिरौरी-मिन्ती की, जब मालूम हुआ कि वहाँ हर साल आँख बनानेवाला डाक्टर आया करता है। लोगोंने समझाया—एक बार चली गई आँखकी रोशनी फिर लौट कर नहीं आती, लेकिन मनुष्य तो जन्मजात आशावान् है। वह अगले साल किसी-का हाथ पकड़े, हाथमें डंडा लिये दुरारोह पहाड़ोंके कठिन रास्तोंको पार करता मधुपुरी पहुँचा। डाक्टरने कहा, अभी एक आँखका ही आपरेशन हो सकता है, दूसरी अभी उसके लायक नहीं हुई है। गोलूको बहुत खुशी हुई यदि एक आँख भी उसकी काम देने लगे, तो वह अपनी जीवननैयाको भँवरमेंसे निकाल

सकता है। आपरेशन हुआ, हरी पट्टी बँध गई और तीन हफ्ता देखनेके बाद डाक्टरने एक बहुत मोटा चश्मा लगवा दिया। डाक्टरने तो और भी रुकनेके लिए कहा था, लेकिन गोलू एक हफ्ते बाद ही चश्मेके सहारे आँखोंसे काम लेने लगा। आखिर उसे जीते रहनेके लिए खानेका इन्तजाम करना था। उसे दूसरी श्रेणीके लोगोंसे परिचय प्राप्त करना था। रिक्शा खींचनेवाले धीमी चालसे नहीं चल सकते। यद्यपि ऐसा करनेपर उनकी पीठपर कोड़े नहीं पड़ सकते, लेकिन बातका कोड़ा और भी ज्यादा दुस्सह होता है, और उससे भी ज्यादा पहली सवारी छोड़ दूसरी सवारी पकड़नेकी जल्दी रहती है। भला गोलू जैसे मार्थीको कौन रिक्शावाला पसन्द करता?

अब गोलूको रिक्शा छोड़कर बोझा ढोनेका काम करना पड़ा। उसके स्वभावसे लोग जल्दी ही परिचित हो गये और उसे बोझा मिलने लगा। गोलूने दो वर्ष बाद दूसरी आँख भी बनवा ली, लेकिन उसमें भी पहलीसे अधिक रोशनी नहीं थी। अब उसके लिए रिक्शाके जीवनकी ओर लौटना सदाके लिए बन्द हो गया। छोटी बेंगाली हाथमें लिये वह पीठपर बोझ ढोते मधुपुरीकी सड़कोंपर घूमने लगा। पहले साल मुश्किलसे खानेभरके लिए कमा सका। करके वह उस साल जाड़ोंमें भी वह घर नहीं लौट सका। अगले सालके सीजनको पूराकर अपने गाँव गया, तो यह देखकर उसके दुःखका ठिकाना नहीं रहा कि उसकी स्त्री अब सौतेले भाईकी हो चुकी है। उसने बैलकी तरहसे मर-मरके बापको पैसा दिया, उसका ब्याह करवाया, कर्ज बेबाक किया, परिवारको पाला था। लेकिन, जब स्त्रीने देखा कि वह अन्धा और समयसे पहले ही बूढ़ा भी हो गया है, तो उसने उसे छोड़कर देवरका पल्ला पकड़ा। गोलूने कहा-सुनी की, लेकिन जल्दी ही उसे मालूम हो गया कि इसका कोई सुफल नहीं मिल सकता। छोटे भाइयोंके हाथ पिटनेसे क्या फायदा? यह निश्चित ही था कि अब वह पहलेके जितना कमा भी नहीं सकता। अंग्रेजोंके हिन्दुस्तान छोड़कर चले जानेके बाद मधुपुरीकी अवस्था दिन-पर-दिन गिरती ही गई थी, और स्वस्थ रहनेपर भी पहले जैसी कमाई नहीं हो सकती थी। यदि वह पुरानी कमाई लौट सकती तो शायद गोलूका फिर घरमें मान बढ़ता। हो सकता है, उसकी

भी फिर लौट आती। लेकिन, मधुपुरीके लिए न कोई अभी अच्छे दिनोंकी आशा थी और न गोलूके लिए ही।

बड़ी मुश्किलसे जाड़ोंको गाँवमें बिना भोजनके समय वह फिर मधुपुरी चला आया—हमेशाके लिए, अब उसका कोई दूसरा घर नहीं था। हाथ-पैर चलाते धीरे-धीरे उसने अपने लिए मधुपुरीमें बारहों महीनेके वास्ते स्थान बना लिया। मजूरी कम किये बिना उसको बोझा नहीं मिल सकता था, इसलिए उसने वह भी किया। मोटा चश्मा लगाये अब वह कुछ देख सकता ही था, इसलिए उसने अपने इस नये अनिश्चित कालतक समाप्त होनेवाले जीवनको आरम्भ किया।

डाक्टरोंने बतला दिया है कि धुँयेसे आँखको बचाना, नहीं तो हमेशाके लिए उससे हाथ धोवोगे। गोलू अच्छी तरह जानता है कि आँखोंके बराबर कोई नियामत नहीं, इसलिए वह उनका बड़ा ध्यान रखता है। यदि अपनी बीवी होती, तो वह इस समय जरूर रवाज तोडकर उसे अपने साथ मधुपुरीमें रखता। अब उसे रोटीके लिए दूसरोंपर निर्भर रहना पड़ता है। गरीब लोग जितने ही अधिक कष्टमें रहते हैं, उनमें उतना ही सौहार्द भी रहता है। गोलू-की रोटी कोई साथी-मजदूर अपने साथ पका देता। आटा और दूसरी चीजें तो गोलू देता ही है, साथ ही उसने ईंधनकी लकड़ी लानेका काम अपने ऊपर ले लिया। दिनमें अगर समय मिल जाता, जिसका मतलब है कुछ मजूरीसे वञ्चित रहना—तो इधरके जंगलमें वह मोटी-मोटी सूखी लकड़ियाँ जमा करके ले जाता। उस दिन घड़ी भर रातको ईंधन ले जाना जरूरी था, तभी तो सड़कके किनारेसे वह उँगली भर मोटी लकड़ियाँ जमा करने की कोशिश कर रहा था।

१२. रूपी

(१)

वह इस जीवनके लिये पैदा नहीं हुई थी। कई बार इस दलदलसे निकलनेकी उसने कोशिश भी की। मधुपुरी सवा सौ वर्ष पुरानी विलासनगरी है। इसके पहले वहाँ लोग यहाँके घने जंगलोंमें अपने पशुओंको चराते थे, जो अब इसकी सीमाके बाहर अपने छोटे-छोटे गाँवोंमें रहते हैं। सभी बातोंमें यह लोग बहुत पिछड़े हुये हैं, लेकिन पिछड़ा होनेका मतलब बुरा होना नहीं है। मधुपुरीके बसनेके पहले यह अव्वल नम्बरके ईमानदार थे और दूसरोंकी अपेक्षा आज भी हैं। व्यभिचार इनके यहाँ नहीं था। हाँ, एक पुरानी परिपाटी इनके यहाँ चल रही थी, जो दूसरी जगहोंमें सहस्राब्दियों पहले उठ चुकी है। अतिथि-सेवा इनमें परमधर्म मानी जाती थी, और अतिथिसत्कार केवल खान-पानमें ही नहीं, बल्कि स्त्रीको भी सुलभ करके यह करते थे। लेकिन, जब उन्हें मालूम हुआ, कि ये बाहरसे आनेवाले अतिथि ऐसी सेवाका दुरुपयोग करते हैं, तो वह उससे हट गये। गरीबी कहाँ नहीं है, लेकिन इनमें खाते-पीते लोगोंकी संख्या बहुत कम थी। रूप-रंगमें यहाँकी तरुणियाँ ज्यादा अच्छी होती हैं, यह भी इनके लिये घाटेका सौदा हुआ। मधुपुरीने यहाँ बसकर यहाँकी तरुणियोंके जीवनके साथ खिलवाड़ करना शुरू किया।

उसकी माँ जब तरुणी थी, तो मधुपुरीके मेला-उत्सवमें अपनी सहेलियोंके साथ आती। फिर किसी तरह एक देशी सैनिकके साथ उसका भाग्य जुट गया। दोनों पति-पत्नीके तौरपर रहते। उन्हें एक कन्या पैदा हुई, रूप-रंगमें माँसे अधिक सुन्दरी थी। उसका नाम रूपी रक्खा गया। उसने बचपनसे ही नागरिक जीवनको देखा। बाप अपनी कन्याके बारेमें कितने ही मनसूबे रखता था। लेकिन, अनेक बापोंकी तरह उसका भी मनसूबा धरा रह गया, जब चार वर्षकी बच्चीको छोड़कर वह चल बसा। माँ तरुणी थी। परिस्थितियोंने चाहे जो भी उससे कराया हो, लेकिन वह स्वभावतः बुरी नहीं थी। दुनिया

दुःखी हो जाती है, जब तरुण स्त्री असहाय छोड़ दी जाती है। अपने सैनिक पतिकी नगरीमें भी शायद कोई रखनेवाला उसे मिल जाता, लेकिन उसे विश्वास नहीं हुआ, या उसे स्वच्छन्द पहाड़ी जीवन प्रिय लगा। वह फिर मधुपुरी चली आई और एक दुबले-पतले पहाड़ी चौकीदारसे उसका नाता जुट गया। पति दो भाई थे। अभी भी इस अंचलमें पाण्डव-विवाहकी प्रथा है, जिसे लोग बाहरवालोंके सामने छिपानेकी कोशिश करते हैं। वह छोटे पतिको देवर कहा करती, और अब लड़केके घर आने पर उसे जेठका नाम देती है।

करेला और नीमचढ़ा— गाँवके जीवनको नागरिक-जीवनमें परिवर्तित करने पर यह कहावत लागू नहीं होती, यह ठीक है; किन्तु, पहाड़ी ग्रामके सीधे-सादे जीवनपर नागरिक जीवन जब हावी हो जाता है, तो वह अतिको पहुँचा देता है। गाँवमें रहते समय चाहे कुछ स्वच्छन्दता बरती जाये, लेकिन वहाँ समाजका कानून सिरपर रहता है, जाति-बिरादरीवालोंकी रायकी पर्वाह करनी पड़ती है। उनका समाज इसे बुरा नहीं मानता, यदि कोई स्त्री अपने एक पुरुषको छोड़कर दूसरेसे ब्याह कर ले, उसे केवल ब्याहका खर्च लौटाना पड़ता है। लेकिन, सिपाहीकी स्त्री जब मधुपुरी जैसी विलासपुरीमें आकर रहने लगी, तो उसपर वहाँके आकर्षण और प्रलोभन अपना असर करने लगे। चौकीदारकी तनख्वाह ही कितनी होती है? फिर उसको तीन-चार और सन्तानें भी हो गईं। सात-सात आठ-आठ आदमीका खर्च चलना मुश्किल था। चाहे बरभर मेहनत करनेके लिये तैयार था। वह पासके जंगलोंसे लकड़ियाँ काट कर बेचते। बंगलेमें साग-सब्जी उगाने लायक काफी जमीन थी, लेकिन पानीका अभाव था, इसलिये उसका कोई उपयोग नहीं किया जा सकता था। मधुपुरीमें दूधकी भी बड़ी माँग है, और सारी कड़ाइयोंके रहने पर भी उसमें पानी डालना रोका नहीं जा सकता। किन्हीं-किन्हीं चौकीदारोंने गाय पाल रक्खी है, कुछ बकरियाँ भी पाल लेते हैं, क्योंकि कसाई बकरोंका अच्छा दाम दे देते हैं। लेकिन, चौकीदारने कभी अपने यहाँ कोई जानवर नहीं पाला। शायद नगरीके एक छोरपर जंगलके बीच होनेके कारण यहाँ बघेरेका डर बना रहता है, इसलिये उसने पशुपालन पसन्द नहीं किया, अथवा उतना पैसा नहीं जुट सका, कि जानवर खरीदे। हाँ, नगरके छोरपर तथा बाहरके गाँवोंके पास होनेसे एक सुभीता उसे

यह जरूर था, कि गाँवकी बनी सस्ती शराबको लाकर दूने दामपर यहाँ लोगोंको पिलावे। उस समय अभी आसपासके गाँव अंग्रेजी-भारतमें नहीं, बल्कि रियासतमें थे, इसलिये इस पिछड़े इलाकेमें शराब बनानेमें कोई बाधा नहीं थी। बाधा अब भी नहीं है, क्योंकि यदि कानून कड़ाई करना चाहता है, तो गाँवके गाँवको ले जाकर जेलमें बन्द करना पड़ेगा और गान्धीजीके असहयोग-आन्दोलनका नजारा सामने आयेगा, हजारों-हजार कैदियोंका भरण-पोषण करना सरकारके लिये सिर-दर्दका कारण होगा। लेकिन, मधुपुरीके किसी बंगलेमें ऐसा करना आसान नहीं था। कभी कभी पुलिस भी छापा मारती। पर, चौकीदार काफी होशियार था, पुलिसके कितने ही जवानोंके लिये उसने सस्ती शराबकी सदावर्त खोल रक्खी थी।

संक्षेपमें परिवारकी जीविकाके यही साधन थे।

(२)

'बुभुक्षितः किं न करोति पाप' की बात इस परिवारके ऊपर घटने लगी, जब कि बच्चे सयाने होकर अधिक खाने और कपड़ेकी माँग करने लगे। अपनी सामाजिक प्रथाके अनुसार बड़ी लड़कीको किसी अपने जात-भाईको विवाहकर कुछ रुपया मिल सकता था, लेकिन, वह रुपया बहुत कम होता, जो एक-दो महीनेमें खतम हो जाता। माँको नगरकी हवा लग चुकी थी। उसके दोनों पति विलासपुरीके निवासी होनेके कारण कितनी ही बातोंको जानते थे। आखिर ब्याहके लिये पैसा लेना भी लड़कीको बेचना था। एक बारके बेचनेमें कम और रोज-रोजके बेचनेमें ज्यादा पैसा तथा स्थायी आमदनी होने लगे, तो इससे बढ़कर क्या बात हो सकती थी? लड़की चौकीदार या उसके भाईकी नहीं थी। यदि होती भी तो कुछ दूसरा ख्याल करते, इसकी कम सम्भावना थी। शायद तरुणाईमें पैर रखनेपर शराब पीनेके लिए कुटियामें पहुँचनेवाले लोगोंसे लड़कीकी छेड़-छाड़ होने लगी थी। उसकी माँ मधुबाला थी, शायद उसने भी लड़कीके लिये रास्ता साफ किया था। लेकिन, इस बंगलेमें जिस तरह निर्द्वन्द्व शराबके ग्राहक मिल सकते थे, वैसे रूपके ग्राहक नहीं मिल सकते थे। कभी-कभीसे कितनी आमदनी होती! माँने सलाह ही नहीं दी, बल्कि वह एक दिन

अपनी लड़कीको लेकर देशके एक नगरमें पहुँच गई। वेश्यावृत्ति आजकी नागरिक सभ्यताका एक अभिन्न अंग है, और नगरोंके अस्तित्व आनेके साथ ही वह खुद अस्तित्वमें आई थी। उसके कई प्रकार है। कुछ वेश्यायें नाच-गानेका पेशा भी करती है, कुछको ऐसी किसी कलासे प्रयोजन नहीं, वह खुद केवल अपने शरीरको अर्पण करती है, लेकिन तो भी खुले आम बाजारमें बैठती है। एक तीसरी तरहकी वेश्यावृत्तिका भी स्थान है, जिसमें पेशेवर और गैर-पेशेवर दोनों प्रकारकी शरीर बेचनेवाली स्त्रियाँ सामूहिक रूपसे वेश्यावृत्ति करती है, जिसे चकला कहते हैं। यदि माँ चकलेसे बिल्कुल अपरिचित होती, तो एकाएक लड़कीके साथ वहाँ पहुँच जाना उसके लिये सम्भव नहीं था।

उसका नाम बहुत अच्छा सा किसी और ही ख्यालसे रक्खा गया था, लेकिन उसके आजके जीवनमें उस नामको दोहराना अच्छा नहीं है—रूपसे आजीविका करनेवाली होनेके कारण हम उसे रूपाजीवा कहते। पहलेपहल चकलेका जीवन शुरू करनेमें उसको बहुत बेचैनी-सी होती, यदि माँने पहलेसे ही उस पथके लिए तैयारी न कराई होती। वह ठण्डे पहाड़की रहनेवाली थी, और देशके नगर चार-पाँच महीनेसे अधिक उसके अनुकूल नहीं हो सकते थे। पहला जाड़ा इस तरह उसने चकलेमें बिताया। चकलेकी दलाल स्त्री उसके घरका प्रबन्ध करती, ग्राहक पैदा करती और खाने-पीने आदि चीजोंके प्राप्त करनेमें उसकी सहायता करती। यह सब वह मुफ्त थोड़े ही करती? इसके लिए रूपीको अपने बेचनेकी कीमतका कितना ही भाग उसे दे देना पड़ता। तो भी उसने पहले जाड़ेमें अपने लिए कुछ कपड़े और जेवर बनवाये, माँ और भाइयोंके लिए भी कुछ खरीदा और सौ रुपया नगद लेकर मधुपुरी लौट आई।

अब गर्मियों और बरसातमें मधुपुरी और जाड़ा तथा वसन्तमें देशके किसी नगरमें वह जाया करती। वह न शिक्षिता थी और न शिक्षित समाजमें पली थी, इसलिए उच्च आदर्श क्या है इसकी भनक भी उसके कानमें नहीं पड़ी थी। लेकिन, अपने व्यवहारसे कीचड़में गिरी होनेपर भी वह स्वार्थमें डूबी नहीं थी। वह समझती थी, अपने भूखे परिवारकी सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य भी उसकी समझसे बाहरका शब्द था, सीधी बात यह थी

कि भूखे पेट चिथड़े लपेटे अपने परिवारको देखकर उसका दिल तिलमिला जाता और उसका ही उपचार वह इस प्रकार सहायता पहुँचाकर कर रही थी।

(३)

मौसम बीतते वर्ष बीत रहे थे। उसने १४-१५ वर्षकी उमरसे इस जीवनको स्वीकार किया था। उस समयसे अब उसकी बुद्धि भी ज्यादा विकसित हो चुकी थी। पहले घुटनों चलते बालककी तरह अपनी माँको अँगुली पकड़कर चलना ही भर वह जानती थी। अब वह कुछ खुद सोचने लगी थी। उसके परिवारकी स्थिति इस सहायतासे सुधर नहीं रही थी। मास और शराब घरमें कुछ और खाई-पी जाती, कुछ दिनोंमें पैसे खर्च हो जाते तथा ग्राहकोंके दुर्लभ हो जाने पर फिर भूखे पेट रहने पड़ते। चिथड़े कभी थोड़े दिनोंके लिए उतर जाते और कबाड़ियोंकी दुकानसे कोई सूती या ऊनी कोट आ जाता। लेकिन कुछ दिनों बाद वह फिर बिक जाते और कोनेमें फेंके चिथड़े फिर शरीरपर पड़ जाते। रूपी चिथड़े लपेटकर नहीं चल सकती थी, तब उसे ग्राहक कहाँसे मिलते? उसके शरीरको मांसल रखना भी आवश्यक था, इसलिए परिवार भले ही भूखा रहे, लेकिन उसे भूखा नहीं रक्खा जाता।

वेश्यावृत्तिको सभी धर्मोंने पाप बतलाया है और इसके लिए नर्कमें कठोर यातनाओंका चित्र खींचा है, लेकिन हजारों वर्षोंसे नर्ककी धमकी दी जा रही है, तो भी वेश्यावृत्ति कम होनेकी जगह बढ़ती ही गई। उधारके दण्डका यहाँ कोई सवाल नहीं। धीरे-धीरे प्रकृति भी इसे बर्दाश्त करनेके लिए तैयार नहीं हुई और उसने इसी जन्ममें आँखोंके सामने घोर दण्ड देना शुरू किया, और रतिज-रोग (सुजाक और गर्मी) ने दुनियामें अपना फैलाव शुरू किया। कौन देश है जहाँ थैलीका बोलबाला हो, और यह दोनों उसके अभिन्न सहचर आ मौजूद न हों। पुरियों और विलासपुरियोंमें तो इनका और भी जबर्दस्त प्रभाव है। ठण्डे पहाड़ोंको देखकर अंग्रेजोंने जहाँ-जहाँ गोरोंकी छावनियाँ बनाईं, वहाँ दस-दस मील चारों तरफ लोग इनके मारे त्राहि-त्राहि करने लगे। अगर इनके प्रभावकी मात्रा जानना हो तो किसी गाँवमें कितने निस्सन्तान परिवार हैं, इसे पूछ लीजिये। सूजाक आदमीको निस्सन्तान बनाता है। शिमलाके पास

ऐसे कितने ही गाँव मिलेंगे, जिनके आधे घर निस्सन्तान होकर उजड गये। पेनिसिलिन उसकी अमोघ दवा है, लेकिन एक बार अच्छा हो करके भी तो मुक्ति नहीं मिल सकती, यदि समाजमें उसका बहुत फैलाव हो और ऐसे स्त्री-पुरुषोंका संसर्ग हो। गर्मी या आतशक उससे भी भयंकर है, क्योंकि यह निस्सन्तान तो नहीं करता, लेकिन कोढको पैदा कर देता है। रूपी अपने इस जीवनमें इन भयानक रोगोंसे कैसे बच सकती थी? तीन साल भी बीतने नहीं पाये, कि वह आतशकका शिकार हुई। जब बनियेने हाट लगा दी, तो वह किसी ग्राहकके हाथमें अपने सौदेको बेचनेसे इन्कार कैसे कर सकता है? आजसे डेढ हजार वर्ष पहले शूद्रकने अपने 'मृच्छकटिक' नाटकमें लिखा था।

वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरः मूर्खोऽपि वर्णाधमः,
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि विहगो या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविशः तरन्ति च यया नावा तथैवेतरे,
सा वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज॥

इस प्रकार बावडी. लता और नौकाकी तरह वेश्याको किसीके साथ भेद-भाव न करके उसकी सेवा करनेके लिये उसी कालकी तरह आज भी तैयार रहना पड़ता है। रूपीकी बीमारी बहुत भयकर थी, घाव हो गये थे, उसे चलना-फिरना मुश्किल हो गया था। उसे मधुपुरीके अस्पतालमें ले गये। दवाई होने लगी, लेकिन सात रुपये रोज वहाँ देना उसके लिये बहुत दिनों तक सम्भव नहीं था। घाव अभी पूरी तरह अच्छा नहीं हुआ था, तभी वह वहाँसे चली आई। सौतेले बापका गाँव अब भी मौजूद था, वहाँ कुछ खेत भी थे, और एक टूटा-फूटा घर भी। वह वहाँ भेज दी गई। उसे मालूम होने लगा, कि यह जीवन भारी संकटका है। उसे हालकी बीमारीमें मृत्युके मुँह साफ-साफ दिखाई पडते थे। शायद वह यह न जानती थी, कि कुष्ठमें परिणत होकर उसका जीवन उस मृत्युसे भी कहीं अधिक भयकर होगा। जबतक रोग छिपा रहे, तभीतक ग्राहक आ सकते थे, जब उन्हें साफ मालूम हो, तो कौन अपने गलेमें अपने हाथसे फाँसी लगाना चाहेगा? यदि उसे अपनी हाट उठा देनी पड़ी, तो फिर क्या वह दाने-दानेके लिये मुहताज नहीं होगी। उसने ऋषिकेश और दूसरी जगहोंपर सैकड़ोंकी तादादमें कोढ़ी स्त्रियोंको नहीं देखा

था, नहीं तो जानती कि उनमेंसे अधिकाश रूपकी हाट लगानेके कारण ही मौतसे भी बदतर जिन्दगी भोगती कड़ी धूपमें रास्तेके किनारे बैठी भीख माँग रही हैं।

जो भी हो, खतरेका उसे कुछ पता लग गया। बीमारी न होती, तब भी उसे यह ख्याल तो आता ही था, कि रूप आजीवन साथ नहीं रहता, यौवन बादलकी छायाकी तरह इतना जल्दी निकल जाता है, कि पता नहीं लगता। उसे इस बातकी फिकर पडी; कि किस तरह इस जीवनसे निकला जाये। स्वस्थ हो जाने पर फिर उसे आधा समय देशके शहरोंके चकलोंमें और आधा समय अपनी माँकी कुटियामें उसी जीवनको बिताना पडेगा। लेकिन, जिस तरह चकलेका रास्ता पा जाना उसके लिये आसान था, उसी तरह उससे निकलनेका रास्ता पाना आसान नहीं था। पहले उसके चेहरेपर मुस्कुराहट खेला करती थी, अब वह साफ दिखलावटी मालूम होती थी—वह कभी-कभी आती और वह भी कृत्रिम मालूम होती। रूपी रूपाजीवा थी जरूर, लेकिन वह निर्लज्ज नहीं थी। शास्त्रमें "सलज्जा गणिका नष्टा" कहा गया है। इसका कुछ प्रभाव उसके व्यवसायपर भी पड़ सकता था। वह सचमुच सुन्दरी थी, जिसमें यौवनने मिलकर बहुत आकर्षण पैदा कर दिया था।

(४)

अन्धेरेमें उसने बहुत हाथ-पैर मारा। जो भी ग्राहक उसके पास आते, सभी अपना अनन्य प्रेम दिखलाते हुये उसपर अपनेको न्यौछावर करते। लेकिन, उसने सैकड़ों मुखोंसे यही बात सुनते-सुनते अब पुरुषोंके प्रति विश्वास खो दिया था। बीमारी एक नही दो मर्तबे आई और फिर उसने दवाई सुननेसे इन्कार कर दिया। अब वह यौन-रोगको निर्बाध रूपसे वितरितकर रही थी, लेकिन तो भी गुडके ऊपर टूटनेवाली मक्खियोंकी तरह पुरुषोंकी कमी नहीं थी। कुछ उसके स्थायी ग्राहक बन गये थे, और कुछ कभी-कभी आते थे। चकले नगरके अन्धेरे कोनेमें होते हैं, और वहाँ बहुत भय भी रहता है, इसलिये ग्राहकोंको लुक-छिपकर ही पहुँचना पड़ता है। पर, मधुपुरीमें रहनेके समय उसका दरबार खुला-सा चलता। पुलिस बहुत दूर नहीं रहती थी, कानून

भी बाधक था, लेकिन जिस तरह उसकी कुटियामें सस्ती शराब बराबर बिकती रहती, उसी तरह सस्ता रूप भी। मधुपुरीमें बड़े-बड़े लोग ही अपनी स्त्रियोंके साथ आते हैं। छोटे-मोटे काम करनेवाले चाहे पहाड़ी हो या देशी, सभी अकेले आते है। रूपीने अपनी कीमत बढा-चढाकर नहीं रक्खी थी, इसलिये भी ग्राहकोंकी कमी नही होती थी। पिछले छ-सात सालोंमें उसे कितनी ही बार कई महीनोंके लिये अपने गाँवमें जाकर रहना पडा, जिसका मतलब यही था, कि बीमारीने उसे व्यवसायके लायक नहीं रक्खा था।

रूपी अब २५ से ऊपरकी हो गई थी। इधर पाकिस्तान बननेके बाद पंजाबसे भागे कितने ही साधारण लोग मधुपुरीमें भी रोजगारके पीछे या सैर करनेके लिये आते थे, जिनमेंसे कुछ उसके स्थायी ग्राहक ही नही बन गये, बल्कि ब्याहका प्रलोभन देने लगे। स्त्रियोंकी जहाँ कमी हो, वहाँ उनका मूल्य बढ जाता है। एक तरुण दर्जी उसके यहाँ बराबर आने-जाने लगा। उसने जब पहले ब्याहका प्रस्ताव किया, तो रूपीने इन्कार तो नही किया, किन्तु वह विश्वास नहीं कर सकी। अब वह ज्यादा उतावली हो उठी थी। बीमारी और उससे भी ज्यादा जवानीके हाथसे निकलनेका भय उसको हमेशा सताया करता था। उस सालकी गर्मियोंमें दर्जी बराबर उसके यहाँ आता रहा और जाडोंमे नीचेके नगरमे ले जानेके लिये तैयार हो गया।

रूपी फिर उन्हीं नगरोंमेसे एकमें गई, जिनके चकलोंमे वह फेरा लगा चुकी थी। दर्जीने बडी खातिरसे रक्खा। उसके घरवाले कुछ मामूली-सा विरोध करते रहे, लेकिन वह जानते थे, कि अपनी जातिकी कन्याको पानेकी हमारे पास हैसियत नही है, इसलिये उन्होंने भी अपनी मूकसहमति दे दी। रूपीकी माँसे जब कोई पूछता, तो वह बडे तपाकके साथ कहती—ससुराल गई है।

जाड़ोंको बिताकर गर्मियोमें वह फिर मधुपुरी लौट आई। दर्जी इस साल नहीं आया, क्योंकि उसकी दूकान नीचे अच्छी चलने लगी और मधुपुरीमें जरूरतसे अधिक दर्जी आकर बैठ गये थे। रूपीको देखनेहीसे मालूम होता था, कि दर्जीने उसको बहुत अच्छी तरहसे रक्खा था। उसके गालोंपर फिर सुर्खी आ गई थी, माँस भी बढ़ गया था, आँखें जो पहले दबी-दबी रहती थीं, वह

अब उभडी और चमकीली हो गई थीं। दर्जीने उसे अच्छे कपडेका सलवार और दुपट्टा बना दिया था। एक सुन्दर ओवरकोट उसके शरीरकी शोभा बढा रहा था। दर्जीने सोचा था, ठंडी जगहकी स्त्री नीचेकी गर्मीको एकाएक बर्दाश्त नहीं कर सकती, इसलिये उसके खर्च-बर्चका इन्तिजाम करके मधुपुरी भेज दिया।

लेकिन, मधुपुरीमें आकर तो उसे अपने उसी परिवारमें रहना था, उसी मधुशालामें उठना-बैठना था, जिसमें उसकी माँ मधुबाला बनकर रहती थी। शराब और रूप दोनोंके ग्राहक वहाँ बराबर आया करते थे। माँ कैसे पसन्द करती कि हाथमें आई लक्ष्मीको लौटाया जाय? रूपीके पहलेके कितने ही घनिष्ठ ग्राहक उसके रूपके नये निखारको देखकर कैसे चुप बैठ सकते थे? वह सोचने लगी, मैंने यहाँ आकर भूल की। लेकिन जब उसे यह बात साफ-साफ समझमें आने लगी, तबतक नीचे लू चलने लगी थी—अखबारोंको पढ़ सकती तो देखती कि वहाँ ११२ और ११५ डिग्रीकी गर्मी है। ऐसी लूमें वहाँ जाकर कोई पहाडी बच नहीं सकता, यह वह जानती थी, तो भी उसने अपने दर्जी पतिको चिट्ठियाँ लिखवाईं कि आकर ले जाओ। पर, वह इस तरहका खतरा मोल लेनेके लिए तैयार नहीं था। रूपी मुश्किलसे एक महीनेतक अपने-को बचा पाई। इसमें भी किसी न किसी बहानेसे कई बार उसको अपनी माँ और सौतेले बापकी झिडकियाँ खानी पड़ीं। सबने मिलकर फिर उसी खड्डमें उसे ढकेल दिया।

गर्मियाँ बीतीं, वर्षा शुरू हो गई। ढाई-तीन महीने आये हो गये थे। पैर भारी है यह देरसे मालूम हुआ। उसकी और उससे भी अधिक उसकी माँकी इच्छा थी, कि दर्जी जल्दी आकर ले जाये। दर्जीकी चिट्ठियाँ बराबर आती थीं और वह अपने प्रेमको प्रदर्शित करनेके लिए कभी-कभी सिनेमाके गानेकी कुछ पाँतियाँ भी उद्धृत कर देता। अचानक एक बार उसने अपनी चिट्ठीमें लिखा—मेरे माँ-बाप तुम्हें लाना पसन्द नहीं करते। रूपीके पैरसे धरती निकल गई। अब क्या किया जाये? माँके सामने वह हमेशा दबती रहती थी, लेकिन अबकी उसने उसे बहुत फटकारा—मैं दलदलसे निकल चुकी थी, तुमने मुझे अपने लोभके लिये फिर गड्ढेमें ढकेला। दर्जीकी इन्कारसूचक चिट्ठी मिली।

उसने जब उसे पढ़वाकर सुना, तो वह अपनेको सभाल न सकी और फूट-फूट कर रोने लगी।

उसकी माँकी मधुशाला यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे एक गुप्त चीज थी, लेकिन अन्तर्जगत्के लोग उसे अच्छी तरह जानते थे। रूपीके 'ससुराल' से लौटकर आनेकी खबर जहाँ पुराने भँवरोंको लगी, वहाँ इनके मँडराने और फूल सूँघने-की गन्ध कुछ ऐसे आदमियोंको भी लग गई, जो दर्जीके परिचित थे। उन्होंने ही चिट्ठीमें सारी बात उसके पास लिख दी थी। यहाँ बैठी-बैठी झूठी-सच्ची सफाई पेश करना भी रूपीके लिये आसान नहीं था। फिर उस सफाईको मानता ही कौन? तो भी उसने गिड़गिड़ाकर एक-पर-एक चिट्ठियाँ लिखीं। दर्जीका दिल नरम हुआ। शायद वह यह भी समझता था, कि यदि यह स्त्री हाथसे गई; तो हमेशाके लिये मैं अनब्याहा ही रह जाऊँगा। एक दिन वह माँकी मधुशालामें पहुँच गया। भीतरसे शंकित होनेपर भी रूपीके मनमें बड़ा संतोष हुआ। उसने किसी बहाने जल्दी चलनेके लिये कहा।

(५)

माँने लड़कीको दर्जीके साथ भेज दिया, और विना पूछे ही आसपासके लोगोंको कहना शुरू किया—मेरी बेटी ससुराल चली गई। उसने उसके पास चिट्ठी भी लिखी, लेकिन महीनों कोई जवाब नहीं आया। एक दिन देखा, कि रूपी फिर उसके घरमें आ गई है। दर्जी उसे वहाँ छोड़ जरा भी न ठहर चला गया। रूपीके चेहरेपर खून नहीं था। मालूम होता था, कई महीनोंसे बुखारमें पड़ी थी, आँखें भीतर धँस गई थीं। दर्जी भलेमानुस था, इसे वह माननेके लिये तैयार थी। उसने जो भी जेवर-कपड़े उसके लिये बनवा दिये थे, उनमेंसे किसीको नहीं लौटाया। वस्तुतः वह माँ-बापसे लड़-झगड़कर उसे अपने पास रखनेके लिये तैयार था। लेकिन, जल्दी ही मालूम हो गया, कि उसके तो पाँच महीनेका गर्भ है। पाँच महीने क्या उससे भी पहलेसे रूपी उसके पास नहीं थी। वह कैसे मान लेता, कि यह गर्भ मेरा है। इतनी कड़वी घूँट पीनेके लिये उसका समाज तैयार नहीं हो सकता था। उसके समाजमें किसी भी कुलसे कन्याको ले लेना वैध था, लेकिन ऐसी अवस्थामें नहीं। तो भी उस

ईमानदार दर्ज़ीने उसका अनिष्ट नहीं करना चाहा। किसी डाक्टरसे मिलकर या किसी दूसरी तरह गर्भ गिरवा दिया। दो-तीन महीनेका होता, तो शायद स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु गर्भ आधी अवधि पूरी कर चुका था, इसलिये जब रूपी मधुपुरी लौटी, तब भी रक्तस्राव हो रहा था।

उसके जीवनमें एक बार उषाकी लाली छिटकी, उसने अपने भावी जीवनके कितने ही सपने देखे। मालूम होता था वह जमीनपर नहीं, आकाशमें किसी देव-विमानमें विचरण कर रही है। यह जीवन उसने वासनाके वशमें होकर स्वीकार नहीं किया था, बल्कि दरिद्रताने उसे वहाँ ढकेल दिया था। कई आशाओं और निराशाओंके बीचमें होकर आखिर उसे एक बार रास्ता मिला था, लेकिन अब वह फिर उसी खड्डमें थी।

शरीरकी ऐसी अवस्थामें मधुपुरीमें रहना बेकार था, इसलिये उसे गाँवमें भेज दिया गया। अबके सारे सीजन—गर्मियों और बरसात दोनों—को उसने गाँवमें बिताया। मधुशालाकी ओर जो दाढ़ी और बेदाढ़ीवाले, टोप और बेटोपवाले दर्जनोंकी संख्यामें लोग हर रोज आया करते, अब उनकी संख्या बहुत कम थी। शामके वक्त कोई-कोई शराब पीनेके लिये आते। मालूम होता था रास्तेपर फिर घास जम आयेगी। जब चलनेवाले पैरोंकी संख्या कम हो तो वैसा होना ही था।

अक्तूबरके महीनेमें फिर रास्ता चालू हो गया। तरह-तरहकी मूर्तियाँ उधर आती-जाती देखी जाने लगीं। बिना कहे भी मालूम हो गया, कि रूपी आ गई है।

अब फिर उसका वही जीवन आरम्भ हो गया है। दर्ज़ीके बनवाये हुए ओवरकोट, और सलवार तथा दुपट्टेको पहनकर कभी-कभी वह बाहर भी जाती देखी जाती है। जो लोग दिलसे चाहते थे, कि इस जीवनसे उसका निस्तार हो और जिन्होंने कुछ दिनों उसके परिवर्तित जीवनको देखकर बहुत खुशी मनाई, उनकी ओर अब देखनेकी भी उसकी हिम्मत नहीं होती। वह अपने आप शर्मसे धरतीमें गड़ जाती है। उसे चलते देखकर मालूम होता है कोई मनुष्य नहीं, बल्कि यन्त्र चल रहा है। उसके मनमें अब क्या आशा हो सकती है? जीवनमें एक ही बार समाजको अनेक बाधाओंको तोड़कर

उसको निकलनेका मौका मिला था, और कितने सालोंके प्रयत्नके बाद। अब क्या फिर कोई उस दर्जी जैसा उसे मिलेगा?

मधुपुरीके लिए यह अकेली रूपी नहीं है। यहाँ और भी कितनी ही रूपिया अपने जीवनको बर्बाद कर चुकी है। जब हम मधुपुरीके मधुर सौन्दर्यकी प्रशंसा करते नहीं थकते, उस समय हमें नहीं ख्याल आता, कि सौन्दर्यको पैदा करनेके लिए कितनोंको नर्ककुण्डमें पड़नेके लिए मजबूर होना पड़ा।

१३. राउत

(१)

भारत कृषिप्रधान देश है। यहाँके बहुत अधिक लोगोंकी जीविका खेतीपर निर्भर हैं। हमारे कोई-कोई प्रदेश इतने घने बसे हुये है, कि वहाँ भूमिका ठीकसे वितरण करनेपर भी पर्याप्त खेत लोगोंको नहीं मिल सकता। देशके जिन भागोंमें आबादी बहुत घनी है, और भूमि उसका बोझ नहीं सम्भाल सकती, वहाँके लोग पेटके लिये देश-विदेशमें जीविका कमाने जाते हैं। पूर्वी उत्तर-प्रदेश, उत्तर-बिहार, उत्तरी भारतमें ऐसे ही भूभाग है। दक्षिणमें तमिलनाडके सामने भी यही समस्या है। अवधीसे मैथिली भाषाक्षेत्रोंके लोग इसी कारण फीजी, गायना, ट्रिनिडाड, मार्शसतक कुली बनकर गये, और अब उनकी सन्तानें वहाँ मानवीय अधिकारोंके लिये संघर्ष कर रही हैं। उनको कुली बनाकर भेजनेवाले अब भी उसी अवस्थामें रखना चाहते है, इसका ताजा उदाहरण ब्रिटिश-गायनामें वहाँके संविधानको ताकपर रख मन्त्रि-मण्डलको तोड़कर चर्चिलकी सरकारने दिया है। कुली भेजना बहुत कुछ उसी तरहका था, जैसे १८ वीं सदीमें अफ्रीकाके लोग फंसाकर गुलाम बनाकर द्वीपान्तरोंमें भेज दिये जाते थे। यद्यपि कुली बनानेवाले एजेन्ट (अरकाटी) सीधे बलप्रयोग नहीं करते थे, लेकिन एक बार जब उनकी झूठी बातोंमें कोई सीधा-सादा ग्रामीण फँस जाता, तो वह जेलखानेका कैदी बन जाता और अंग्रेजोंकी पुलिस उनके इस काममें सहायता देती थी। इसी भूभागके लोग कलकत्ता और बम्बई तक रोजी कमानेके लिये आज भी दौड़ते है। आज यदि दोनों शहरोंमें हिन्दी अधिक बोली जाती है, तो इसके कारण हमारे यही अवधी-भोजपुरी-मैथिली बोलनेवाले मजूर है। यदि मद्रासमें वहाँके सस्ते मजूरोंके साथ होड़ न होती, तो वह वहाँ भी पहुँचे होते। कालेपानी पार रंगून और सिंगापुरमें भी वह भारी संख्यामें पहुँचे हैं।

कलकत्ता और बम्बई दोनों चुम्बककी तरह एक समान इन श्रमजीवियोंको अपनी ओर खींचते हैं, लेकिन उनके गन्तव्यस्थान यही दो नगर नहीं है। कुछ लोग पंजाब तक भी भाग्य-परीक्षाके लिए पहुँचते रहे हैं। यहाँ उसी तरह कलकत्ता और लाहौर जानेवालोंकी सीमारेखा बन जाती थी जैसे दैनिक समाचारपत्रोंके अपने विक्रयक्षेत्र। लाहौर और पंजाबमें मजूरीके लिए जानेवाले लोग प्रायः सभी अवधी भाषाभाषी होते थे, पश्चिमी भोजपुरीके थोड़ेसे मजूर वहाँ पहुँचते थे। अंग्रेजोंने जब पंजाबमें अपनी काली-गोरी छावनियाँ कायम कीं, तो इस बातका ध्यान रक्खा, कि वहाँकी काली पलटन पंजाबकी अपेक्षा पुरबियोंकी ज्यादा हो। पुरबियों और पच्छिमियोंकी सीमारेखा प्राचीनकालसे ही विवादास्पद रही है। कभी अम्बाला जिलेमें बहनेवाली शरावती या सरस्वतीके पूर्वके भारतको प्राची (पूर्व) कहा जाता था। लेकिन, संस्कृत वैयाकरणोंकी इस सीमाको लोगोंने स्वीकार नहीं किया। पंजाबवाले मेरठ जिलेको भी पुरबिया कहते हैं, और मेरठवाले गंगा पार रुहेलखण्डवालों को। रुहेलखण्डवाले अवधी भाषाभाषियोंको, और वह भोजपुरियों को। भोजपुरी भी अपनी सीमा पार कर मिथिलाको पूर्वमें गिनते हैं, और शायद वह भी इस बोझको बर्दाश्त करनेके लिए तैयार नहीं है। तो भी, बहुमत अवधीकी पश्चिमी सीमाको पूर्वकी सीमा मानता है, और इन तीनों भाषाओंके बोलने वालोंको पुरबिया कहता है। यद्यपि मेरठ कमिश्नरीके और जिलोंमें मजूरोंकी कमी नहीं है, लेकिन देहरादून इसका अपवाद है। विशेषकर सिवालिक और हिमालयके बीचकी दून तो अब भी पुरबिये मजूरोंको चाहती है। १८१५ ई०में जब अंग्रेजोंने नैपालसे दूनको छीना, तो इसकी आबादी १०-१५ हजारसे ज्यादा नहीं थी। सारी भूमि बेकार पड़ी थी, जगह-जगह घने जंगल थे, जिनमें हाथी और बाघ घूमा करते थे। मनुष्यके लिये यही भयानक शत्रु नहीं थे, बल्कि इनसे भी भयानक मलेरियाके मच्छर थे, जो आनेवाले आधे लोगोंको साफ करनेके लिये तैयार रहते थे। धीरे-धीरे तब भी मनुष्यने खतरा मोल लेकर यहाँ बसनेका प्रयत्न किया। पहले आनेवाले पड़ोसके सहारनपुर जिलेवाले किसान थे। कुछ संख्या बढ़नेके साथ जब बनियों की अवश्यकता हुई, तो करनाल, रोहतक आदि हरियानाके जिलोंके भी लोग

थोड़ी संख्यामे पहुँचे। लेकिन मजूरोंकी आवश्यकताको वह पूरा नही कर सकते थे, जिसकी भनक सुनकर लाहौरतक धावा मारनेवाले पुरबियोंमेंसे कुछने दूनकी ओर मुँह फेर दिया। आज देहरादूनके समतल भूमिवाले इलाके (दून)के बड़े-बड़े किसान पुरबियोंके बिना अपने कामको नहीं चला सकते।

(२)

राउत पूरबमें बहुत जगहोंपर अहीरको कहते हैं। यह जाति पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहारमें सबसे अधिक संख्यावाली जातिसे तिगुनीसे भी अधिक है। यद्यपि उच्च समाजने उन्हें अछूत नही बनाया, लेकिन अनुकूल स्थान भी नहीं दिया, तो भी इन्होंने आत्माभिमानको कभी भी हाथसे जाने नहीं दिया। लड़ने भिड़ने, वीरता-निर्भीकता दिखानेमें यह सबसे आगे रहे। किसी समय पशुपालन भैंस-गाय पालना और उनका घी-दूध बेचना उनका पेशा था। अब भी कुछ-कुछ इस पेशेको करते हैं, विशेषकर शहरों और कस्बोंके पास रहनेवाले, लेकिन अब उतनी गोचरभूमि नहीं है। जिस तरह जगल कटते गये, उसी तरह पशुओंकी संख्या भी कम होती गई, और उन्होंने भी दूसरी जातियोंकी तरह खेतीको अपनाया। किन्तु, ब्राह्मणोंकी बनाई वर्ण-व्यवस्था केवल प्रणाम और आशीर्वादकी योग्यताका ही निर्णय नहीं करती, बल्कि वह बड़ी जातियों—ब्राह्मण, क्षत्री, लालो (बनियों-कायस्थों)—को धनागमके सभी स्रोतोंको दे देती है। इसलिए अहीर बेचारे छोटे-छोटे किसान या खेतिहर-मजूर छोड़कर और क्या हो सकते थे? हमारे चरितनायक राउत थे। राउत—राजपुत्र कितना बड़ा नाम है। हो सकता है, जब इनमेंसे अधिकांशके पूर्वज शक लोग इस देशमें आये, तो उनका राज्य होनेके कारण उन्हें राउत कहा जाने लगा, जिसे आज भी दोहराया जा रहा है। किन्तु, वह केवल उनके साथ परिहासका नाम है।

राउत २० सालके रहे होंगे, जब कि रोटी ढूँढनेके लिए अपने गाँवसे उन्होंने पश्चिमका रास्ता पकड़ा। शायद उनके गाँव या आसपासका कोई आदमी मलेरियाकी भूमिमें कुदाल चला रहा था। वह भी वहाँ पहुँचे। कितने ही सालोंतक वहाँ मजूरी करते नूनके साथ रोटी खाते रहे। दो-चार बार

मलेरियाकी पकड़में भी आये, लेकिन जीवट था, शरीर अधिक स्वस्थ था, और वह उन लोगोंमें नहीं हो पाये, जिन्होंने इस भूमिमें आकर रोटीकी जगह यमराजका निमन्त्रण पाया। राउत कुछ दिनों बासमतीके खेतोंको अपना खून-पसीना एक करके तैयार करते, और कभी जिलेमें निकलनेवाली नहरोंमें मिट्टी खोदते। दो-तीन साल बाद अपने घर भी हो आते। उस समय रेलका किराया आजकी तरह बढ़ा नहीं था। मजूर रुपये नहीं एक-एक पैसेको बचाना चाहता था, उसे घरकी चिन्ता बनी रहती है। यदि माँ-बाप और भाई-भौजाईको सहायता देनेकी इच्छा न होती, तो भी अपने ब्याह या ब्याहताके वास्ते कुछ जमा करना जरूरी था। इसीलिए राउत हर साल छुट्टियाँ मनाने घर नहीं जा सकते थे। कुछ कमाई करनेके बाद ब्याह होनेमें दिक्कत नहीं हुई। उनकी जातिमें अभी न लड़के बिकते थे न लड़कियाँ और विधवाको लेकर घर बसा लेना भी नीची निगाहसे नहीं देखा जाता था। शायद उनका ब्याह बचपनमें ही हो गया था, यह उनकी पत्नीको देखनेसे मालूम होता है। राउत स्वयं हट्टे-कट्टे है, जिसमें मधुपुरीके जलवायुका भी हाथ है, इसमें शक नहीं। देखनेमें वह ४० से अधिकके नहीं मालूम होते। लेकिन उनकी बीवी जो कदमें अपने पतिसे छोटी नहीं मालूम होती, ६० वर्षकी बुढ़िया मालूम होती हैं। वह सीधी कमर करके चल सकती हैं, और चलती भी हैं, लेकिन जरा भी चढ़ाई चढ़नी हो, तो समकोण त्रिभुजकी दो रेखायें बन जाती हैं। ऊँची होनेसे शायद कभी-कभी कोठरीके दरवाजेसे सिरमें ठोकर लगी हो, उससे सीख ग्रहण कर अब वह दूरसे ही द्विभुज बनकर बढ़ती हैं, और देखनेवालेको हँसी आने लगती है।

मलेरियाकी भूमिमें कुदाल चलाते, बीमारीके साथ संघर्ष करते कई साल बीत गये। राउतके बच्चे भी हो गये। आदमी-आदमीकी बुद्धि और प्रकृति भिन्न होती है। राउतके इलाकेके लोग रोटी कमाने दूर-दूर पहुँचते थे, इसमें उनकी समझदारीका नहीं, बल्कि भूखका अधिक हाथ था। लेकिन, राउत उनसे विलक्षण थे। वह कुछ सोच भी सकते थे, तभी तो मलेरियाकी मार खाते-खाते उन्हें मधुपुरी आनेका विचार पैदा हुआ। मधुपुरी बहुत दूर नहीं थी, और यहाँ मजूरी भी अधिक मिलती थी, यद्यपि काम बारहों महीने नहीं,

बल्कि पॉच-छ महीनेका ही था। शायद यह भी एक कारण था, जो मलेरियामें मरते पुरबिये यहॉ नही पहुँचे, अथवा वह पहाडियोंके मुकाबिलेमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकते थे। राउतने खेतोमें काम करते ही एक सीढी आगे बढकर बगीचेमें काम करना शुरू कर दिया था, जहॉ किसी बॅगलेके कुशल मालीने अपनी कलाका क-ख उन्हे सिखला दिया। मालूम हुआ, मधुपुरीमें मालियोंकी मॉग है। उनके उस्ताद मालीने उन्हे स्वय अपने साथ चलनेके लिये कहा, और वह मधुपुरी चले आये। अपनी वर्तमान स्थितिसे सतुष्ट रहना राउतके स्वभावमें नही था, इसलिये मालीका मजूर बन कर रहना बहुत दिनों तक उन्हे पसन्द नहीं आया। पहले वह अपने उस्तादको छोड़ मधुपुरीके दो सबसे बडे होटलोमेंसे एकके प्रधान मालीके सहायक बन गये। उनके कामसे सभी प्रसन्न थे। दक्ष माली बननेमें कुछ ही वर्ष लगे। होटलके मनेजरको खुश रखना जानते थे, इसलिये कुछ ही सालों बाद वह वहॉके प्रधान माली बन गये।

(३)

माली राउत अपने एक दर्जन मालियोके साथ "होटल चार्म"में अपना काम करते। यदि वह दो प्राणी भर होते, तो आमदनी अपर्याप्त नहीं थी। वेतनके अतिरिक्त होटलमे ठहरनेवाले मेहमान भी गुलदस्तोंके लिये कुछ इनाम दे दिया करते थे। लेकिन, अब उनका परिवार बढ चुका था, लडके-लड़कियॉ सयाने हो रहे थे। इतने खर्चके लिये वह आमदनी काफी नहीं थी। प्रधान माली होनेसे जाडोंमें भी तनखाह कुछ कम करके उन्हे रख लिया जाता था। पर, इतनेसे उनकी अवश्यकताओंकी पूर्ति नही होती थी। राउत सोचने लगे— और कौन-सा काम किया जाये। वह पौधोकी प्रकृतिसे वाकिफ थे और होटलके पासकी जमीनमें कुछ साग-सब्जियॉ पैदा कर भी लिया करते थे। लेकिन, मालीसे एकदम आगे स्वतंत्र सब्जी पैदा करनेवाला बननेकी उनको हिम्मत नही हुई। उन्होंने देखा, नीचेके पासवाले शहरमें जो सब्जी चार आना सेर बिकती है, मधुपुरीमे उसका दाम १२आना है। उन्होंने सब्जीफरोश बननेका निश्चय किया, लेकिन किरायेपर दूकान रखकर नहीं, जिसे उनकी बुद्धिमानी कहा जा सकता है। दूकान स्थावर चीज है, जितने ग्राहक वहॉ पहुँचें, उतनेहीसे दूकानदार फायदा

उठा सकता है। फेरी करनेवालेको न दूकानका महँगा किराया देना पड़ता है, और न अपने ग्राहकोंको सीमित रखनेके लिये मजबूर होना पड़ता। जहाँतक पासका सामान नहीं बिकता, वहाँतक वह बंगलोंकी फेरी लगा सकता है। मधुपुरीमें बंगले बाजारसे बहुत दूर हैं, और जिनके पास काफी नौकर हैं, वही उन्हें भेजकर साग-सब्जी मँगवा सकते हैं। वह यह जानते हैं, कि नौकर जरूर एकका डेढ़ नहीं, तो सवाया जरूर करता है, और आँखकी न देखी वह सब्जी पसंदकी नहीं हो सकती। उस समय जहाँतक दो छोटे-बड़े सीजनोंका सम्बन्ध है मधुपुरीके सभी बंगले आबाद नहीं भरे रहा करते थे। उसके बाद भी बहुतसे लोग यहाँ रहते थे। जाड़ोंमें जरूर ये बँगले खाली हो जाते थे, लेकिन मधुपुरीके तीन बाजारोंमें एक तो बारहों महीना एक-सा रहता और दूसरोंमें भी काफी दूकानदार बने रहते। राउतने पहले ही समझ लिया, कि पैरों और मूँडमें ताकत होनी चाहिये, मेरा सौदा बिके बिना नहीं रहेगा। वह तिहाई दामपर किन्तु अच्छी सब्जी नीचेके शहरमें खरीदते और अपने सिरपर मधुपुरी लाते। धो-धाकर साफ-सुथरी चौड़ी टोकरीमें भरकर वह उसे बेचने निकलते। वह इस बातका ध्यान रखते थे, कि माल अच्छा हो, जिसमें किसीको शिकायत करनेकी गुंजाइश न हो, और साथ ही बाजारसे दो पैसा सस्ता भी हो। ऐसे सब्जी-फरोशसे जो आदमी एक बार सौदा ले ले, वह क्यों न स्थायी ग्राहक बन जाये?

राउतको बहुत दिनोंतक अपने सिरपर उठाकर सब्जीकी फेरी नहीं करनी पड़ी। आमदनी बढ़नेके साथ उन्होंने मजूर रख लिया, जो नीचेसे भी सब्जी लाता और उनके साथ टोकरा उठाये मधुपुरीमें भी घूमता। सिर्फ समतल मार्गपर ही मधुपुरीके बँगले नहीं बने हुए हैं। बहुतसे तो काफी चढ़ाई चढ़कर ऊपर हैं। राउत अपने सिरपर भी टोकरा रखकर वहाँ पहुँचते थे। बेचारे मैदानी श्रमजीवी होनेके कारण चढ़ाईमें परास्त हो जाते, लेकिन धीरे-धीरे उनको आदत पड़ गई थी। अब तो वह खाली हाथ होते। उनका काम केवल तराजू उठाकर तौलना था। राउतसे पहले भी बँगलोंमें फेरी लगानेवाले मौजूद थे, लेकिन वह मांस, फल या अधिक मूल्यवाली दूसरी चीजोंकी ही फेरी करते थे। राउतका यह सौभाग्य कहिए, जो उनके क्षेत्रमें मुकाबिला करनेवाले लोग अभी नहीं थे। लेकिन द्वितीय महायुद्धके छिड़ते-छिड़ते अब वह अकेले

फेरीवाले सब्जीफरोश नहीं रह गये, चढा-ऊपरीमें दाम कम करनेवाले भी मौजूद थे। पर, इससे राउतको डरनेकी जरूरत नही थी, क्योंकि लड़ाईने मधुपुरीको इतना आबाद कर दिया था, जितना उससे पहले वह कभी नहीं हुई थी। अमेरिकन सिपाही जब पूछकर कुलीको एक रुपया मजूरी माँगते देखते, तो पाँच रुपयेका नोट फेंककर कहते—नहीं, तुम्हें इतनी मजूरी चाहिये। बेचारे डालरके देशके थे, जिसको वहाँके लोग हमारे रुपये जैसा समझते, किन्तु वह यहाँ तीन रुपयेसे अधिकका था।

राउतकी साग-सब्जीको खानेवाले अमेरिकन सैनिक नहीं थे। उनका खाना तो होटल और रेस्तोरामें होता था, इसलिये इस बहती गगामे राउत हाथ नहीं धो सकते थे। तो भी, बरसाती मेंढकोंकी तरह मधुपुरीमे जगह-जगह लाज, होटल और रेस्तोराँ कायम हो गये थे, उनमेसे कुछको अपना स्थायी ग्राहक बना लेना मुश्किल नही था। कुछ ही समय बाद देखनेमें आया, कि चीजोंकी महँगीका प्रभाव साग-सब्जीपर भी पडा है, और नीचेके शहरवाले अब उतने ही दामपर सब्जी नहीं देते। राउतका सक्रिय दिमाग फिर कोई उपाय सोचने लगा। उन्होने मधुपुरीके महँगे नौकरको हटाकर अपने गाँवसे सस्ता मजूर बुला लिया। यदि अपना देश होता, तो उनको ही नही, बल्कि उनकी बीबीको भी सिरपर बोझ उठाकर चलनेमें कोई शर्म नही हो सकती थी। यदि वह वैसा कर सकते, तो मजूर रखनेकी जरूरत भी नही थी, उनकी पत्नी यह काम करती। लेकिन, हमारे देशमें शारीरिक परिश्रम शर्मकी बात समझी जाती है। जो बडा और ऊँचे कुलका बनना चाहता है, उसके लिये यह जरूरी है, कि वह अपने हाथसे कोई काम न करे। अगर बाजारसे दो सेर भर भी कोई चीज लानी हो, तो उसके लिये कुली जरूर करे। यदि छोटी-मोटी कोई चीज हाथमें ले चलना ही हो, तो उसे अच्छे कागज या किसी दूसरी चीजमे लपेटकर ऐसा बनाकर हाथमें ले, जिसमें मालूम न हो, कि ढोनेका काम किया जा रहा है। देशसे दूर और विशेषकर मधुपुरीमें रहनेके बाद मालियोंका सरदार होकर सब्जीफरोश बननेवाले राउतको अब इस बातका पूरा ध्यान रहता था, कि कोई उन्हें कुली-मजूर न समझे। वैसे वह मधुपुरीमें मजूर नहीं छोटे-मोटे माली बनकर आये थे, और नीचेके शहरमें रहते ही सफेद कपड़ा पहनने और सभ्यताकी कई और बातें

सीख गये थे। अवधीभाषी तथा किसानोंके सिरमें चिपकी दुपलिया टोपी कभीसे हट चुकी थी, और उसकी जगह गोल दफ्तीदार काली टोपी उनके सिरपर रहती थी। मौसमके अनुसार उनकी दूसरी पोशाक भी बदलती रहती।

राउतमें फजूलखर्ची नहीं थी। इस बातमें उनकी बीबी एक कदम और आगे थी। बेचारीको छोटे-छोटे बच्चोंको पालने-पोसनेके समय तो काफी काम रहता था, किन्तु अब उनके सयाने हो जानेपर वह काम भी नहीं था। राउतने इतने सालोंकी तपस्यासे कुछ रुपये कमाये थे, जिससे उन्होंने अपने गाँवमें काश्तकारीकी कुछ जमीन खरीद ली थी, जिसमें काम करनेके लिये लड़कों-को घर भेज देना पड़ा। रौताइनके लिये रोटी पकाना, चौका-बासन करना काफी नहीं था। वह चाहती थी, कि कोई और भी काम मिले। किसानकी बेटी थी, इसलिये किसानी उन्हें अधिक प्रिय थी। जब पति साग-सब्जीकी फेरी करने जाते, तो घरका काम कर लेनेके बाद समय काटना उनके लिये मुश्किल हो जाता। रौताइन चुप्पी नहीं थी, और आवाज भी ऐसी ठनाकाकी कि दो फर्लांगतक सुनाई देती। बारह वर्ष पहले वह आजकी तरह बहुत दुबली-पतली नहीं रही होंगी, लेकिन इसमें सन्देह है, कि उनके शरीरपर काफी मास रहा हो सभ्यताकी दुनियामें प्रवेश करनेके बाद उनके वेषमें इतना ही परिवर्तन आया कि अब अपने गाँवके घाघरे-चुनरीको छोडकर वह साड़ी पहनने लगी। दुअन्नी भरका सोनेका फूल अब भी उनकी नाकको शोभा बढ़ाता है। चाहे समयसे पहले ही किन्तु अब बुढ़ी हो गई हैं, लेकिन अभी भी उन्हें कभी दिनमें बैठा नहीं देखा जा सकता, उनका शरीर मानो नाचता रहता है। अपने विश्वासके अनुसार करम-धरममें भी बहुत चुस्त है। चाहे बर्फ पड़ गई हो, हाड़ चीरनेवाली सर्दी हो, लेकिन उस समय भी वह दिनमें एक बार और सो भी ठण्डे पानीसे स्नान किये बिना नहीं रहती। यह देखकर भी आदमीको आश्चर्य होता है, कि तापमान जब हिमबिन्दुके नीचे चला जाता है, तब भी उनके शरीरपर वही साड़ी रहती है। सर्दीके भगानेकी कौन-सी विद्या उन्हें मालूम है? रौताइनका इसे दोष कहा जा सकता है, कि वह मित्र बनाना नहीं जानती, लेकिन साथ ही उनके शत्रु भी अधिक नहीं है। और जो शत्रुता कर ले, उसे भगवान् ही बचायें, उनकी जबान सरौतेसे भी तेज चलती है। उन्होंने अपनी भाषाको

बिल्कुल शुद्ध रक्खा है, यद्यपि समझ हिन्दी और पहाड़ी भी लेती हैं, लेकिन मजाल क्या, कि अपनी पूर्वी-अवधीमें एक भी शब्द दूसरा आने दें। राउतमें फर्क आ गया है। अपनी बीबीसे भी वह शुद्ध अवधी नहीं बोलना चाहते, और बाहर तो अवधी-प्रभावित हिन्दी ही उनकी भाषा है। उनके वर्तमान वेषके वह अनुकूल भी है।

(४)

अपनी वर्तमान स्थितिको सतोषजनक न पा राउतने फिर अपने कार्यको बदला। उन्होंने यह देख लिया, कि मेरे वास्ते साग-सब्जी छोड और दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है। दो चार सौ रुपये किसी दूकानमें लगा सकते थे, लेकिन वह भली प्रकार जानते थे, कि बनियोंका-सा धैर्य और साहस मेरे पास नहीं है। वह चलते-फिरते जीवनको पसन्द करते थे, दूकानपर मक्खी मारना उन्हें क्यों पसन्द आने लगा? मधुपुरीमें हरेक बँगलेके साथ नौकरों-चाकरों और घोड़ोंके लिये कितनी ही कोठरियाँ (आउट-हौस) होते हैं, और कभी-कभी तो मालिकों-के कमरोंसे तिगुनी-चौगुनी सख्यामें। किसी समय अंग्रेज जब अपने घोडों और दल-बलके साथ आते थे, तो ये कोठरियाँ उनके लिये अपर्याप्त होती थीं। पर, द्वितीय महायुद्धके प्रतापसे बँगलोंके भर जानेपर भी ये कोठरियाँ आबाद नहीं हो सकी थीं। राउतको अपने रहनेके लिये मुफ्त कोठरी पाना आसान था, खासकर जब कि वह मधुपुरीके सबसे दूरवाले स्थानमे रहनेके लिये तैयार थे। यहाँके बँगलोंमेंसे कुछ अपनी दूरीके कारण महायुद्धके वर्षोंमें भी एकाध ही साल आबाद हो पाये। ऐसे ही एक बँगलेके आउट हौसमें राउत-दम्पती रहने लगे। बँगलेके आसपास कुछ जमीन मानो साग-सब्जीके लिये पहलेसे तैयार रक्खी थी। कभी यहाँ सेब और नाश्पातीके वृक्ष फलते-फूलते थे, लेकिन अंग्रेज मालिकके हाथसे निकलकर जब वह किसी भारतीय राजाके हाथमें आये, तो इन मेवोंके वृक्षोंको सूखते देर न लगी। राउतने बँगलेके आउट-हौसमें रहते खाली जमीनमें साग-सब्जी लगानी शुरू की। रोताइन भी उनके काममें सहायता देतीं। अभी बाहरसे सब्जी मँगाकर फेरी करना बन्द नहीं हुआ था और अपनी पैदा की हुई सब्जी केवल 'अधिकस्याधिकं फलं'के लिए थी। फिर उन्होंने देखा, कि पासके पडे बँगलेमें दो एकड़के करीब सब्जी लायक जमीन

है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि विलासपुरीमें जिन अंग्रेजोंने इन सुन्दर बँगलोंको बनवाया था, उन्होंने इस भूमिको साग-सब्जीके लिये नहीं तैयार किया था, इसमें फल और फूल पैदा होते थे, जो उनके जानेके बाद सूख गये, और जमीन खाली हो गई। बड़े बगलेमें एक और भी सुभीता यह था कि वहाँ एक बड़ा पानीघर था, जिसमें बरसातमें बँगलेका पानी स्वयं भर जाता था। मधुपुरीमें बरसात शुरू होनेसे पहले प्रायः दो महीनेतक जमीन बिल्कुल सूखी हो जाती है, और सिंचाईके बलपर ही साग-सब्जी या फुलवाड़ी कायम रह सकती है। यह सुभीता राउतकी आँखोंसे कैसे बच सकता था? बगलेवाले अब किरायदारोंसे निराश थे, जब राउतने उनकी जमीनको कुछ थोड़ी सी लगानपर लेना चाहा, तो उन्होंने बड़ी खुशीसे दे दिया।

राउतकी उस समयकी योजनायें शेखचिल्लीके सपनोंसे कम नहीं थीं। दो एकड़ अच्छी जमीन और पानी का इतना सुभीता, साथ ही महँगी सब्जीके बेचनेके लिये घरपर ही बाजार। इससे बढ़कर और क्या चाहिये? कुशल माली होनेके कारण वह जानते ही थे, कि अच्छा बीज और अच्छी खाद जादूकी तरह काम करते हैं। मटर सबसे लाभकी चीज थी, क्योंकि मधुपुरीमें साढ़े छ हजार फुटकी ऊँचाईपर सुन्दर स्वादवाली बड़ी-बड़ी मटर मईमें पैदा होती है, जब कि नीचे वह दुर्लभ होती है, इसीलिये उसे डेढ़-दो रुपया सेरपर आसानीसे बेचा जा सकता है। यही समय है, जब मधुपुरी सैलानियोंसे भर जाती है। यदि उनसे ज्यादा हो, तो भी वह अच्छे दामपर नीचेके शहर या दिल्लीमें बिक सकती है। द्वितीय महायुद्धके समयसे बहुत पहले ही मधुपुरीमें मोटरें और लारियाँ आने लगी थीं, और अब तो ठेठ दिल्लीतक अपनी सब्जीको बेचना आसान था। दार्जिलिंगवाले कलकत्तामें अपनी सब्जी बेंचकर मालामाल हो गये, किन्तु मधुपुरी और उसके आसपासके पहाड़ोंके लोग बहुत सुस्त हैं। वह धनागमके ऐसे सुन्दर तरीकेको अपनानेके लिये तैयार नहीं हैं। राउत जानते थे, लेकिन अभी इसकी उन्हें आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उनके पास इतनी मटर ही कहाँ होती थी?

मटरके अतिरिक्त बन्द गोभी, गाजर, शलगम और मूली भी वह पैदा करने लगे। फूलगोभी इतनी ऊँचाईपर बहुत प्रयत्नसे बोई जाये, तब भी दो-

दो तोलेके फूल देती है, इसलिये उसमें कोई फायदा नहीं। गाँठगोभी कुछ और बड़ी होती है, लेकिन राउतको तो वजन देखकर काम करना था; इसलिये वह बन्दागोभी ही लगाते थे। मटरको वह इतना थोड़े-थोड़े समयके फर्कसे बोते, कि मईसे जुलाईतक उन्हें फलियाँ बेचनेको मिलती। पहली बोआई नवम्बरमें ही हो जाती। जाड़ोंमे उनके खेतोंमे कभी-कभी यदि हरियाली दिखाई पड़ती थी, तो सिर्फ मटरकी; बाकी फसलें जाड़ा खतम होनेके बाद मार्चके अन्त या अप्रैलमें बोई जाती।

खेतीका काम बहुत कुछ अपने हाथमें नहीं होता, कितना ही इन्तिजाम होनेपर भी मौसिम सहायक या बाधक होता है। यदि ओले पड़ गये, तो काम खराब हो गया; कीड़े लग गये, तब भी मुश्किल। लेकिन, सबसे बड़ी आफत राउतके लिये साही थी। वह रातके वक्त आकर उनकी खड़ी फसलको खा जाती। आलू उन्होंने एकाध बार बोया, लेकिन साहियोंने चौपट कर दिया। जंगलसे बिल्कुल सटा होनेसे इन जानवरोंके उपद्रवको शान्त नहीं किया जा सकता था। कुत्तोंका भी कोई उपयोग नहीं था। उनके लिये तो बघेरा हर रोज फेरा दिया करता था, साहीको देखकर भूँकनेसे पहले ही वह बघेरेके मुँहमें चले जाते। राउतको मालूम हुआ, कि जंगलसे सटे हुये स्थानमें दो एकड़की बारी जंगलके प्राणियोंके लिये ही पर्याप्त नहीं।

(५)

किसी तरह लड़ाईके समाप्त होनेके एक-दो साल बादतक राउतने इसी तरह गुजारा किया। रौताइनने अपने बचपनके किसानी जीवनको फिर देखकर बहुत सन्तोष अनुभव किया। खेत जोतनेके लिये राउतने दो बैल भी रख लिये। दूधका रोजगार मधुपुरीमें बड़े फायदेका है, और बाजार में मिलनेवाले विशुद्ध दूधका अर्थ है आधा पानी। राउतका यह पैतृक पेशा था, लेकिन उन्होंने दूधकी ओर कभी ध्यान नहीं दिया। अगर चाहते तो स्वयं गाय-भैंसोंको न पाल गाँववालोंसे सस्ता खरीदकर भी दूध बेच सकते थे, जैसे कुछ लोग बेचते भी हैं। एकाध गायें कभी वह रखते थे, तो इसी ख्यालसे कि कुछ घरके लिये दूध मिल जायेगा और बछड़े जोतनेके काम आयेंगे। रौताइन अब

सारे दिन काममें लगी रहती। खेतमें सोहनी-रोपनी करनी थी, तरकारी जमा करना था। पासमें लकड़ी सुलभ होनेपर भी घरके गोबरके वह उपले पाथतीं और इन उपलोंमें बने भोजनको बहुत स्वादिष्ट मानती।

पर, अन्तमें राउतने देख लिया, कि इस खेतीसे काम नहीं चल सकता। लगी पूँजी भी इससे नहीं लौटेगी। राउतको अब सब्जी बेचनेका ही नहीं, बल्कि सब्जी पैदा करनेका भी अच्छा तजर्बा हो गया था। मधुपुरीके जिस छोरपर रहते थे, उसके सभी लोग, बॅंगले और उनकी भूमियाँ परिचित थीं। इस बॅंगलेके पास ही एक काफी लम्बी-चौड़ी समतल जमीन थी। उनकी नजर उसपर गई। विधवा मेम अपने प्रासाद जैसे बँगलेकी मरम्मत भी नहीं कर पाती थी, और यहाँ कोई किरायेदार भी नहीं आता था। राउतको उसने मालगुजारीपर खेतीके लिये बिल्कुल उपयुक्त एक-डेढ़ एकड़ जमीन दे दी। बॅंगलेकी दूसरी तरफ भी उतनी ही समतल जमीन पड़ी थी। बॅंगलेके चारों तरफ फूल और बगीचेके लिये अलग पर्याप्त भूमि थी। जब यह बॅंगला पहलेपहल बना था, उस समय इन भूमियोंका काम सौन्दर्य-वृद्धिके लिये होता था। परती रहनेपर भी मेमने सिर्फ एक ओरके हिस्सेको दिया, और दूसरी ओरकी भूमिपर वर्षामें जब घासका मखमल बिछ जाता, तो उसे देखकर उसकी आँखें तृप्त हो जातीं। इस बँगलेसे कुछ हटकर तीन एकड़से अधिक एक और भी समतल जमीन थी। राउतने उसे भी मालगुजारीपर ले लिया। इस तरहकी भूमि मधुपुरीमें कहीं नहीं है। यहाँ अनेक क्रिकेटके प्रांगण बन सकते हैं, फुटबालके मैदानके तौरपर भी इस्तेमाल हो सकता है। चारों तरफ पहाड़ और बीचमें यह समतल भूमि है। पानी निकलनेका कहीं रास्ता नहीं, लेकिन बड़ीसे बड़ी वर्षा होनेपर भी कुछ ही घंटोंमें पानी न जाने किस रास्ते निकल जाता है। यहाँ अत्यन्त सुन्दर सरोवर बन सकता है, लेकिन तभी, जब कि उन जगहोंको सीमेंटकर दिया जाये, जिनसे पानी बाहर निकलता है।

राउत अब मेमके बॅंगलेके औट-हौसमें चले आये। दो-तीन कोठरियाँ क्या, चाहते तो वह एक दर्जन कोठरियाँ ले सकते थे। मेम गर्मी और बरसातके महीनोंको बितानेके लिये हर साल यहाँ चली आती और चौधरी उसकी बराबर सलामी बजाते रहते। अब उनकी साग-सब्जीको निशिचर जन्तुओंका डर नहीं

था। हाँ, मधुपुरीकी साग-सब्जीके सबसे बड़े शत्रु लाल मुँह और काले मुँहवाले वानर एक बड़ी समस्या थे। राउत और उनमें होड़ लगी रहती, कि फसलको कौन बटोरे। लेकिन, वह दिनमें ही आक्रमण कर सकते थे। राउतने उन्हींके लिये एक बड़ा कुत्ता पाल लिया। बच्चा ही ले आये थे। चाहते तो किसी शुद्ध जातिके बड़े कुत्तेको भी अपने दोस्तोंसे मुफ्त पा जाते, लेकिन उन्हें जातसे नहीं कामसे मतलब था। और न जाने किस ज्योतिषीसे साइत पूछकर इस पिल्लेको लाये थे, कि सचमुच ही उनका टैगर बड़े कामका निकला। मधुपुरीमें यह आम विश्वास किया जाता है, कि कुत्ते केवल अँग्रेजी भाषा ही सीख सकते हैं, इसलिये उनके नाम अँग्रेजीमें ही रक्खे जाते है। टैगर कहना रौताइनके लिये भी कठिन नहीं है। कभी-कभी उनका मेघनाद "टैगर, टैगर" के रूपमें आस-पासके पहाड़ियोंको प्रतिध्वनित करते सुना जा सकता है। पुराने बँगलेकी अपेक्षा नई खेतीमें राउतको अधिक लाभ रहा। यहाँ जमीन भी काफी थी, और उपज भी। दिक्कत यही थी, कि दो सूखे महीनोंके लिये पानीका कोई प्रबन्ध नहीं था। फसल केवल रामभरासे थी। यदि पानी बरस गया, तो मालामाल, और ठीक वक्तपर नहीं बरसा, तो फूलोंसे भरी या कच्ची फलियोंसे लदी मटर आँखोंके सामने ही सूख जाती। पिछले दो सालोंसे राउतको बुरे दिन ही अधिक देखने पड़े; तो भी, वह निराश नहीं है।

राउत अहीर है, गरीब मजूर और किसान-श्रेणीके हैं; लेकिन, वह किसी-का आँख दिखाना बर्दाश्त नहीं कर सकते। मेम टेट इंगलैण्डकी थी, और उस समय हिन्दुस्तानमें एक बड़े हिन्दुस्तानी अफसरकी बीबी बनकर आई थी, जब कि अंग्रेजोंकी यहाँ खूब तपी थी। अंग्रेजी राज्यके चले जानेपर भी मेमके दिमागमें बहुत कम तबदीली हुई थी। वह राउतको भी काला आदमी समझ करके वैसा ही बर्ताव करना चाहती थी। जब राउत इसे बर्दाश्त करनेके लिये तैयार नहीं हुये और रौताइनने भी दोकी चार सुनाई, तो मेम साहबके ऊपर भूत सवार हुआ, कि राउतसे जमीन निकाल ली जाये। लेकिन, राउत जानते थे, जिस भूमिमें मैंने चार-पाँच सालतक अपने हाथोंसे हल चलाया है, उसपर मेरा भी कुछ हक है। वह मुकदमा लड़नेके लिये तैयार हो गये। मधुपुरीके सबसे अच्छे वकीलने उनकी सहायता की। मेम हार गई। फिर

भी आगे बढ़नेके लिये अभी गुंजाइश थी। पर, बेचारी मेम इसी बीच अकस्मात् मर गई।

राउत और रौताइन मधुपुरीमें बीस सालसे अधिकसे रह रहे हैं। उनकी कुछ जमीनपर उनको खेती करनेका स्थायी अधिकार भी मिल गया है। जमीनमें केवल पानीकी आवश्यकता है। आसपासमें हर साल गाँववाले अपनी गाय-भैंसोको लाकर दूधका रोजगार करते है, जहाँसे जितनी चाहे उतनी खाद ले ले, सिर्फ ढोनेकी जरूरत है। बन्दरोंकी समस्या उनके टेगरने हल कर रक्खी है, यद्यपि कभी-कभी उन्हें मौका भी मिल जाता है। मधुपुरीके बँगलोंमें इतनी साग-सब्जी लायक बनाई हुई जमीन मौजूद है, कि यदि पानी और बन्दरोंका इन्तिजाम हो जाये, तो बाहरसे साग-सब्जी मँगानेकी जरूरत नहीं होगी, बल्कि दुर्लभ समयमें यहाँसे काफी सब्जी पाँच-छ घण्टेकी मंजिल मार दिल्ली पहुँच सकती है। लेकिन अभी न इसकी तरफ नगरपालिकाका ध्यान गया, न सरकारी कृषि-विभागका। आसपासके घरोंसे बड़े-बड़े हौजोंमें बरसातका पानी इतना जमा किया जा सकता है, कि राउतको अपनी खेतीके लिये भगवान्‌का भरोसा करनेकी जरूरत नहीं। पर, इतने बड़े हौज बनानेके लिये उनके पास पूँजी कहाँ है? कभी-कभी फसलमें कीड़े लग जाते है, उसका प्रबन्ध करना भी उनके लिये मुश्किल है। दूसरे शहरोंमें डी० डी० टी० छिड़ककर कीड़ोंके मारनेका म्यूनिसिपैलिटियोंने प्रबन्ध किया है, किन्तु यहाँ वह भी नहीं है। ग्यारह वर्षोंसे यहाँका सारा प्रबन्ध नागरिकोंसे छीनकर नौकरशाहीने ले लिया था पर, उसे लोकहित करना नहीं, बल्कि कागज भरना था।

राउत और रौताइन अब मधुपुरीके हैं। यह भूमि उनके पैरोंसे इतनी चिपक गई है, कि अब उन्हे यहीसे महाप्रयाण करना होगा। राउत सोच-समझ रखनेवाले साहसी और उद्योगी पुरुष हैं। लेकिन उन्होंने सारे जीवनके प्रयत्नसे अपने लिये जो प्राप्त किया है, क्या उनकी मजूरी उतनी ही है?

१४. कमलसिंह

(१)

मधुपुरी हिमालयकी विलासपुरियोंकी रानी गढ़वालकी अपनी जैसी दूसरी पुरियाँ जैसी ही है। लेकिन, जान पड़ता है, वह अपने आसपासके भू-भागसे बिल्कुल अलग है, कमसे कम विलासी और विलासिनियाँ तथा उनके उपजीवी यही मानते हैं। अंग्रेजोंने यहाँ अपने बँगले और प्रासाद बनवाये। वह समझते थे, यहाँ दासताका जीवन बितानेके सिवाय स्थानीय दोपायोंका और कोई अधिकार नहीं है। अंग्रेजोंकी स्थावर सम्पत्ति मैदानी लोगोंके हाथमें चली आई। अब वह अपनेको मधुपुरीका स्वामी मानते हैं। स्थानीय लोग तब भी पशुओंकी तरह अपना खून-पसीना एक कर यहाँ जीते रहनेकी कोशिश करते थे, और अब भी उनका वही काम है। इस निकृष्ट जीवनमें भी प्रतिद्वन्द्विता कम नहीं है। स्थानीय मजदूरोंकी संख्याके बराबर ही नेपाली मजदूर भी यहाँ हर साल पहुँच जाते हैं, जो बोझ उठानेमें बाजी मार ले जाते हैं, और वर्षों पहलेसे ही बोझा ढोनेका प्रायः सारा काम उनके हाथमें चला गया है। दूरसे आकर नेपाली भरियों (भारवाहकों) को जो इतनी जद्दोजहद करनी पड़ती है, वह यही बतलाती है, कि उनके यहाँ मधुपुरीके आसपासके गाँवोंसे भी अधिक गरीबी है। हाँ, स्थानीय लोगोंको एक और भी काम मिल जाता है, वह है म्युनिसिपैलिटीकी छोटी-मोटी नौकरिया और मजदूरी। सड़कों और इमारतोंके बनानेका काम भी गढ़वाली मजदूरोंके हाथसे निकल गया था। पाकिस्तान बननेसे पहले लदाखके पासके बालती लोग आकर इस कामको करते थे। मधुपुरी ही क्यों, सारे पश्चिमी और मध्य-हिमालयमें विशेषकर सडकोंके बनानेका काम बालती मजदूरोंके हाथोंमें था। उनका देश भी नेपालसे अधिक गरीब है, और वह लोग भी बडे मेहनती हैं। १०-१२ हजार फुटकी ऊँचाईके रहनेवाले होनेसे वह सरदी ज्यादा बर्दाश्त कर सकते है, और विलासपुरियोंमें इमारती काम सर्दीमें ज्यादा हुआ करते है। अगस्त १९४७में जो खून-खराबी हुई, उसकी पाँच-दस

छींटे मधुपुरीपर पड़ी, पर उस समय प्राण बचा कर भागते जो गये, तो अब तक नहीं लौटे। उनकी भूमि ज्यादातर पाकिस्तानके हाथमें चली गई है। यदि ऐसा न होता, तो मांस-सब्जी बेचनेवाले मुसलमानोंकी तरह वह फिर आकर अपना काम सँभाल लेते।

मधुपुरीके आसपासके गाँववाले लोग हिमालयके अत्यन्त पिछड़े हुये लोगोंमेंसे हैं। वह उतने गरीब नहीं है, जितने कि गढ़वालके और स्थानोंके लोग, जिसका कारण शायद इनमें पाण्डव-विवाहकी प्रथा भी है। इसलिये वह कुली-गिरी करनेके लिये यहाँ अक्सर नहीं आते। बहुत हुआ तो कोठियोंमें चौकीदार हो गये, या कुछ हल्के छोटे-मोटे काम पकड़ लिये। अधिकतर उनका काम दूध और घी पहुँचाना है। मधुपुरीवालोंको दूधके नामपर आधा पानी और घीके नामपर तीन-चौथाई डालडा मिलता है। सूरत देखकर इस दूध घीसे लोग भले ही सन्तोष कर लें। इतने पिछड़े हुये लोग भी पानी ही नहीं, डालडा के भी गुणको जान गये, यह बतलाता है, कि जीवनका संघर्ष आदमीको कहाँसे कहाँ पहुँचा देता है। मजूरोंकी कुछ अधिक स्थायी और अधिक पैसेवाली नौकरियाँ आसपासके लोगोंके भोलेपनके कारण उन्हें नहीं मिलतीं, और गढ़वालके दूरके आदमी उनपर जम गये हैं। किसी वक्त भी शराबमें बुत हो जानेवाले आसपासके देहातियोंपर जवाबदेहीके कामका सौंपना आसान नहीं था, यह भी इस स्थितिका कारण हुआ।

केदार-बदरीके यात्री जानते है, कि रास्तेके पहाड़ोंके जंगलोंका सहारकर किस तरह सिढ़ियोंवाले खेत बना दिये गये है, या चटियल बना दिया गया है। जनसंख्याके तेजीसे बढ़नेके कारण ऐसा करना पड़ा। उसपर भी जीविका न चलनेपर गढ़वाल-पुत्र जहाँ भी दो रोटी मिले, वहाँ जानेके लिये तैयार हो गये। कमलसिंह ऐसा ही एक तरुण था, जो आजसे बीस वर्ष पहले भाग्य-परीक्षाके लिये मधुपुरी आया। उसने कुछ समय तक मामूली मजूरी की, लोगोंके भाँडे-बरतन मले। लेकिन, तरुण समझदार था। उसे कोई अच्छा परिचित भी मिल गया, इसलिये म्युनिसिपैलिटीकी बारहों महीनेकी मजूरी मिल गई। पहलेकी मजूरीमें वह अच्छे पैसे कमाता था, लेकिन वह कुछ महीनोंकी थी, और रोज-रोज काम मिल जाये, यह निश्चित नहीं था; इसलिये कमलने

म्युनिसिपैलिटीकी मजूरी स्वीकार की, इसमें मेहनत भी ज्यादा नहीं थी। वह किसी बिजली-मिस्त्रीका मजूर था। कई साल रहते रहते उसे बिजलीके तारोंकी कुछ बातें मालूम हो गईं। आखिर उसके बारीक काम तो उसे करने नहीं थे। बिजलीके स्विचको बन्दकर देना, फिर तारमें जो भी जोड़ना-घटाना हो, उसको कर देना। देखते-देखते अपने उस्ताद जितना ज्ञान उसे भी हो गया, लेकिन, काम मिलना उतना आसान नहीं था। एक कामके लिये जब पचासों दाँत बाये खड़े हों, तो बेचारे कमलको वह कैसे मिल सकता था? उसे २० रुपया वेतन मिलता था, पर द्वितीय महायुद्धसे पहलेका २० रुपया आजके ८० रुपयेके बराबर है। कमलको पहले अपनी तनख्वामेंसे बचा-बचाकर बाप-माँको भेजना पड़ता। बिना पैसे वह कुँवारा ही रह जाता, इसका भी उसे ख्याल था, लेकिन जब हर महीने ५-६ रुपये माँ-बापके पास पहुँच जाते, तो उन्हें भी इसकी चिन्ता थी—कहीं ऐसा न हो, कमलकी वहाँ किसीसे आँख लड़ जाये और वह हाथसे बेहाथ हो जाये। अभी लड़कियाँ उतनी महँगी नहीं थी, सिर्फ सौ-सवा-सौकी बात थी। कुछ वर्षोंमें रुपये कमा लेनेपर कमलका ब्याह भी हो गया। लेकिन, अल्लहड़ तरुणीको किसी विलासपुरीमें ले जाना खतरेसे खाली नहीं, यह समझकर कमल उसे अपने पास नहीं लाया।

कमलकी तनखाह २० रुपये ही कई साल तक रही, फिर उसे गुर मालूम हुआ, और उसने एक महीनेकी तनखाह ऊपरके अफसरको देकर वाजिब पाँच रुपयेकी वृद्धि करवाई। अब वह महीनेमें २५ रुपये पाता था। मधुपुरीमें गरीबोंके लिये मकान मुफ्त भी मिल जाते हैं। हरेक बँगलेके साथ जब पाँचसे बीस तक नौकरों-चाकरोंकी कोठरियाँ हों, जो किसी समय साहेब लोगोंके घोड़ों और नौकरों-चाकरोंसे भले ही भर जाती हों, किन्तु प्रथम विश्वयुद्धसे वह अब अधिकतर खाली रहती थीं। ऐसी किसी कोठरीको दे देनेपर मालिकको हानि नहीं, बल्कि फायदा था। आदमी रहेगा, तो उसकी मरम्मत और देखभाल करता रहेगा। चौकीदार रखनेपर जितना वेतन देना पड़ता, उससे तिहाई-चौथाईमें अब मालिकका काम चल सकता था। हाँ, ऐसा करनेपर आदमीको मधुपुरीके केन्द्रसे बहुत दूर रहनेके लिये तैयार होना पड़ता। कमल अकेला था, उसके हाथ-पैर मजबूत थे। दिनमें दस मीलकी दौड़ भी उसके लिये कुछ नहीं

थी। वह किसी कोठीका आनरेरी चौकीदार बन गया। अभी तक वह अपने किसी जोड़ीदारके साथ रहता और कई आदमी मिलकर अपनी रोटी-पानी करते थे। ईंधनका खर्च था, लेकिन उसपर पैसा लगानेकी आवश्यकता नहीं थी। सभी जोड़ीदार कामसे लौटते समय जंगलसे सूखी कुछ लकड़ियाँ जरूर लेते आते। मधुपुरी जंगलमें मंगल करनेवाली नगरी है। रास्तेसे थोड़ा ही ऊपर या नीचे जानेपर पतली सूखी लकड़ियाँ मिलना मुश्किल नहीं है। दूरकी कोठियोंमें तो अक्सर बहुत दरख्त होते हैं, और किसी-किसीमें अपने कुछ जंगल भी हैं। इसलिये कमलको ईंधनकी दिक्कत नहीं थी। किरायेपर चढ़नेवाली कोठी होनेसे उसका नल भी बारहो महीने खुला रहता था, और सम्पत्ति टैक्सके लिये महीनेमें जितना मुफ्त पानी नगरपालिकासे मिलता, उतना कमलके लिये जरूरतसे ज्यादा था।

(२)

कमलने साल भर इस कोठीमें बिताये और अधिकतर अकेले। इस वक्त उसे ख्याल आने लगा, यदि बीबी साथ होती, तो पकी-पकाई रोटियाँ मिल जातीं, वह लकड़ी भी तोड़ लाती और घरकी रखवाली भी करती। उसके अपने घरमें बहुत चीजें ही कहाँ थीं, लेकिन जो भी थीं, वह उसकी दो महीनेकी तनखाहकी तो जरूर रही होंगी। फिर जिस कोठीका वह चौकीदार बना था, उसीमें कहीं कुछ हो जाये, तो जिम्मेवारी तो उसीकी थी—अभी द्वितीय महायुद्धसे पहले मधुपुरीमें चोरियाँ कभी नहीं सुनी गई थीं। इसी समय कमलको दूसरे नम्बरके लाइनमैनका काम मिल गया, अर्थात् उसे बिजलीके तारोंकी देखभाल तथा उसके जोड़ने-जाड़नेकी जिम्मेवारी लेनेके योग्य समझा गया। तनखाह उतनी ही रही, लेकिन अब उसके बढ़नेकी सम्भावना थी। अब उसको म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे बना रहनेका क्वार्टर भी मिल गया। नये आदमीको शहरके बीचमें रहनेका स्थान कौन देता? उसे जो क्वार्टर मिला था, वह नगरपालिकाके आफिससे—जहाँ उसे रोज कामके लिये जाना पड़ता—ढाई मीलपर था। वस्तुतः यह क्वार्टर पहले बिजलीकी छोटी चौकीके लिये बनाया गया था। वहाँ तारोंके लगानेके लिये दीवारोंमें गोखे आदिका इस्ति-

जाम था। इसके दो फर्लांगपर ही दूसरी बिजली-चौकी थी, इसलिये इसे अनावश्यक समझा गया। सम्भव है, उस समय अंग्रेजोंकी नगरपालिकाका खयाल हो, कि मधुपुरी अभी और दूरतक फैलेगी, इसलिये उन्होंने यहाँपर यह बिजली-चौकी बनाई। अब मकान खाली था। कमलने कितने ही दिनोंसे खाली उस मकानको आकर सँभाल लिया। यह ठीक म्युनिसिपैलिटीकी सीमा-पर था, जिस कोठीकी जमीनमें यह बना था, वह मधुपुरीकी इस दिशामें आखिरी कोठी थी। यहाँ आते ही उसका सबसे ज्यादा खयाल बीबीको लाने-की ओर गया। पाँच मील रोजकी यात्रा तो आफिस जाने तकके लिये ही करनी पड़ती, यदि काम कहीं और दूर हुआ, तो वह आठ-दस मीलकी भी हो सकती थी। अकेले रहनेसे रोटी बनानेका भी काम अपने जिम्मे था, जिससे कमल आधी रातसे पहले पलक नहीं मार सकता था।

पिता-माता मर गये थे। भाई-भाभीका सम्बन्ध उतना मधुर नहीं था। सास-ससुर भी आपत्ति नहीं कर सकते थे, क्योंकि कमलकी बीवी अब काफी सयानी थी, और वह अल्लहड़ तरुणीकी जगह अब माता बनने योग्या थी। इसलिये कई सालोंकी इच्छा पूरी होनेमें कोई दिक्कत नहीं हुई, और अबकी जाड़ोंमें एक महीनेकी छुट्टीपर जाकर वह अपनी बीबीको साथ ले आया। पहले घर उसे बिल्कुल सुनसान एकान्तसा मालूम होता था। घरमें घरौंदोंकी-सी दो छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं, फ्लशके साथ एक टट्टी थी, बिजली-पानी मुफ्त मिलता था, हाँ, एक निश्चित परिमाणमें ही। जब अपनी बीबीको लेकर कमल इस घरमें आया, तो वह उसे दूसरा ही मालूम हुआ। यदि संस्कृतकी सूक्ति उसे मालूम होती, तो कहता—"न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते"। घरौंदे जैसी इन कोठरियोंको भी आलसवस हफ्तेमें वह एक बार भी साफ नहीं करता था। स्त्रीने आते ही झाड़ू लगाकर सबको साफ किया और पासके पड़ोसीसे गोबर माँगकर लीप भी दिया। बरतन अब चमचम कर रहे थे, जब कि कमल अपने तवे-थालीको शिष्टा-चारके लिये ही धो दिया करता था। कोठरीके भीतर ही नहीं, बल्कि आसपास में भी सफाई और व्यवस्था दीखने लगी। स्त्री २२-२३ वर्षकी थी। छोटी भी होती, तो भी आदमी सिरपर पड़नेपर होशियार हो जाता है। उसने माँ-बापके

घर रहते ब्याह होनेके बहुत बाद तक जंगलमें जाकर अपने पशुओंको चराया था, दूसरी तरुणियोंके साथ मिलकर मुक्त गीत गाये थे, पहाड़ और जंगल उसे अपने शरीर जैसे परिचित और प्रिय मालूम होते थे। यदि कमल मधुपुरीकी जगह नीचे मैदानके किसी शहरमें काम करता होता, तो निश्चय ही उसकी बीबीको वह पसन्द न आता। उसका गाँव दो-ढाई हजार फुटसे ऊपर नहीं था, इसलिये वहाँ गर्मी अधिक होती थी। साढे छ हजार फुट ऊँची मधुपुरीमें गर्मीका नाम नहीं था। नये क्वार्टरके आसपास अधिकतर घना जंगल था, दो चार कोठियाँ जो थीं, वह भी जंगलमें खोई-खोई सी मालूम होती थी।

क्वार्टरके आसपास कुछ खाली जमीन तारोंसे घिरी हुई थी। बहुत जल्दी ही पत्नीके सुझावपर कमलने उसे खोद दिया। सीजनके समय जब आसपासके गाँवोंके सैकड़ों परिवार अपनी भैंसों और गायोंको लेकर दूध बेचनेके लिये मधुपुरीके आसपास डेरा डाल देते हों, तो खादकी क्या कमी थी? कमलके क्वार्टरकी बगलवाली दो-तीन कोठियोंमें हर साल पाँच-छ महीनेके लिये भैंसें आ जाती थीं। बीबी भी किसानकी बेटी थी। पहाड़में हल चलाना छोड किसानीका सारा काम स्त्रियाँ करती हैं, बल्कि कह सकते हैं, कि उनके सामने पुरुष पूरा निठल्ला होता है—कमल ऐसा नहीं था। उसकी बीबी किसानीके सारे कामोंमें निपुण थी। दो-दो गजकी क्यारियोंमें हल चलानेकी जरूरत नहीं थी। कौवेकी चोंच जैसी पहाड़ी कुदाल खोदनेके लिये पर्याप्त थी। यहीं बच्चा हुआ, और बच्चेको धूपमें सुला, घरका चौका-बासन करके बीबी कुदाल लेकर पड़ जाती। मधुपुरीकी जमीनमें मिट्टीसे पत्थर ज्यादा है, और कितनी ही जगहोंपर फूल लगानेके लिये मिट्टी ढोकर मँगानी पड़ती है। स्त्रीने अपनी क्यारियोंमें मिट्टी ही नहीं डाल दी, बल्कि छान-बीनकर सारे रोड़े-पत्थर वहाँसे निकाल दिये। क्यारियाँ मैदानी नगरोंके आसपास रहनेवाले कोइरी-मुराव लोगोंके खेतों जैसी नरम हो गईं। पानी नगरपालिकासे नाप-तोलकर मिलता था। वह घरके नलके पानीको इस्तेमाल करके पैसा देनेकी क्षमता नहीं रखता था। कमलके सौभाग्यसे सौ कदमपर ही और बिना अधिक चढ़ाई-उतराईके सार्वजनिक नलका लगा हुआ था, जहाँसे टीनमें पानी भर-भरकर वह अपनी क्यारीको सींचते।

बीबीको कमल जब ले आया, उस समय अभी जाड़ेके सबसे कठोर

दो महीने बाकी थे। लेकिन, वह भी बीत गये। मार्चके समाप्त होते होते अब उसे साग-सब्जी लगानेकी फिकर पड़ी। आनरेरी चौकीदारी करते समय सब्जी और फूल लगानेका काम वह कुछ सीख गया था। बीबी गेहूँ, चावल और मक्कीकी खेती जानती थी। साग-सब्जीमें केवल आलू और पेड़ या छतपर चढ़नेवाले कद्दू, लौकी जैसोंसे ही वह परिचित थी। कमलने अपने परिचितोंसे पौध माँगकर एक क्यारीमें प्याज लगा दी, दूसरीमें टमाटर, तीसरीमें मूली बो दी और चौथीमें बदगोभी या कोई दूसरी और सब्जी। पत्नीके आग्रहपर उसे आधे खेतमें गेहूँ बोना पड़ा। इसमें न उतना लाभ था, न सदा सफलता ही मिलती थी, तो भी बीवीका मन रखनेके लिये उसे बराबर कुछ जगहमें गेहूँ और मक्की बोनी ही पड़ती थी। तारसे घिरी हुई जगहके बाहर उसी कोठीकी जमीन थी, जिससे इतनी भूमि लेकर म्युनिसिपलिटीने बिजली-चौकी बनाई थी। उसमें मेहनत करनेपर और भी खेत बनाया जा सकता था, और कोठीवालोंके लिये वह जमीन बेकार थी। दोनों पति-पत्नीने मिलकर तारके बाहर पहलेकी क्यारियोंसे कुछ और अधिक जमीनको खेतमें परिणत कर दिया। सवाल केवल मेहनतका था, पत्नी बराबर उसमें लगी रहती, और पति इतवारके दिन तथा छुट्टीके समय दूसरे दिनोंमें भी सहायता करता। कमलको अक्सर घरसे ८ बजे सबेरे जानेपर शामको सूर्यास्तके समय ही घर आनेकी छुट्टी मिलती।

अब कमलको पत्नीके साथ रहनेके कारण सूनापन तथा रोटी-पानीकी चिन्तासे ही मुक्त होनेका अवसर नहीं मिला था, बल्कि उसकी अपनी क्यारियोंमें इतनी साग-सब्जी हो जाती, जिससे घरके लिये खरीदनेकी अवश्यकता नहीं पड़ती, और उसमेंसे आधा वह बेच भी सकता था। दाल मोल लेकर बनानेकी जगह वह अधिकतर साग-सब्जी खाते। गेहूँ कभी-कभी होता, जो तीन-चार हफ्तेसे अधिक चल नहीं सकता था।

(३)

कमलका इसे सौभाग्य कहना चाहिये या दुर्भाग्य, कि उसकी पत्नीने यद्यपि पहली सतान पैदा करनेमें बहुत देर की थी—२२-२३ वर्षकी उमरतक पहली सन्तानके लिये प्रतीक्षा करना बहुतसी सासुओंके लिये असह्य होता है।

उन्हे शंका होने लगती है, कि शायद बहू बॉझ रहकर घरको निपूता करनेके लिये आई है। लेकिन, कमलके घरमें पहले लडकेके आनेमे ही देर हुई। फिर बड़े लडकेके बाद जरूर उसकी बहनके आगमनमें तीन सालकी देरी हुई थी। बादमें तो हर साल प्रायः नया मुँह उसके घरमें आने लगा। इस तीन सालकी फुर्सतमें कमल और उसकी बीबीने मिलकर अपनी कुटियाको स्वच्छ और सुन्दर ही नहीं बना दिया, बल्कि उससे उन्हे आमदनी भी होने लगी। लडकेका नाम उन्होंने नेम रक्खा और पर्वतमे पैदा हुई लडकीका नाम सारो (सरस्वती) होना बिल्कुल ठीक था। लडके माँ-बापके ऊपर खर्चका बोझ बढाते है। अमीरोंके यहाँ तो वह खर्च एक सयाने पुरुषसे कम नहीं होता, लेकिन कमलके जैसे गरीब परिवारमे वह बात नही है। उन्हे माँका दूध पूरा मिलता है। यदि कम भी हो, तो उसकी पर्वाह नही की जाती। माँकी गुदड़ी उनके लपेटनेके लिये पर्याप्त होती है, और माँकी चारपाई सोनेके लिये। धूप हुई, तो बाहर लिटा दिया। आँखोपर धूप पडनेसे आँख खराब हो जायेगी, इसे गरीब माता अमीरोंका चोंचला मानती हैं। अमीर मातायें निश्चित काले शिशुओंको भी दूधसे नहलाकर या दूधमें साने आटेका उबटन करके गोरा बनानेका प्रयत्न करती हैं। और यहाँ तो सरसोंका उबटन भी कभी ही कभी मुयस्सर होता है। ललाट और देहके बालके लिये अमीर मातायें बहुत चिन्तित रहती हैं, और जैतूनका तेल और दूसरी कोमल चीजें बहुत हल्के हाथोंसे लगा-कर उसे हटानेकी कोशिश करती हैं; जब कि नेमकी माँ रोज चूल्हेकी राख ले कुछ कडे हाथोंसे रगड़ देती और तीन महीना बीतते-बीतते बच्चेके सारे रोम निकल जाते। एक दिन नेमकी माँने जब अपनी पडोसिन महिलासे इस गुरको बतलाया, तो उनका हृदय काँप उठा।

घरमें एक और नये मुँहके आनेके साथ तब भी खर्च बढ़े बिना कैसे रह सकता था? नेमकी मांने अपने पतिको एक बकरीका बच्चा लानेके लिये कहा। लड़ाई खतम हो चुकी थी, लेकिन उसने सभी चीजोंके भावको चौगुना कर दिया था। कमलकी तनखाह ३२ रुपये थी, १० रुपया महँगाई भत्ता मिलता था। लेकिन, इस ४२ रुपयेका असली दाम लड़ाईसे पहलेके १४ रुपयेके बरा-बर ही था। एक छोटी-सी बकरीके लिये कमलको आधी तनखाह देनी पड़ी।

बकरी गाभिन थी। आते ही पहली ही बार उसने दो बच्चे जने, जो कि अन-होनी-सी बात थी। छ महीने बाद उसी साल बकरेको बेचकर उन्होंने बकरीका दाम सधा लिया। नेमको भी एक खिलौना मिल गया था।

मधुपुरीके तीनों बाजारोको छोडकर बाकीको मुहल्ला कहना गलत है, क्योंकि वहाँ जगलमे दूर-दूरपर बनी हुई कोठियाँ है। उसके इस अचलमे पाँच वर्षतक पहुँचते-पहुँचते ही नेमकी धाक जम गई। पिट जानेकी उसे पर्वाह नही थी, पर अपनेसे दूनी उमरके लडकेपर हाथ छोड देना उसके लिये मामूली बात थी। हाथसे बढकर वह पत्थरसे मारता था, जिससे कई लडकोके सिर फूट गये थे, इसलिये वह उससे भय खाते थे। आसपासके बँगलेवालोसे तो छ वर्षके नेमने टैक्स वसूल करना शुरू कर दिया था। यदि उसको कुछ खाने-पीनेकी चीज दो, तो फूल सुरक्षित थे, नही तो खिड़कियोंके सीसे भी बचने मुश्किल थे। कमल और उसकी बीबी नेमको कितना ही मारती, लेकिन उसपर इसका कोई असर नही होता। घरमे बकरीका रखना नेमको उपद्रवसे रोकनेका भी साधन था और साथ ही आमदनीका भी। उन्हे जगलकी महिमा अब मालूम होती थी। मधुपुरीके छोरपर यहाँ छोटी-छोटी दातुनोको जमा करनेकी जरूरत नहीं थी। बस मेहनत करनेकी देर थी, जगलसे मोटी-मोटी डालियाँ काटकर जमा कर लो, और चाहो तो उसमेसे कुछ बेच भी लो। कमलको बेचने भरकी लकड़ी काटनेकी बहुत कम फुर्सत थी, लेकिन जाड़ोमे घर गरम रखनेके लिये उसके पास काफी लकडी रहती, ईंधनकी तो बात ही क्या? तीन-चार बकरियों और उनके बच्चोंको लेकर नेमको जंगलमे भेज दिया जाता, जहाँ वह अपने दूसरे चरवाहोके साथ खेलनेमें लगा रहता। जब वह कुछ और बडा हुआ, तो कमलने हल्के दामकी एक बछिया भी खरीद ली। तीन-चार बकरियाँ हर साल बिक जातीं, जिससे सौ रुपयेके करीब आमदनी हो जाती। बकरीका दूध पीना कमलने कभी नहीं देखा था, नीचेके आये बाबूने बतलाया, कि बच्चोंके लिये बकरीका दूध बडा लाभदायक है। पर नेमकी माँको विश्वास नही हुआ। वह समझती थी, शायद इसका दूध पीना अनिष्टका कारण है, तभी तो हमारे लोग इसे अपेय मानते हैं। उसको उसकी जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि बच्चोंके पिलानेके लिये उसका अपना दूध काफी था। अखिर तक

बकरीके दूधको कमल और उसकी बीबीने इस्तेमाल नहीं किया। बछिया बड़ी हुई, गाभिन होकर उसने बच्चा जना। इस दूधको लेनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। पर, पहाड़की गाय दूध ही कितना देती है? एक शाम सेर भर हो जाये, तो इसे बहुत समझो। घास-चारेके लिये उन्हें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं थी, दिनमें गाय और बकरियोंको कभी माँ और कभी बेटा चराते, जो पेट भरनेके लिये काफी था। जाड़ोंमें घास सूख जाती और दुर्लभ भी होती, उसके लिये कमल अपने हातेके पेडपर बरसातमें ही सुखाकर काफी घास टाँग देता। उसकी गायपर ऋतुका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह वैसी ही मोटी-ताजी रहती।

सारोके बाद अब हर साल नये मुँह घरमें आने लगे। तीसरी लड़की हुई, चौथी भी लड़की। एक लड़का मौजूद ही था, लेकिन माँ-बापको उतनेसे सन्तोष नहीं था। यद्यपि लड़कीके लिये तिलक-दहेजके मारे उजड़नेका डर नहीं था, तो भी लड़केके प्रति पक्षपात हमारे देशमें आम बात है।

(४)

पाँच बच्चे और दो माँ-बाप सात परिवारोंका बोझा और कमलको महँगाई भत्ता मिलाकर केवल ५९ रुपये मिलते थे अर्थात् लड़ाईके पहलेके १५ रुपये, जब कि नौकरी शुरू करते समय उसे २० रुपये मिलते थे। किसी भी अर्थशास्त्री या मध्यमवित्तवाले पुरुषोंके लिये यह सोचना सिर दर्दका कारण हो सकता है, कि ५९ रुपयोंमें सात प्राणियोंका परिवार कैसे जीता है। लेकिन इसका उत्तर बहुत सीधा-सादा है, यदि मानवके जीवनको बिताना न हो, लड़कोंको सालके अधिक समय नंगा रहनेके लिये छोड़ दिया जाये, और जाड़ोंमें चीथड़ोंको सी कर या मुफ्त मिली लकड़ीकी आग तापकर दिन काटना हो, चीथड़ोंको किसीसे माँग-जाँचकर भी जमा कर लिया जावे, बीमारी ही नहीं, भूखके लिये भी भाग्यपर भरोसा करना हो; तो प्रश्न बिल्कुल आसान हो जाता है। कमलके परिवारका जीवन बहुत कुछ ऐसा ही था। यदि पास-पड़ोसकी कोठियोंमें रहनेवाले बाबू लोग हर साल आया करते, तो बीबी इतने बच्चोंके रहते भी काम करके कुछ पैसे और उससे भी अधिक उपयोगी पुरानी साड़ियाँ या कपड़े पा जाती;

लेकिन, युद्धकी समाप्ति विशेषकर पाकिस्तानके बननेके बादसे तो मधुपुरीकी दूर-दूरकी कोठियाँ हमेशाके लिये सूनी हो गईं, इसलिये नेमकी माँको इस तरह कुछ और पैदा कमानेकी सम्भावना नहीं थी।

उनका जीवन मनुष्य-जीवन नहीं था, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु कमल और उसकी बीबी दूसरे परिवारोंको भी जानती थी, जो उनसे भी अधिक दुःखी थे। आदमीको अपनेसे नीचेके स्तरको देखकर सन्तोष होता है, और ऊपरके स्तरको देखकर असन्तोष या ईर्ष्या। जीवन किसी तरह गुजर रहा था। ५९ रुपयेका मूल्य बहुत कम था। सभी सातों व्यक्तियोंके लिये राशनकार्ड था, किसीका आधा किसीका पूरा। तनख्वाहका दो-तिहाई उसीमें चला जाता था। बाकी २० रुपयेमें कपड़ा-लत्ता और घरका सारा काम नहीं चल सकता था। १५-१६ रुपये बकरियों, गाय और साग-सब्जीसे मिल जाते, जो भारी अवलम्ब थे। जिन दो कोठरियोंमें आकर पहले कमल रहने लगा था, अब उनमें एककी और वृद्धि हो गई। कहींसे माँग-जाँचकर पुराने टिन ला उसने एक ओसारा खड़ा कर दिया, जिसमें रसोई बना करती थी। दो कोठरियोंमेंसे एक कोठरीमें सारा परिवार रहता और एकको उन्होंने गाय और बकरियोंके लिये रख छोड़ा था। इस अंचलमें रोज ही रातको बघेरा फेरा दिया करता है, इसलिये झोपड़ीमें न रखनेपर पशुओंकी खैरियत नहीं थी। बारहो महीने कोई-न-कोई साग-सब्जी क्यारियोंमें लगी रहती। बचा पानेका सवाल ही नहीं था, जो भी पैसा आता, उसीमें अगर गुजारा हो जाता, तो बहुत था। नेम अब स्कूल जाने लगा था। मधुपुरीमें शिक्षा अनिवार्य थी और वैसे भी अनपढ़ कमल विद्याके मूल्यको जानता था। यदि दो अक्षर जानता होता, तो वह अबतक प्रथम श्रेणीका लाइनमैन जरूर हो गया होता। लड़केको वह चीथड़ोंमें नहीं भेज सकता था, इसलिये उसने कबाड़िये या कहींसे सबसे सस्ता जाँघिया और कुर्ता लाकर बच्चेको पहना दिया। उसी तरहकी एक टोपी नेमके सिरपर थी। नेम जैसे बच्चोंके लिये जूता शौकीनीकी चीज है। चाहे बर्फ पड़ी हो या तापमान हिमबिन्दुसे नीचे चला गया हो, उसे पैर ढाँकनेकी जरूरत नहीं थी।

(५)

दूसरा सीजन भी समाप्त हो रहा था और बहुतसे सैलानी मधुपुरी छोड़-

कर चले गये थे। अक्तूबरका अन्त होनेवाला था। सर्दी अभी मामूली ही थी। कमलके पेटमें दर्द होने लगा। वैसे रोज ही शाम सवेरे कमलसे भेंट हो जाती, लेकिन तीन दिन उसे न देखकर पड़ोसीने पूछा। मालूम हुआ वह बीमार है, और बहुत बीमार है। पेटमें मीठा-मीठा दर्द और जरा-जरा बुखार आया। उसकी उसने पर्वाह नहीं की। तीसरे दिन वह कुछ समय बेहोश भी रहा। उसे डांडीपर बैठाकर अस्पताल भेजा गया। डाक्टरने कहा निमोनिया है और बहुत खतरनाक। बीबीको निमोनियाकी बात समझमें नहीं आई, यह उसके लिये अच्छा ही था। किन्तु, बीमारी भयकर है, इसका उसे कुछ पता जरूर था। यदि कमलको कुछ हो गया। फिर अपने पाँच बच्चोंको लेकर वह किसका दरवाजा देखेगी ? बड़ी मेहनतसे जो झोपडी और उसके पास क्यारियाँ दोनोंने मिलकर तैयार की थीं, उसमें भी तो नगरपालिका रहने नहीं देगी। उसके बच्चे बाटके भिखारी हो जायेंगे। हाँ, उसकी आशंका केवल काल्पनिक नहीं थी। भावुकतावश उसकी आँखोंमे आँसू नहीं उमड़ आते थे। जीवन तो बदतर था, यद्यपि उस स्त्रीको इसका पता नहीं था, किन्तु बच्चोंका दाने-दानेके लिये बिलख-बिलखकर मरना तो और भी बदतर होगा। अस्पताल तीन मील-पर था। अपने चारों बच्चोंको छोड़कर वहाँ जाना बहुत मुश्किल था—अभी पाँचवाँ बच्चा पैदा नहीं हुआ था। सबसे छोटी लड़की कुछ महीनेकी थी, बैठ सकती थी। पति—जीवनके एकमात्र अवलम्ब कमल—को देखनेके लिये पत्नीको जाना जरूरी था। नेमके ऊपर तीनों बच्चोंको छोड़कर वह चली आती, लेकिन नेम भला कहाँ बैठ सकता था ? वह दूसरे बच्चोंके साथ खेलने चला जाता था, और कभी-कभी सारो (सरस्वती) को भी अपने साथ लिये। सबसे छोटी बच्ची चारपाईपर पड़ी रहती। गरीबोंके बच्चे बहुत रोना नहीं जानते, जब रोना सुननेके लिये अवसर न हो, तो माँ-बाप उनका ध्यान भी कैसे कर सकते थे ? भूख या दूसरे कारणसे कुछ देर रो लिया, फिर सो गये। नेमकी माँ अपने बच्चोंके लिये जल्दी आना चाहती थी, लेकिन ६ मीलका रास्ता नापना था, और आध-पौन घंटा कमलकी चारपाईके पास भी बैठना था। कभी-कभी गोधूलिके समय दूसरी लडकी अकेली कुटियाके नीचेसे जानेवाले रास्तेपर बैठी मिलती। उसको देखकर सहृदय व्यक्तिके लिये हृदय थामना मुश्किल हो

जाता। गोधूलिकी वेला, आसपास कोई आदमी नहीं, कंकड़-पत्थरसे भरी सड़कपर वह डेढ़ वर्षकी बच्ची एक फटे-चीथड़ेके कुर्तेको पहने बैठी सर्दी खाती रहती। यह ऐसा समय था, जब कि इस अंचलमें बघेरे अक्सर आ जाया करते हैं। यद्यपि मधुपुरीमें अभीतक किसी बघेरेने मानव-सन्तानपर कभी आक्रमण नहीं किया, लेकिन इस छोटी बच्चीको अकेला देखकर वह छोड़ देगा, इसकी कम ही उम्मीद थी।

तीन-दिनतक अस्पतालमें भी कमल जीवन और मृत्युके बीचमें झूलता रहा। चौथे दिन अपने पतिको देखकर नेमकी माँ जब आई, तो उसके चेहरे-के देखने हीसे मालूम होता था, कि अब निराशाकी घड़ी चली गई। कुछ दिनों बाद कमल अस्पतालसे चला आया। बीमारी दूर हो गई, लेकिन कम-जोरी अभी भी थी। डाक्टरने बतलाया, मॉसका शोरबा पीना चाहिये। पर, मॉसका दाम ढाई रुपया सेर था। तब भी पत्नीने किसी तरहसे करके दो-चार दिन मॉसका थोड़ा-थोड़ा शोरबा पिलाया। दस दिन और घरपर बैठे रहना पड़ा। अभी ताकत पूरी नहीं आई थी, लेकिन उतने समयके लिये छुट्टी नहीं मिल सकती थी। कमल फिर कामपर जाने लगा।

(६)

जीवनका शकट फिर पहलेकी तरह चलने लगा। अभाव तो उसका एक अभिन्न अंग था ही, तो भी कालरात्रि समाप्त हो गई थी। यह समय भी आठ महीने तक ही रहा। एक दिन सात वर्षकी सारो बीमार पड़ी, और दूसरे ही दिन देखा, कि वह अपने हाथ-पैरोंको उठा नहीं सकती, उसे लकवा मार गया है। मरनेका डर नहीं था, लेकिन ऐसी लड़कीका ब्याह कौन करेगा? क्या उसका बोझ हमेशा कमलको ढोना पड़ेगा? कमलने अपनी गोदमें उठा-कर फिर अस्पतालकी यात्रा की। डाक्टरने बतलाया, पोलियो है, इसकी कोई दवा नहीं, ले जाओ। जब बड़ा डाक्टर ऐसा कह दे, तो बाप-माँ क्या आशा रख सकते थे? उस लोथड़ेको उठाकर फिर वह अपने घर लाया। सारो चार-पाईपर पड़ी रहती। कोई खिला देता, तो खा लेती। पेशाब-पाखानेके लिये भी दूसरेका सहारा लेना पड़ता था। अस्पतालके डाक्टरने तो निराश कर दिया

पर इधर-उधर जो कोई दवा बतलाई जाती, उसे करते। महीने भरतक जब कोई अन्तर नहीं पड़ा, तो उन्हें विश्वास हो गया, कि डाक्टरकी बात सच है। इसी समय एक तजर्बेकार वैद्य अपने मित्रसे मिलने पड़ोसमें आ गये, और मित्रके कहने पर उन्होंने लड़कीको देखा। पोलियोकी विभीषिकासे वह आक्रान्त नहीं थे। उन्होंने साफ और दृढ़ शब्दोंमें कह दिया—इसका लकवा थोड़े समयका है। दवासे फायदा नहीं होगा। तुम एक विशेष तेलकी मालिश करो। तेल बनानेका सारा नुसखा उन्होंने बतला दिया, जिसपर दस-बारह आनेसे बेशी खर्च नहीं हुआ। माँ-बाप शाम सबेरे उसी तेलसे लड़कीकी मालिश करने लगे। एक महीनेमें वह हाथ उठाने लगी, फिर और एक महीने बाद चारपाई पकड़कर खड़ी होने लगी। तीन-चार महीनेमें वह फिर अपने बलपर बिना किसीके सहारे चलने और अपने हाथसे खाने लगी। पहले दिन जब वह उठकर स्वयं पासकी चट्टानपर आकर बैठी, तो माँ-बापको ही नहीं, पड़ोसियोंको भी बड़ी खुशी हुई। बेचारी लड़कीका जीवन बच गया।

कमलको फिर जीवन सुखमय मालूम होने लगा। दुःख और चिन्ताकी कुछ कमी हो, इसीको तो यह लोग सुख समझते हैं। एक ही सालके भीतर कमल स्वयं मौतके मुँहसे निकला था, फिर लड़की जिन्दा लाश बनकर उठ खड़ी हुई। जो भयंकर आफत उसके ऊपर अब तक आई थी, वह आदमीके हाथकी नहीं थी। पर, अब आदमीने उसके ऊपर प्रहार किया। किसीको उसका यह जीवन पसन्द नहीं आया, उसने अफसरको कह दिया : "कमलको बहुत वर्ष हो गये, एक ही जगह रहते। उसकी बदली कर देनी चाहिये।" अफसरको यह बिल्कुल उचित मालूम हुआ, और उसने मधुपुरी नहीं, बल्कि इसी बिजली-व्यवस्थाके अधीन पासके शहरमें उसकी बदली कर दी। जिस दिन यह खबर आफिसमें कमलने सुनी, उस वक्त उसके हृदयको भारी धक्का लगा। उस कुटियामें उसके ही नहीं, बल्कि उसके घरके बारह और पैर जम गये थे—चार-पाँच महीने पहले कमलको पाँचवीं सन्तान—बेटा हो चुका था। वहाँसे पैर उखड़ने पर उसकी क्या हालत होगी? नीचेके शहरमें अवश्य ही उसे साग-सब्जी उगानेकी जमीन नहीं मिलेगी, न वहाँ वह बकरी-गाय रख सकेगा। ५९ रुपये महीनेपर सात प्राणियोंका खर्च कैसे चलेगा? ईंधन भी वहाँ उसे

बहुत महँगे खरीदकर जलाना पड़ेगा। इन्द्रके वैभवपर ईर्ष्या हो, तो कोई बात नहीं; लेकिन कमलके पास ऐसा कौन सा वैभव था, जिसे मनुष्य देखनेके लिये तैयार नहीं हुआ। वह क्या करे क्या न करे, यह उसकी समझसे बाहरकी बात थी। आफिसमें गिड़गिड़ानेका कोई फल नहीं हुआ। अपने पड़ोसी बाबूको उसने अपनी गाथा सुनाई। उन्हें यह निरी क्रूरता नहीं, पशुता मालूम हुई। सात-सात प्राणियोंके साथ यह घोर अन्याय था। कमल भाग्यवादी था, तो भी वह कहता था—नीचेके शहरमें गर्मी बहुत है, मेरे बच्चे मधुपुरीके सर्द स्थानमें ही बराबर रहे। उन्हें लू लग जायगी। गरीब अपने बच्चोंके साथ कितना प्रेम करते हैं? वह अपने जीवनसे भी उनके जीवनको अधिक प्रिय समझते हैं। बाबूका थोड़ा बहुत परिचय मधुपुरीके नगरपालिकाके अधिकारियोंके साथ था। उन्होंने चिट्ठी लिखकर कमलके हाथमें दे दी। कमल आफिसके अपने सबसे बड़े अफसरके पास चिट्ठीको बड़ी आशासे ले गया। पड़ोसीने कमलके परिवारकी दयनीय दशाको भी सक्षेपमें लिख दिया था। लेकिन, उसका कोई फल नहीं हुआ।

कमलको तुरन्त दूसरे शहरमें अपनी ड्यूटीपर जानेका हुकुम हुआ। उसका परिवार इस क्वार्टरमें एक महीने और इसीलिये रह सका, कि नगरपालिकाको इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। अपनी ४० रुपयेकी बकरीको उसने २० रुपयेमें बेचा। वह गाभिन थी, और परिवारकी पुरानी कुटियाको छोड़नेसे पहले ही आकर तीन बच्चे जनी। गायका तिहाई दाम भी नहीं मिला। इतने वर्षोंसे रहते घरके छोटे-मोटे बहुतसे सामान उसने जमा कर लिए थे, ईंधनकी लकड़ी थी, घास-चारा था। लकड़ीको बेचकर उसे १२ रुपये मिले, लेकिन दूसरी बहुत सी चीजें उसके लिये बहुत मूल्यवान्, लेकिन दूसरोंके लिये कौड़ीके मूल्यकी भी नहीं थीं। चार इतवारोंको कमल परिवारमें आता रहा, इसी समय वह अपने घोसलेको अपने हाथों उजाड़ रहा था। फिर एक दिन सातो प्राणी अपनी कुटियाकी ओर निराशापूर्ण आँखोंसे देखते चले गये। आज भी वह कुटिया खड़ी है, उसे देखकर कमलकी सारी कहानी आँखोंके सामने घूम जाती है, हृदय किसी अज्ञात बोझसे दबने लगता है।

१५. डोरा

(१)

"लडकी भी बीमार है। खानेको भी कुछ नहीं। तुम भी अम्माजी डाट रही हो!"—रोते हुये एक समयसे पहिले अधेड हुई स्त्रीने बड़े करुणस्वरमे कहा, जिससे मालूम होता था, कि वह दुःखके समुद्रमे नाकतक डूबी हुई है।

"उस दिन तेल लाये थे, अभी सारा खतम हो गया?"—इसी बीच दूसरे सम्बन्धीने कहा।

"माफ करो।"—गीली आँखोंको एक ओर फेर कर उसने दूसरे पुरुषको जवाब दिया। इसी समय कंकालमात्र अवशिष्ट उसकी तीसरी लडकीको एक बन्धु अस्पतालसे उठाये ला रहे थे।

२८-२९ वर्षकी बात है। वर्षोंमे शायद वैसा अन्तर न मालूम होता, किन्तु दाल-रोटीकी चिन्ता और दूसरी बातोंमे तबसे एक महायुग बीत गया है। गोपालू मधुपुरीका एक बडा होशियार खानसामा और रसोइया था। शुद्ध अंग्रेजोंके क्लबमें इसी कारण उसे ५० रुपया महीना मिलता था—हाँ, ५० रुपया, अर्थात् आजका सवासौ रुपया, और ऊपरसे हरेक ग्राहक और मेहमान कुछ टिप (बखशीश) भी दिया करता था। गोश्त देनेवाला गोपालूकी यदि कुछ पेट-पूजा न करे, तो वह उसके मांसको निकम्मा कहकर दूसरेको लगवा सकता था—रोज दो बकरेका खर्च था। सागवाले को भी क्लबके बड़े-खानसामाको खुशामद बातोंसे करके छुट्टी नहीं मिल सकती थी। फिर शराब, चटनी, टिनके मांस और दूसरी जितनी चीजें क्लबकी भोजनशालामे जातीं, उन्हें निकालनेवाला गोपालू ही था। गोपालू न चोर था, न झूठा। पहाड़ी आदमी उस समय आजसे भी ज्यादा ईमानदार होते थे। लेकिन, खानसामाकी हर जगह दस्तूरी बनी होती है, जिसके लेनेमें वह कोई दोष नहीं समझता। क्लबके मनेजर एंग्लो-इंडियन साहबको भी इसमें कोई एतराज नहीं था। उनकी शिक्षा-

दीक्षाके अनुसार तनखाहसे अधिककी आमदनी अवैध हो सकती थी, लेकिन वह भी तो दस्तूरीमें शामिल थे। और फिर यह एक आल्प्स-क्लबकी बात नहीं थी, सारी मधुपुरीमें यह चला आता था।

गोपाल् बगलेके पर-जैसी धुली पोशाकमें रहा करता। छोटे-बड़े दोनों सीजनोंके समय मधुपुरी उतनी ठण्डी नहीं रहती, वर्षामें यदि कभी भारी वर्षाके साथ-साथ तेज हवा भी चलती रही, तो माघ-पूस जरूर याद आने लगता था, और उसके लिये गोपालके पास जाड़ोंकी गरम पोशाक थी ही। दूसरे होटलों, क्लबों और दूकानोंकी तरह आल्प्स क्लबका कारबार मईसे अक्तूबर तक कम-बेसी चलता रहता। उसके बाद सैलानियोंके साथ-साथ नौकर-चाकर भी बिदा हो जाते, दूकानें भी अधिकांश तालोंमें कपड़े लपेट मोहरबन्द हो जातीं। लेकिन आल्प्स क्लब जैसे स्थानोंमें सामान और घरकी देखभालके लिये एक चौकीदारके अतिरिक्त गोपाल जैसेको बारहों महीने रहना पड़ता। जरूरत पड़ती, तो वह मजदूरोंको रखकर कुछ छोटा-मोटा मरम्मतका काम भी करवा लेता। वैसे जाड़ोंमें ही मधुपुरीके मकानोंमें कोई नया काम किया जाता है। मकान प्रायः सभी क्रिरायेके हैं, और मरम्मत कराना मकान-मालिकका काम है। यदि फर्नीचर, पर्दे, पार्टीशनके सम्बन्धमें कोई नया काम करना होता, तो उसके लिये मनेजर अप्रैलहीमें यहाँ पहुँच जाता। छ महीनेके लिये सूने आल्प्स क्लबका मनेजर गोपाल् था। इस समय उसे अपनी बँधी तनखाहपर गुजारा करना पड़ता। उस समय अंग्रेजोंकी तपी थी, मधुपुरी सोलहो आने उनकी नगरी थी। क्लबमें आनेवाले मेहमान अगर तीन चार महीना पहले अपनी जगह रिजर्व न करा लें, तो उनके लिये कमरा मिलना मुश्किल था। आधे मेहमान तो, बल्कि पहले ही साल एडवान्स दे जाते थे।

गोपाल् पहाड़ी राजपूत था। काला अक्षर भैंस बराबर ही कहना चाहिये, क्योंकि वह बड़ी मुश्किलसे हिन्दीमें अपना हस्ताक्षर कर सकता था। उसके गोरे सुन्दर चेहरे और छरहरे बदनपर बेदाग नई-सी पोशाक देखकर कोई कह नहीं सकता था, कि वह शिक्षित नहीं है। लड़कपनसे ही वह इसी क्लबमें आकर नौकरी करता। उसे प्रथम महायुद्धके दिन भी याद थे, जिसके समाप्त होते-होते उसको रेख भिनने लगी थी। बचपनहीमें मधुपुरीके उच्च समाजके

सम्पर्कमें रहनेके कारण वह उसका एक अंग हो गया था। हर समाजके नौकर भी उसीके अनुरूप होते हैं। यहाँ रहते-रहते उसकी घनिष्ठता इसी होटलके बड़े खानसामा-परिवारसे हो गई, जिसके घरमें एक तरुणी लड़की थी। गोपालू हिन्दू और वह खानसामा ईसाई था। था वह भी पहाड़ी ही। अन्तमें अपने बड़े खानसामाकी लड़कीसे ब्याह करनेके लिये वह भी ईसाई हो गया। नाम गोपालूका गोपालू रहा। सास-ससुरकी एक ही लड़की थी। ससुरका यही ध्यान था, कि गोपालू एक दिन मेरी जगह ले। उसने साहेबोंकी खानेकी एक-एक चीजको सिखलाकर उसे निपुण कर दिया। दो-तीन वर्ष बाद वह अपने ससुरका सहायक खानसामा बन गया। तीन-चार वर्ष बाद ससुर चल बसा, सास कितने ही वर्षोंतक और जिन्दा रही। अब गोपालू आल्प्स-क्लबका बड़ा खानसामा था। उसके एक लड़की हुई, और भी बच्चे हुये, लेकिन वह मर-मर गये। पहली लड़की होनेके कारण उसपर माँ-बापका असाधारण प्यार था। गोपालू उसे अपनी बीबीके साथ गिर्जेमें ले गया। शायद पादरी साहबकी मेमका नाम डोरोथी था, उन्होंने वही नाम इस लड़कीको भी दे दिया। पर, हिन्दुस्तानी मुँहमें पड़कर उसका कोई अर्थ नहीं मालूम होता था। प्यारसे कभी पादरीकी मेमने डोरा कह दिया, और अब उसका वही नाम पड़ गया, लोग डोरा-सूतके अर्थको समझते ही थे।

(२)

डोरा घरकी इकलौती सन्तान थी। माँ-बाप और नानी भी उसको फूलकी तरह आँखोंपर रखना चाहते। वह फूल जैसी थी भी। माँ और बाप दोनों ओर शुद्ध खस-रक्त होनेके कारण वह बिल्कुल गोरी, नाक नुकीली, सिर लम्बा, और चेहरा सुन्दर कहलानेके अनुरूप था। क्लबके बड़े खानसामाके घरमें इस वक्त लक्ष्मीका वास था। सीजनमें खा-पीकर हजार रुपयेसे अधिक ही बच जाते, और जाड़ोंमें भी पूरी तनखाह मिलती। डोराको बड़े सुखसे उन्होंने पाला। जब वह पाँच-छ वर्षकी हुई, तो उसे पढ़ानेके लिये नये पादरी साहबकी ओरसे आग्रह हुआ और गोपालूने उसे पादरियोंके एक स्कूलमें बैठा दिया। इसी मधुपुरीमें तीन वर्षसे लेकर सयानेतकके अंग्रेज लड़के-लड़कियोंके लिये कितने

ही कान्वेन्ट और स्कूल थे, जहाँ सारे हिन्दुस्तानके बच्चे रहकर पढ़ते थे। गोरे साहेब ही नहीं, काले साहेबोंको भी भारी खर्च देनेपर अब कुछ संख्यामें अपने लड़कोंको भेजनेकी इजाजत दे दी गई थी, इसलिये उनके लड़के भी इन कान्वेन्टों (साधुनी शिशुशालाओं) और स्कूलोंमें पढ़ते थे, और उनमेंसे अधिकांश ईसाई नहीं थे। पर ईसाई होनेसे गोपाल्-परिवार भद्र-वर्गमें तो सम्मिलित नहीं हो सका था। वह खानसामा था और उसकी आमदनी खानसामों जितनी ही थी; साथ ही उसका सपना भी खानसामोंसे बढ़कर नहीं हो सकता था। सम्भव है, डोराकी जगह यदि कोई लड़का होता, तो उसके पढ़ानेके लिये गोपाल् ज्यादा ध्यान देता। जो भी हो, उसने अपनी लड़कीको ईसाइयोंके एक छोटेसे स्कूलमें पढ़नेके लिये भेज दिया। लेकिन, न घरमें पढ़ने-लिखनेका वातावरण था, और न डोरा उतना दवाव माननेके लिये तैयार थी, माँ और नानी आधे दिलसे ही उसको स्कूल भेज रही थीं। डोरा पहले साल तो बराबर जाती रही, इसके बाद दो दिन स्कूल जाती, तो तीन दिन मोहल्लेकी लड़कियोंके साथ खेलनेमें लग जाती। दस वर्षकी होते-होते मालूम हो गया, कि उसे पढ़नेकी न इच्छा है न अवश्यकता। माँ-बाप और बुढ़िया नानी हर इतवारको गिर्जेमें जाते। मधुपुरीमें ईसाइयोंके भगवान्‌के घरमें भी रंग-भेद था, —कितनी ही सड़कें एक तरहसे हिन्दुस्तानियोंके लिये बन्द थीं, यदि कोई काला साहब भी उधरसे गुजरता, तो उसे ठोकर खाने और गाली सुननेकी नौबत आती। सड़कों, होटलों और क्लबोंमें रंग-भेद चलता था—आल्प्स क्लबका मेम्बर कोई हिन्दुस्तानी नहीं बन सकता था, न उसे वहाँ ठहरनेके लिये जगह मिल सकती थी। यहाँके हिन्दुस्तानी ईसाई यही बैरा और खानसामा थे। उनके अतिरिक्त थोड़ेसे एंग्लो-इंडियन थे, जिनका रंग अगर गोरोंके समीप रहा, तो वह गिर्जेकी पूजामें उनके साथ शामिल हो सकते थे। रंगके अतिरिक्त भाषाकी भी कठिनाई थी। अंग्रेजोंके भगवान् अंग्रेजी भाषामें ही गीत और प्रार्थना समझ सकते थे, और कालोंके भगवान् कालोंकी भाषामें। इसलिये भी डोराके पिता गोपाल् जैसे ईसाई हिन्दीमें पूजा-प्रार्थना होनेवाले गिर्जेमें ही जाते थे। ऐसे गिर्जे एक ही दो थे। जिसमें बहुत भक्ति हो, वही मधुपुरीके ओर-छोरसे हर इतवारको इस गिर्जेमें पहुँच सकते थे। लेकिन,

गोपालूका क्लब उससे दूर नहीं था, और कहा जा सकता है, कि उस परिवारमें भक्ति भी अधिक थी, इस प्रकार वह हर इतवारको वहाँ हाजिर हुआ करता था।

डोरा स्कूलमें जानेमें चाहे भले ही जान चुराती हो, लेकिन गिर्जेमें जानेके लिये इतवारको वह बड़े तड़के ही उठ जाती। उस दिनके लिये उसकी खास पोशाक होती, बाल सँवार करके उसमें लाल फीते बाँध दिये जाते, मुँह-हाथपर पौडर लगा दिया जाता, पैरोंमें नया बूट होता, जो केवल इतवारको ही इस्ते-माल किया जाता। उसकी माँ-नानीमें बहुत आधुनिकता नहीं थी, और न उन्हें क्लबमें होनेवाली मेहमान महिलाओंके बनाव-शृंगारको नजदीकसे देखने-का मौका मिलता। मेमोंको अपने बच्चोंके लिये आयाकी जरूरत होती थी, लेकिन एक तो वह ऐसी आया रखना चाहतीं, जो कि उनके बच्चोंसे अंग्रेजीमें बोले, जिसमें उनके सुकुमार-मति बच्चे काले आदमियोंकी बोली और उनके रीत-भातको सीख न जावें। आया अधिकांश काली ही होतीं, एंग्लो-इंडियन आयाको तनखाह ज्यादा देना पड़ता, इसलिये उनको रखनेकी हिम्मत बड़े-बड़े साहब ही कर सकते थे। गोपालूको अपनी स्त्रीको आया बनानेकी इच्छा भी नहीं हुई। आसपासकी और लड़कियोंको जिस तरह बनाया-सँवारा जाता, डोराको भी उसी तरहके गुलाबी फ्राक और दूसरी चीजोंसे सजाकर वह गिर्जा ले जाते। अपने पहाड़ी पूर्वजोंसे वरासतके तौरपर डोराने मधुर कंठ पाया था। गिर्जेमें उसे भजन गानेका अवसर मिलता। ईसाई-धर्ममें दीक्षा देनेवाले सभी बड़े-बड़े पादरी गोरे थे, उन्हें काले लोगोंका संगीत प्रिय भी नहीं था। प्रिय तो नाम भी नहीं था, यह तत्कालीन पादरीकी उदार हृदयता थी, जो कि गोपालू-का नाम डेविड या जेम्समें नहीं बदला गया, और वह गोपालसिंह ही बना रहा। गिर्जेमें गीत तो था "ईसुमसी मेरे प्राण बचैया" लेकिन, उसे गाये जाते सुनकर साधारण हिन्दुस्तानीके लिये यह समझना मुश्किल था, कि गीत हमारी भाषाका है। पादरी साहबकी मेम भी आग पढ़ानेके लिये शामिल होतीं और जो उनसे नहीं बन पाता, उसे गिर्जेका पियानो ठीक कर देता, इस प्रकार "ईसुमसी मेरे प्राण बचैया" की तान बिलकुल अंग्रेजी गान जैसी हो जाती। डोरा अपने मधुर कंठसे यूरोपीय तानमें उसे बड़े मनसे

गाती। गिर्जा जानेवाले सभी उसके गानेकी तारीफ करते। उसे इससे क्या मतलब, कि हिन्दुस्तानी भाषाके गानेकी वहाँ रेड़ मारी जा रही है, या हिन्दुस्तानी संगीतका अपमान किया जा रहा है।

(३)

डोरा १५ वर्ष पूरा करके अब १६ वें वर्षमें कदम रख रही थी। वह अपने रंग-रूप दोनोंमें सुन्दरी थी, फिर इस आयुके लिये तो सुजानोंने कहा है; "प्राप्ते तु षोडशे वर्षे गर्दभी ह्यप्सरायते।"

द्वितीय महायुद्ध छिड़े तीसरा वर्ष हो रहा था। युद्धने दिल खोलकर मधुपुरीको निहाल कर दिया। साधारण तौरसे आनेवाले अंग्रेज तो आते ही थे, अब युद्धके सैनिक भी बड़ी संख्यामें यहाँ रहते थे, और कितने ही तो बारहों महीनेके मेहमान थे। मधुपुरीके भाग्यके साथ आल्स-क्लबका भाग्य बँधा था और उसके साथ गोपालूको खूब आमदनी थी। गोपालूका परिवार बड़े आरामकी जिन्दगी बिता रहा था। बारह वर्ष पार करते ही गोपालूने अपनी लड़कीका स्कूल जाना बन्द कर दिया था। ४-५ वर्षमें मुश्किलसे वह तीसरे दर्जेतक पहुँच पाई थी। उसकी पढ़नेकी कोई इच्छा नहीं थी। नानी बेचारी चार वर्ष पहले ही मर चुकी थी। माँ-बाप समझते थे, कि सभी दिन इसी तरह आराम और निश्चिन्तताके होंगे, इसलिये हमारी डोराको अधिक पढ़नेकी क्या अवश्यकता ?

गोपालू ईसाई हो गया था, लेकिन उसके सारे संस्कार वही पुराने थे। यदि कोई उसे छोटी जातका कह देता, तो वह लड़नेके लिये तैयार हो जाता। वह अपनी जात-पाँतको अपने साथ ले आया था। लड़ाईके समय जब शिक्षित यूरोपियन ही नहीं, बल्कि फौजी गोरे बड़ी संख्यामें मधुपुरीकी सड़कोंपर घूमने लगे, तो उसे बड़ा खतरा मालूम होने लगा, और वह डोराको अकेली घरसे बाहर नहीं होने देता। यह ऐसा समय था, जब कि कितने ही एंग्लो-इण्डियन माता-पिता अपनी श्वेतांग लड़कियोंको दामाद ढूँढ़नेके लिये आग्रहके साथ भेजते थे। यदि किसी अमेरिकन या अंग्रेज सैनिकसे ब्याह हो गया, तो हमारी लड़की धन और जाति दोनोंमें बड़ी बिरादरीकी हो जायेगी—उनके

दिलमें यह ख्याल घुसा था। पर गोपालूको डोराके लिये बराबर चिन्ता बनी रहती थी। डोरा उन एंग्लो-इण्डियन लड़कियोंसे बहुत अधिक सुन्दरी थी। चिन्ताके मारे गोपालू इतना परेशान था, कि उसे लड़कीके ब्याहकी जल्दी पड़ी हुई थी।

जल्दीका काम शैतानका है—यह कहावत ठीक ही है। जल्दी-जल्दीमें डोराके योग्य दामाद मिलना मुश्किल था। जो ईसाई तरुण कुछ पढ़-लिख मैट्रिक पार हो गये थे, वह रूप होने पर भी अनपढ़ खानसामाकी अनपढ़ सी पुत्रीको ब्याहनेके लिये तैयार नहीं थे। उस साल अपने हितमित्रोंके साथ गोपालूने मधुपुरीके अपने वर्गके सभी ईसाई-तरुणोंकी खोज की। अन्तमें उसे एक बड़े होटलमें गोआनी तरुण मिला। यदि वह अच्छी तरहसे पूछ-ताछ करता, तो होनेवाले दामादको समझ सकता था; पर, उसे तो जल्दी पड़ी थी, अगर इतनी मीन-मेख निकालता, तो डोराको अब भी कुँवारी रखकर खतरेको मोल लेना पड़ता। उसके अपने क्लबके जमादारकी लड़कीके साथ एक ऐसी दुर्घटना हाल हीमें हुई थी, जिसके कारण वह और भी आशंकित हो गया था। गोआनी तरुणने लड़कीको देखा, तो वह उसपर मुग्ध हो गया। लेकिन, ब्याह करनेके समय फिर कठिनाई उपस्थित हो गई। गोआनी रोमन कैथलिक था, और डोराके माँ-बाप प्रोटेस्टेन्ट। रोमन कैथलिक लड़का लड़की कैथलिक-भिन्नसे तभी शादी कर सकते हैं, जब कि वह कैथलिक बन उसी सम्प्रदायके अनुसार शादी करे। शायद लड़का इसके लिये जिद्द नहीं करता, लेकिन उसके चचाका इसके लिये बहुत आग्रह था। गोपालूके लिये कोई बात नहीं थी। राजपूतसे ईसाई बननेमें एक बार उसको भारी हिचकिचाहट जरूर हुई थी, क्योंकि तब उसे अपने परिवार और नातेदारोंसे हमेशाके लिये सम्बन्ध तोड़ना पड़ रहा था, और वह दो रस्सियोंके बीच कितने ही महीनोंतक झूलता भी रहा। पर, जब वह उन सबसे नाता-गोता तोड़ कर ईसाई बन चुका, अपने जात पतित हो चुका, तो प्रोटेस्टेंट हो या रोमन कैथलिक, इसमें उसे क्यों भेद मालूम होता?

डोराका ब्याह रोमन कैथलिक चर्चमें हुआ, जहाँ सबेरेके वक्त गोरे भक्त-भक्तिनोंकी पूजा-प्रार्थना चलती और शामको काले लोगोंकी। उस दिन

गोपालने लड़कीके ब्याहमें अपने सारे अरमान निकालने चाहे। उसकी अपनी श्रेणीके लोग जितनी कीमती-से-कीमती पोशाक दुलहिनके लिये बनवा सकते हैं, उसने वैसी बनवाई। विशेष शृंगार करनेके लिये एक शिक्षिता भारतीय ईसाई महिला मिल गईं। गोपालके ससुरके समय पादरी लोग अपने भारतीय शिष्य-शिष्याओंके नाम हीमें नहीं, बल्कि पोशाकमें भी औरोंसे भेद रखना चाहते थे—स्त्रियाँ मेमोंकी नकल करती साया पहनतीं। लेकिन, डोराके समय अब उस तरहका आग्रह नहीं था, और ईसाई महिलायें अपने देशकी दूसरी स्त्रियों-की तरह साड़ी पहना करती थीं। डोराको भी रेशमकी मूल्यवान् सफेद साड़ी पहनाई गई, पैरोंमें सफेद बूट और सिरके बालोंको ढाँकनेके लिये सफेद लम्बी जाली थी, हाथमें बड़े-बड़े गुलाबोंका गुलदस्ता जाड़ा हो जानेके कारण नीचेके शहरसे मँगाना पड़ा था। विवाहके उपलक्षमें मधुपुरीके सारे हित-मित्र गिर्जेमें जमा हुये। डोराके सुन्दरी होनेको पहलेसे भी सभी स्वीकार करते थे, लेकिन आज तो वह मानवी नहीं, कोई अप्सरा मालूम होती थी। सफेद पोशाक काले रंगको और काला और गोरेको और गोरा बनाती है। डोरा गोरी थी, बिना रूज़के भी इस समय उसके गाल आरक्त थे। चर्चमें उपस्थित लोगोंमें वह तरुण भी था, जिसने उसकी पढ़ाईकी कमीके कारण ब्याह करनेसे इन्कार कर दिया था। सचमुच ही वह आज हाथ मलकर पछता रहा था। गोआनी काला नहीं था, लेकिन उसे सुन्दर तरुण नहीं कहा जा सकता था। अप्सराको गदहेके गले बाँध दिया गया—यही सबकी राय थी। पर, गोआनी तरुण यदि हिन्दू होता, तो कहता मेरे पूर्व-जन्मका फल है, जो मुझे ऐसा गुलाब मिला। ईसाई पूर्व जन्मको नहीं मानते, वह मुसलमानों और यहूदियोंकी तरह हरेक भले-बुरे भोगको भगवान्‌की महिमा बतलाते हैं। ब्याहके बाद गोपालने अपने यहाँ एक दावत दी। भोजनके जितने प्रकार वह अपने आकाओंके लिये तैयार करता था, उन सबको उसने अपने हित-मित्रोंके लिये तैयार किया। शरद्‌का सीजन खतम हो रहा था, पर क्लब तो जाड़ोंमें भी खाली होनेवाला नहीं था। उसमें कितने ही सैनिक अफसर स्वास्थ्य-लाभके लिये ठहरे थे। इस प्रकार गोपालको खर्चका डर नहीं था। अच्छी-अच्छी शराब मेहमानोंको पिलाई गई। क्लबके मनेजर एंग्लो-इण्डियन साहेब चाहे अंग्रेजोंके सामने अछूत ही

समझे जाते हों, लेकिन वह काले ईसाई और सो भी खानसामाके मेहमानोंके साथ नहीं बैठ सकते थे। उनको और उनकी मेमके लिये गोपालूने अलग खानपानका प्रबन्ध किया था। कुछ मनचली ईसाई तरुणियोंने जशनको और अच्छी तरह मनानेके लिये गाना भी आवश्यक समझा, लेकिन नाचना अभी उनके समाजमें स्वीकृत नहीं था। गानेमें भी यदि सिनेमाका प्रचार न हो गया होता, तो शायद उसे "ईसुमसी मेरे प्राण-बचैया"के ट्युनमें ही गाना पड़ता।

दामादका चचा जिस होटलमें रहता था, वह जाड़ोंके लिये आंशिक तौरसे बन्द हो गया, और कितने ही नौकरोंको छुट्टी मिल गई, जिनमें चचा भी था। उसने भतीजे और उसकी बहूको साथ चलनेके लिये कहा, लेकिन गोपालू अपनी इकलौती बेटीको छोड़नेके लिये तैयार नहीं था। अन्तमें उसने दामादको भी अपने ही घर बुला लिया। शायद वह सोचता था, जैसे मैंने अपने ससुरका स्थान सँभाला, वैसे ही दामाद भी मेरी जगह लेगा। दूर रहता, तो शायद अभी और कितने ही दिनोंतक गुन ढँके रहते, लेकिन अब जब बराबर साथ रहना था, तो किसी बातको कैसे छिपाया जा सकता? वह एक नम्बरका शराबी था। जो थोड़ी सी शराब गोपालू उसे देता, वह उसके लिये पर्याप्त नहीं थी। वह कहता मैं तो बोतल-की-बोतल बराण्डी, व्हिस्की और शम्पेन पीता हूँ। यह बिल्कुल झूठी बात थी। इतनी महँगी शराब उसे नहीं मुयस्सर हो सकती थी और न उनसे उसकी तृप्ति होती थी। उसे तो सिर चकरा देनेवाला देशी ठर्रा चाहिये था। बीबीको डरा-धमकाकर कुछ पैसे ले वह अपने उसी होटलवाले छोरपर चला जाता, जहाँ पास हीमें गाँववाले अपने घरोंमें कड़ी शराब चुवाया करते। शराबमें बुत अँधेरा होते वहाँसे चलता। रास्तेमें बिना एक दो जगह गिरे-पड़े वह घर नहीं पहुँचता था। घर पहुँचते ही फिर तूफान मचाता, बीबीको अकारण पीटता और गाली देता, सास और ससुरके भी नाकमें दम कर देता। यह महीनेमें एकाध दिनकी बात नहीं थी, हफ्तेमें कितनी ही बार वह ऐसा करता। सबसे ज्यादा दुःख गोपालूको था। अपनी लड़कीके लिये उसने गलेकी फाँसी मँगा ली थी। लड़कीने दो हफ्ते भी अपने सोहागको सुखपूर्वक नहीं भोगा, और यह नरककी आग उसके लिये तैयार हो गई।

गोपालका क्वार्टर क्लबके कमरोंसे बहुत दूर नहीं था। शराब पीकर गोआनी जिस तरह चिल्लाता, उससे डर था, कि क्लबके मेहमानोंकी कहीं नींद न उचट जाये। आते ही उसे घरके भीतर कर दरवाजोंको पूरी तौरसे बन्द कर लेता, जिसमें आवाज बाहर न जाये। गुस्सेका जवाब गुस्सेमें देना अनर्थकारी होगा, यह ख्याल कर गोपाल उसे बहुत पुचकारकर मीठेसे समझाना-बुझाना चाहता। जिसका फल यह होता, कि अगले दिनके लिये दामादको कुछ पैसे मिल जाते।

गोपालके लिये यह भारी अभिशाप था। एकाध रात दामाद रास्ते हीमें कहीं पड़ा रहता। यदि आने-जानेवाला कोई परिचित होता, या दया दिखलाता, तो वह उसे कुछ दूरतक पहुँचा देता, नहीं तो वह वहीं सड़ककी मोरीमें तबतक पड़ा रहता, जबतक कि नशा कुछ कम न हो जाता, फिर बड़ी रातको ससुरके घरमें पहुँचता। गोपाल यही मनाने लगा, वह वहीं खतम हो जाता; या रास्तेके जंगलमें बघेरा उठा ले जाता, तो ही अच्छा। लेकिन मधुपुरीके बघेरे बड़े होशियार हैं। वह आदमीके साथ वैर ठाननेके भयानक परिणामको जानते हैं। ससुरका परिवार जितना ही दबता जाता, उतना ही दामाद शेर होता जा रहा था। गोपाल सोचता—यदि मेरा क्वार्टर यहाँसे कहीं दूर होता, तो बच्चाको सिखला देता।

मार्चका महीना आया। जाड़ा पीछे छूटता जा रहा था। वैसे मधुपुरीके लिये मौसिमके बारेमें बहुत पक्का नहीं कहा जा सकता। यदि वर्षा और हवा दो-तीन दिन लगातार रही, तो हिमवृष्टि हो सकती है। जाड़ोंके बाद जब वसन्त आने लगता, तो मधुपुरीके स्थायी निवासी मैदानके लोगोंकी अपेक्षा अधिक आनन्द मनाते हैं। लेकिन गोपालके घरसे तो आनन्द और खुशी उसी दिन विदा हो गई, जिस दिन दामाद घरमें आया।

(४)

१९४७ का अगस्त आया। अंग्रेज सदाके लिये भारतसे विदा हुये, मधुपुरी विधवा हो गई। मानो वैधव्यको प्रमाणित करने हीके लिये उस सालके अगस्तमें यहाँपर भी उथल-पुथल हुई। विभाजनके पहले हीसे लाहौर और पश्चिमी पंजाबके दूसरे शहरोंके आदमी यहाँ भरे हुये थे। रोज रेडियोसे कान

लगाये सुनना चाहते थे, कि लाहौर किधर गया। लाहौर पाकिस्तानमें जायेगा, इसमें क्या कोई सन्देह था? उसके आस-पासके गाँव मुसलमानोंके थे। शहरमें अगर हिन्दुओंका बहुमत होता, तो वहाँ हिन्दुस्तानका एक द्वीप अंग्रेज थोड़े ही स्थापित करनेवाले थे। हिन्दुओंने नाकों दम करके उन्हें भारत छोड़नेके लिये मजबूर किया। मुसलमानोंने भारतकी स्वतन्त्रताके लिये संघर्ष नहीं किया, यह बात नहीं, लेकिन अंग्रेज सारी कसर हिन्दुओंपर निकालना चाहते थे, इसलिये रायबहादुरों और सरदारबहादुरोंको अपनी अंग्रेज-भक्तिपर इतनी आशा रखना दुराशा मात्र था, कि उनके पुराने आका लाहौरको पाकिस्तान-को न देंगे। लाहौरके हाथसे चले जानेके साथ ही पंजाबमें हिन्दुओंके खूनकी नदियाँ बहनेकी अतिरंजित खबरें आने लगीं, जिसे सुनकर मधुपुरीमें बैठे पंजाबियोंका खून भी खौलने लगा, और दस-बीस निरपराध मुसलमानोंको उन्होंने मारकर दिल ठण्डा करना चाहा।

अंग्रेज मधुपुरीके सर्वस्वको छीन कर गये। गोपालू अब भी आल्प्स क्लबमें था, लेकिन जब क्लबमें मेहमानोंका ठिकाना न हो, तो उसका सुखी जीवन कैसे बर्करार रह सकता था। भगवान्ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और गोआनी साल भर पहले मधुपुरी छोड़कर भाग गया। नाकमें दम आनेपर गोपालूने एक दो बार उसकी अच्छी तरह मरम्मत कर दी थी। उसके जानेसे गोपालूको बहुत प्रसन्नता हुई, वही बात उसकी बीबी और डोराकी भी थी। लेकिन वह डोराको दो लड़कियोंकी माँ बना कर गया। गोपालूका हाथ तंग था। ५० रुपये अब भी उसे मिलते थे, लेकिन अब उनका दाम १५ रुपये भी नहीं था। ऊपरकी आमदनी अब नाम मात्र रह गई थी। आगे क्या होगा, इसका भी कोई पता नहीं था।

चिन्ता भी रोगका कारण होती है। गोपालू जैसे अच्छे दिनोंको देख चुका था, उनके लौटनेकी अब आशा नहीं थी, और गृहस्थीकी कठिनाइयाँ उसे परेशान कर रही थीं। इस स्थितिमें यदि उसका शरीर घुलकर आधा रह जाये, तो आश्चर्य क्या! सीजन शुरू हुआ। मधुपुरी लोगोंसे भरी हुई थी, लेकिन वह थे अधिकतर पंजाबसे आये शरणार्थी। एक-एक कोठरीमें दस-दस आदमी ठूँस कर भरे हुए थे, पर बँगले और होटल बहुधा खाली पड़े थे।

अंग्रेज लड़ाई खतम होनेके बाद हीसे कम होने लगे थे, और अब इस सालके जाड़ोंकी खूनखराबीको सुनकर उन्हें मधुपुरीमें सैर करनेकी इच्छा नहीं हो सकती थी। नवाब लोग अपने घरोंमें बैठे खैर मना रहे थे, उनमेंसे कितने ही पाकिस्तान जा चुके थे। अनिश्चित अवस्थाके कारण राजा और बड़े-बड़े जमींदार भी उस साल नहीं आये। आल्प्स-क्लबमें लड़ाई समाप्त होनेके बाद ही काले आदमियोंके लिये छूट हो गई, और अब तो उसके स्वामी भी वही थे। लेकिन, उसके आधे भी कमरे इस साल नहीं लगे। गोपालू पहले सीजनमें ही बीमार पड़ा। बहुत मुश्किलसे उसने अपनेको सम्भालकर मई-जूनको बिताया, बरसात आते ही चारपाईपर पड़ा तो फिर नहीं उठा। दुःखोंकी दुनियाँ सदाके लिये उससे दूर हो गई।

पर, डोराको अपनी दो लड़कियों और माँको लेकर इस दुनियासे भागनेका कहीं ठौर नहीं था। खानसामाके मर जानेपर उसके परिवारको ओट-हौसमें कैसे रहने दिया जाता? डोराको वह घर छोड़ना पड़ा, जिसमें उसने पहले-पहल आँख खोली थी, और जहाँ उसने शैशवको बड़े आनन्दसे बिताया था।

× × ×

डोराकी माँ भी साल भर बाद दुःखसे मुक्त हो गई। डोराको किसी परिचितने अपने पासकी कोठरी दे दी। मधुपुरीके ओट-हौस अधिकतर खाली ही रहते हैं, इसलिये मुफ्तमें कोठरी मिलना मुश्किल नहीं था। लेकिन, डोराको अपनी जिन्दगीकी नैया अपनी दोनों लड़कियोंको लिये खेना आसान नहीं था। स्त्रीके लिये ब्याह कोई शौककी चीज नहीं है, खासकर डोरा जैसीके लिये। वह अभी २१—२२ वर्षकी थी। बापके मरनेके बाद जिस कठिनाईसे उसे गुजरना पड़ा, उसके कारण वह समयसे पहले बूढ़ी हो जाये, इसमें सन्देह नहीं; लेकिन अभी उसमें शक्ति और कान्ति कुछ बच रही थी। यदि बापको गुलाब-सी डोराके लिये प्रयत्न करनेपर भी गदहा दामाद मिला था, तो अब मारी-मारी फिरनेवाली डोरा किसी अच्छे आदमीको कैसे पा सकती थी? उसे अपनी मण्डलीके निकम्मेसे निकम्मे लोगोंकी शरण लेनी पड़ी। साहेब लोगोंका वरदहस्त अब ईसाइयोंके ऊपरसे उठ चुका था। नौकरियोंका रास्ता उनके लिये बहुत कुछ बन्द हो चुका था। मुसलमान खानसामोंमेंसे कितने ही पाकिस्तान चले

गये थे, लेकिन तो भी जरूरतसे अधिक खानसामा अभी मौजूद थे, जो कम तनखाहपर भी कामके लिये मारे-मरे फिरते थे। डोराने एकका पल्ला पकड़ा। वह उसका और उसके बच्चोंका पालन-पोषण नहीं कर सका, बल्कि एक और बच्चेकी वृद्धि करके साथ छोड़ गया। फिर दूसरेने भी वही किया। पाँच बच्चोंको लिये २८ वर्षकी डोरा अब किसी तीसरेका पल्ला पकड़े हुये है, जिसके चुचके हुये चेहरेको देखनेसे मालूम होता है, कि वह कोई कोकीन खानेवाला है। बाप और माँके दिये एक-एक जेवरको बेंचकर डोराने बच्चोंको खिलाया। उन्हें अपनी आँखोंके सामने तड़पते वह कैसे देख सकती थी? पहले जेवरोंपर उसने उधार लिये, फिर चिरौरी-मिनतीसे जहाँ भी उधार मिल जाता, वहाँसे लाती। लोगोंका बरतन मलती, झाड़ू देती, लेकिन छ-छ सात-सात पेट इतनेसे कैसे भरते?

डोराने अपने सारे कपड़ोंको भी बेच खाया, लेकिन नकली रेशमकी एक नीली पुरानी साड़ी और एक फटा-सा बूट अब भी उसके पास है। घरमें रहते मैला-कुचैला लपेटे रहती है, लेकिन जब बाहर निकलती है, तो उसे यह पसन्द नहीं आता, कि उन्हीं कपड़ोंमें दूसरोंके सामने जाये। अब भी यदि कहीं दो-चार आने उधार मिल जाते हैं, तो इन्हीं कपड़ोंके भरोसे। इस साल बड़े उदारहृदय दम्पती उसके पासकी कोठीमें आकर ठहरे। डोराको भीख माँगनेकी आदत नहीं है, यद्यपि वह ऐसी स्थितिमें पहुँच गई है, जब कि भीख माँगना उसके लिये अनिवार्य है। भीख माँगनेकी जगह वह उधार माँगती है। उदारहृदय पुरुषसे उसने आठ आने उधार माँगे थे। वह जान गये, यह झूठ बोल रही है, उधारके पैसे लौटनेवाले नहीं हैं। यदि वह सच बोलती, या उसकी स्थितिका पता होता, तो उक्त सज्जनकी दयालुतासे वह वंचित न रहती। उन्होंने उसे दुत्कार दिया और वह अपना-सा मुँह लेकर रह गई।

डोराकी चार लड़कियाँ और १०-११ महीनेका पाँचवाँ लड़का है। उनमें कोई काले नहीं हैं, सभी गोरे-गोरे हैं, यद्यपि गरीबीकी कालिख सबके मुँहपर है। बड़ी लड़की ११ सालकी है। भूख लगनेपर सभी डोराके पास आकर रोते हैं। वह खीझ जाती है, लेकिन समझती है, मेरे सिवा इनका कौन है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'। वह कुमाता नहीं है, उसके दुःखोंमें वृद्धि

होनेका एक यह भी कारण है। मान हो या अपमान, काम करके हो, या उधार माँगके, जैसे भी हो, वह अपने बच्चोंको पालना चाहती है। यह बच्चे अवसर पानेपर क्या हो सकते हैं, इसे कौन जानता ? लेकिन, जब उनके पेटका ठिकाना नहीं, पढ़नेके लिये अवसर नहीं, तो वह कैसे कुछ बन सकते हैं ?

डोरा बाजारकी सड़कके पिछवारे एक मुफ्त मिली हुई कोठरीमें रहती है। उसमें ही उसका पति और दो-एक और पुरुष रहते हैं, जो शायद उसके देवर हैं। सीजनमें उन्हें कहीं नौकरी कभी-कभी मिल जाती हैं। डोरा सबको खाना बनाकर खिला देती है। सब उसी कोठरीमें रहते हैं, कमसे कम सीजनके बाद। सीजनमें आध पेट खाना बच्चोंको मिल जाता है, लेकिन बाकी समय कैसे चलता है, इसे सोचना भी मुश्किल है। पासके कमरोंमें सैलानी लोग आकर रहते हैं, हर साल और हर सीजन नये चेहरे। यह डोराके लिये भी अच्छा है, नहीं तो उन्हीं आदमियोंसे उधारके नामपर बार-बार माँगना बेकार होता। गरीबकी व्यथा गरीब ही जानते हैं। पासके पंजाबी परिवारका नौकर देखता था डोराकी दशाको। अपने मालिकोंके जूठे बचे हुये खानेमेंसे वह उसे कुछ दे देता। जलनेसे बचा पत्थर कोयला भी डोराके लिये मिल जाता, और बँगलेके बाहर लगे हुये नलसे अपने टिनमें वह पानी भी भर लाती। पंजाबिन महिलाको रोज इस चीकट पहने स्त्रीको पानी भरकर ले जाते देखकर दया नहीं आई। उस दिन उसे उसने बुरी तौरसे फटकारा, जब कि डोराने आँखोंमें आँसू भरकर अपनी दीन-हीन अवस्थाको शब्दोंमें प्रकट करना चाहा। डोराके पिता-माता अच्छे रहे, जो इस जीवनको देखनेके लिये अब नहीं बच रहे हैं। डोरा भी कभी-कभी भगवान्से प्रार्थना करती है—मुझे भी माँ-बापके पास भेज दो। लेकिन गरीबकी प्रार्थना इतनी आसानीसे थोड़े ही स्वीकृत हो सकती है। उसकी काल-रात्रिका तो अभी मध्य भी नहीं मालूम होता।

१६. बिसुन

(१)

नेपालको लेते आसामसे लदाखतक भारतकी सीमा तिब्बत अर्थात् चीन-गणराज्यसे मिलती है। दोनों देशोंकी सन्धिपर वहाँ प्राकृतिक दृश्य प्रायः सभी जगह एक-ब-एक परिवर्तित होते हैं। मालूम होता है, हम किसी दूसरी दुनियामें आ गये। कुछ ही मील पीछे हम वृक्ष-वनस्पतियोंसे लदे हरे-भरे पर्वतोंको देखते थे, अब उनका अभाव-सा है, और यात्रीके लिये ईंधन एक बड़ी समस्या हो जाती है। वह अधिकतर पशुओंके सूखे कंडेके रूपमें ही मिलता है। हमारे मैदानी लोग तो कंडेके कारण भूखे ही मर जायँ, लेकिन तिब्बती यात्री अपने साथ छोटी-सी भाथी जरूर रखते हैं, जिसके द्वारा कृत्रिम रूपसे आक्सीजनको भीतर डाल उसे तेज कर सकते हैं। कनम् इसी तरहके प्राकृतिक सन्धि-स्थानपर बसा हुआ है। मानसरोवरके भाई रावणह्रदसे निकलनेवाली सतलज अपने नाम शतद्रु (सौ गुना दौड़ लगानेवाली) को चरितार्थ करती नीचे बह रही है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि कनम् गाँवमें खड़े होकर आप उसके घर्-घर् स्वरको सुन सकते हैं और उसे घग्घर या घाघरा नाम दे सकते हैं। सतलजके पासतक पहुँचनेमें एक कोसकी उतराई उतरनी पड़ेगी, जो कितनी ही जगहों ऐसी भयानक हैं, कि पहाड़ी लोग ही हिम्मत कर सकते हैं। कनम् गाँवके पास होती सतलजसे पर्वतपृष्ठके ऊपरतक जो रेखा खिंचती है, उसकी एक ओर देवदार और धुपीके दरख्त हैं—जो असावधानीके कारण कहीं-कहीं बिरल हो गये हैं और कहीं-कहीं देवदार वनका रूप लेते हैं। तिब्बत-हिन्दुस्तान सड़कको पकड़ करके ऊपरकी तरफ चलें, तो एक ही दो मोड़के बाद आपको वृक्षोंसे रहित पार्वत्यभूमि दिखाई पड़ेगी। इसमें घास जरूर है, जो सभी पशुओंकी खाद्य नहीं है, और न बहुत घनी है। इनमें कुछ बहुमूल्य औषधियाँ हैं, अगुरु जैसी सुगन्धीवाली झाड़ियाँ भी यहाँपर हैं। तेज चलनेपर कनम्से एक दिनमें भारतके अन्तिम गाँव नमग्यामें पहुँचा जा सकता है, जिससे एक-दो ही

मीलपर सतलजमें गिरनेवाला वह सूखा नाला है, जिसे दोनों तरफके स्थानीय लोग भारत और तिब्बतकी सीमा मानते हैं, यद्यपि अंग्रेजी सरकार और तदनुयायिनी भारत सरकारने इस सीमाको अपने नक्शोंमें आज भी रेखाँकित नहीं किया है। सतलजके साथ-साथ तिब्बत-हिन्दुस्तान-सड़क नम्ग्यामें जाकर समाप्त हो जाती है। व्यापारियोंको अगला तिब्बती गाँव शिप्की मिलता है, लेकिन वहाँ सतलजके किनारे-किनारे आगे नहीं बढ़ा जा सकता। सतलजने पहाड़को काटकर ऐसी सीधी दीवार खड़ी कर दी है, जिससे चलना मनुष्य और पशुके लिये खतरनाक है। इसीलिये एक दूसरी छोटी नदीके किनारे-किनारे ऊपर चढ़कर एक डाँड़े (जोत्) को पारकर तिब्बतके भीतर घुस शिप्कीमें पहुँचना पड़ता है।

कनम्से अगला गाँव स्पू काफी बड़ा गाँव है। पादरियोंने तिब्बतकी सीमासे चार घंटेके रास्ते हीपर यहाँ अपना अड्डा जमाकर यहाँके तिब्बती-भाषाभाषी लोगोंको ईसाई बनानेकी कोशिश की, मिडल स्कूल और अस्पताल भी खोल दिया था। उनके प्रभावसे अंग्रेजी सरकारने स्पूमें डाकखाना और डाकबंगला भी खुल दिया। लेकिन तिब्बतसे आनेपर वृक्ष-वनस्पति-क्षेत्रके भीतर पड़नेवाला पहला गाँव कनम् ही है। प्राकृतिक सीमा ही यहाँसे नहीं शुरु होती, बल्कि भाषाकी सीमा भी यहींसे आरम्भ होती है। कनम्के लोग किरात भाषावंशकी कनौरी (किन्नर) भाषाको बोलते हैं, जो कि मारछी, राज-किरात, मगर, गुरुंग, तमंग, नेवार, लिम्बू, याखा, लेप्चा आदि भाषाओंकी सहोदरी है। पूर्वके किरात-वंशज लोगोंकी आँखों और गालोंपर मंगोलायित मुखमुद्रा अधिक है, यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं, कि उनका किसी तरहका चीन-भाषासे सम्बन्ध है। कनौरमें मंगोलायित मुखमुद्राकी छाप कम मिलती है, बल्कि यदि कनम्से सतलज पार उतर जायें, तो बहुतसे गावोंमें उसका नितान्त अभाव है। वहाँके लोग गोरे, लम्बी नाकों और लम्बी खोपड़ीवाले शुद्ध खस होते हैं। पर, कनम् तिब्बतसे आनेके मुख्य रास्तेपर हजारों वर्षोंसे है। कई शताब्दियोंतक पश्चिमी तिब्बतके राजाओंका यहाँपर शासन था। पश्चिमी तिब्बतके एक बहुत शक्तिशाली अवतारी लामा—लो-छेन् रिम्पो-छे-का केन्द्रीय मठ यहींपर है। कनौरके लोग अधिकतर अब भी बौद्ध हैं। कुछ

नीचेके उनके भाई ब्राह्मणोंको पुरोहित मानने लगे हैं, पर उनमें भी लामाओंका सम्मान बिल्कुल उठा नहीं है। कहा जा सकता है, केवल राजपूत बननेका लोभ उन्हें ब्राह्मणोंकी ओर खींचता है। जहाँ तक कनम्का सवाल है, वहाँ केवल बौद्ध-धर्मको ही माना जाता है।

प्रकृतिने कनौरको ऐसी स्थितिमें बनाया है, कि लोगोंको आधा घुमन्तू जीवन बिताना पड़ता है। भेड़-बकरियोंका पालन अब भी वहाँके लोगोंकी जीविकाका एक मुख्य अंग है, जिसमें सहस्राब्दियोंसे पश्चिमी तिब्बतका व्यापार भी शामिल हो गया है। यहाँ सतलज सबसे नीची जगहपर भी पाँच-छ हजार फुटपर बहती है, और गाँव उससे उतने ही और ऊँचेतक चले गये हैं। नम् दस हजार फुटके करीब ऊँचाईपर है। जाड़ोंमें यहाँ बर्फ पड़ जाती है, जिसके कारण वनस्पति-क्षेत्रमें भी पशुओंके लिये घास-चारेके लिये केवल तिलौंज (ओक) की सदा हरी रहनेवाली कँटीली पत्तियाँ ही रह जाती हैं। तिलौंजोंको गिन-गिनकर लोग उसी तरह अपनी मिलकियत बनाते हैं, जैसे मैदानमें गाँवके लोग अपने बगीचेके आमके वृक्षोंको। वह तिलौंजकी पत्तियोंको बर्फ पड़ते ही खिलाने नहीं लगते, बल्कि जमा किया हुआ घास-चारा जब खतम हो जाता है, तब उनपर हाथ लगाते हैं। पर, यदि कनौरे लोग अपने सभी पशुओंको जाड़ोंमें वहाँ रखना चाहें, तो किसी तरह भी उन्हें भूखों मरनेसे नहीं बचा सकते। इसीलिये घरके आधे लोग जाड़ाके आगमनसे पहले ही अपने पशुओंको हाँके शिमला, मंडी, और देहरादूनके जंगलोंतक चले जाते हैं। बर्फके न पड़नेके कारण घास-चारा वहाँ सुलभ होता है, और मिल जानेपर, अपने भेड़-बकरियोंपर कुछ ढुलाईका भी काम कर लेते हैं। किन्नर नर-नारीको बचपनमें ही निचले पर्वतोंकी भूमि और वहाँके लोगोंको देखनेका मौका मिलता है, लेकिन लड़कियाँ या स्त्रियाँ शायद ही कोई नीचेकी भाषा सीखती हैं। जाड़ेके आते ही यह लोग नीचेकी ओर जाते हैं। उसी तरह वसन्तके आगमनपर इनकी यात्रा ऊपरकी ओर होती है। मईसे पहले ही नीचे गये लोग भी अपने गाँवमें पहुँच जाते हैं, और बर्फसे खाली खेतोंको जोतकर बोआई शुरू करते हैं। जून आते ही फिर इनकी यात्रा ऊपरकी ओरको होती है, और शिप्की या दूसरे डाँड़ोंको पारकर भेड़-बकरियोंपर विनियमके लिये आवश्यक अन्न या दूसरी चीजोंको लेकर

वह पश्चिमी तिब्बतके पशुपालोंके पास पहुँचते हैं। इस प्रकार वहाँ जाड़ोंको देहरादूनके जंगलोंमें और बरसातको मानसरोवरकी ठंडी भूमिमें बितानेवाले लोग बहुत मिल सकते हैं। तिब्बतका व्यापार उनकी आमदनीका एक बड़ा साधन है। अपने कपड़ोंके लिये वह वहींकी भेड़ोंके नर्म ऊनपर निर्भर रहते हैं। अपने व्यवहारसे अधिक होने पर वह ऊनको कानपुर या नीचेकी दूसरी मिलोंके एजेन्टोंके हाथमें बेंच देते हैं।

(२)

बालक बिसुन् किन्नरके इसी कनम्में पैदा हुआ, जिसके कारण घुमक्कड़ी उसके खूनमें थी। माँकी गोदमें उसने कभी देहरादून और कभी मण्डीके जंगलोंमें जाड़ा बिताया था। कुछ और सयाना होने पर जब वह अपनी भेड़-बकरियोंको चराने लायक हुआ, तो वह जाड़ोंमें अपने किसी बापके साथ नीचेके जंगलोंमें आता। किन्नर लोग प्रकृतिकी कठोरतासे त्राण पानेके लिये बहुत पहले ही समझ गये थे, कि सन्तानका बढ़ाना गरीबी और भुखमरीको बढ़ाना है। इसका गुर भी अपनी जैसी भूमिवाले दूसरे देशोंकी तरह उन्होंने पाण्डव-विवाहको समझा, और वहाँ घर-घर पंचपाण्डव और घर-घर द्रौपदी आमतौरसे होती हैं। इस सामाजिक नियमको राज्यने भी माना था कि सब भाइयोंका एक विवाह हो, और यदि कोई भाई इस नियमका उलंघन करे, तो उसे पैतृक उत्तराधिकारसे वंचित कर दिया जाये। इसलिये वहाँ बापू, चचा, काका न कहकर बड़े बाप, छोटे बाप कहनेका रवाज है। बिसुनने वसन्त और वर्षाके दिन कभी कनम्से ऊपरी और कभी निचले जंगलोंमें बिताये। जनजातीय जिन्दादिली उनके रग-रगमें थी। गाते-नाचते काम करते दिन बीतते मालूम नहीं हुये। बरसात खतम हो जाती—और उनके गाँवमें सालमें मुश्किलसे १०-१२ इंच वर्षा होती—फिर घरमें एकाध आदमियोंको छोड़कर नीचेकी यात्रा शुरू हो जाती।

यद्यपि तिब्बतके सीमान्तके ये भारतीय घुमक्कड़ीसे सुपरिचित हैं, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं कि इनमें सभी घुमक्कड़ होते हैं, सभी सूखे पत्तोंकी तरह हवाके ऊपर प्लवन करनेके लिये तैयार रहते हैं। उनके घूमनेकी एक परिधि होती है, जिसका केन्द्र उनका अपना गाँव होता है। पांडव-विवाहसे एक ही

द्रौपदीके विवाहित होनेके कारण बहुत सी स्त्रियोंका अविवाहित रह जाना स्वाभाविक है, जिनके लिये बौद्ध धर्मने भिक्षुणी बननेका रास्ता निकाल दिया है। हर घरमें वहाँ दो चार भिक्षुणियाँ मिल सकती हैं। कनम्में उन्होंने अपना एक अलग मठ बना लिया है, जिसमें वह सामूहिक और स्वावलम्बी जीवन बिताती हैं, उन्हें न घरवालों और न गाँववालोंकी दयापर निर्भर रहनेकी आवश्यकता है। वह स्वयं खेतोंमें काम करती हैं, अपनी फसलको बटोर लाती हैं। उनमें कुछ पूजा-पाठ भरके लिये पढ़ भी लेती हैं—श्रद्धालु तो सभी होती हैं। भिक्षु भी प्रायः हरेक घरमेंसे एक दिखाई पड़ता है, उनमेंसे कितने ही विद्याध्ययनके लिये ल्हासातककी दौड़ लगाते हैं। बिसुन्के पड़ोसके कुछ लड़के तिब्बतमें पढ़ने गये थे, जिनमें कुछ वहाँसे लौटकर गाँवकी बड़ी गुम्बा (विहार) में रहते थे। बिसुन स्वयं क्यों नहीं भिक्षु बना, इसमें शायद गुंबासे अधिक गाँवके आनन्दी जीवनका आकर्षण उसके मनमें काम कर रहा था। १०–१२ वर्षके लड़के सिर मुड़ा लाल कपड़े पहन श्रामणेर (गेछुल) बनते ही उत्सवप्रिय किन्नर-जीवनसे वंचित हो जाते हैं। बिसुन इतना त्याग करनेके लिये तैयार नहीं था।

१२–१३ वर्षके बिसुनको अपने बडे बापके साथ व्यापारके लिये पहले-पहल तिब्बत जाना पड़ा था। नीचेकी ओर अपनेसे अधिक हरी-भरी भूमिको वह देख चुका था, लेकिन तिब्बतकी ओरकी प्रकृति अभी उसके लिये अपरिचित थी। सुमनम्से आनेवाली नदीको पार करते समय उसने देखा कि हम चटियल पहाड़ी भूमिमें पहुँच गये हैं। इसके बारेमें बापसे पूछा भी, लेकिन वह इससे अधिक क्या जवाब दे सकता था कि यहाँकी भूमि ऐसी ही है। पानी लानेवाले बादल दूर दक्षिणके समुद्रसे चलते हैं, रास्तेमें बड़े-बड़े पहाड़ आकर उनके रास्तेको रोक देते हैं, और बहुत थोड़े ही बचकर आगे निकल पाते हैं, जिनमें भी कितने ही बहुत ऊँचाईपर पहुँच जानेके कारण पानी गिरानेमें असमर्थ हो जाते हैं। इसी वर्षाकी कमीके कारण यहाँ वनस्पतिकी दरिद्रता है। यह सब बातें अभी बापकी समझसे दूर की थीं। गदहों-बकरियों-भेड़ोंके साथ चलनेवाले व्यापारियोंकी गति धीमी होती है। वह गाँवोंमें ठहरना भी नहीं चाहते, क्योंकि वहाँ उनके पशुओंके चरनेके लिये सुविधा नहीं होती। लेकिन, रास्तेमें

पड़ने पर गाँवके भीतरसे तो गुजरना ही पड़ता है। पहले ही गाँव स्पूमें बिसुनने देखा, कि वहाँ उसकी भाषा कोई नहीं समझता। अबतक चार-पाँच जाड़ोंको वह नीचे बिता चुका था, इसलिये हिन्दीके कुछ शब्द उसे याद थे, उसीके द्वारा वह स्पूके किसी आदमीसे बातचीत कर सकता था। नमग्यातक उसकी टूटी-फूटी हिन्दी सहायक रही, लेकिन शिप्की पहुँचते ही अब उसे गूँगा बननेके लिये मजबूर होना पड़ा—भाषा ही तो आदमीको वाचाल बनाती है। बिसुनको ख्याल आने लगा, यदि मैं गुम्बा (बिहार) में गया होता, तो वहाँके लोगोंमें रहते कुछ तिब्बती भाषा सीख लेता। लेकिन साथ ही गुम्बामें जानेके लिये जितने त्यागकी अवश्यकता थी, उसके लिये वह तैयार नहीं था। अब तो यात्रा हीमें उसे सीखना था।

शिप्की डाँड़ेके बाद अब वह पूरी तौरसे तिब्बतकी भूमिमें था। जहाँके ही गाँव १४ और १५ हजार फुटकी ऊँचाईपर आधे आसमानमें टँगे हुये हैं। सर्दीकी उसे पर्वाह नहीं थी, क्योंकि कनौरे लोग बारहो महीने ऊनी कपड़े पहननेके आदी हैं। बाप और गाँवके कुछ और आदमियोंने किसी गाँवके बाहर अपनी सूती छोलदारी लगा ली, जिसके किनारेपर १०-१० सेर अनाजकी जोड़ी बोरियोंकी छल्ली लगा दी। फिर वह अपने परिचितों-मित्रोंकी सहायतासे ऊन या पशमसे अपनी चीजोंका विनिमय करने लगे। भेड़ोंका ऊन इन्हें अपने हाथों काटना था। बिसुन भी अपने बापके काममें मदद देता। वहाँ अधिकतर बातचीत तिब्बतीमें ही होनेके कारण उसके कानोंमें भी एकाध शब्द अटक जाते। दो महीने बाद तिब्बतकी यात्रासे वह लौटा, तो उसे मालूम हुआ, कि मैं वस्तुतः किसी यात्रापर गया था। सीमान्तके सभी लोग—चाहे नीती और मिलम जैसे ब्राह्मणोंके भक्त अर्थात् जात-पाँतकी कठोरता रखनेवाले हों—तिब्बतमें जाने पर वहाँके लोगोंके साथ खान-पान करते हैं, यह जानते हुये भी, कि तिब्बती लोगोंको गोमांससे कोई परहेज नहीं। कनौर, नेलंग, दरमा जैसी जगहोंके लोग—जो कि अब भी बौद्ध-धर्मको मानते हैं—तो इस तरहके छूत-छात और भक्ष्याभक्ष्यका कोई ख्याल भी नहीं रखते। उनके बड़े-बड़े गुरु तिब्बतसे आते हैं, जिनको देवता समान पूजा करना वह अपना कर्त्तव्य समझते

हैं, इसलिये वह उन्हें म्लेच्छ कैसे कह सकते हैं ? बिसुन इस बातमें बहुत सौभाग्यशाली था।

जिन लोगोंका जीवन अधिक स्वाभाविक होता है, उनका बचपन तथा जवानी भी अधिक लम्बी होती है, क्योंकि नाच-गाने और विनोदके बहुतसे साधन उनके जीवनके अंग बने रहते हैं। बिसुन अभी इसी समय अपनी उमरसे पाँच-वर्ष कमहो का था। उसने लौटकर अपने साथियोंसे यात्राके नये अनुभवोंका अतिरंजित वर्णन किया। जिन्हें अभी तिब्बत जानेका अवसर नहीं मिला था, उनके सामने अपने गिने-चुने शब्दोंको बुरे उच्चारणके साथ दोहरा कर उसने यह शेखी भी बघाड़ी, कि मैं हुणियोंकी भाषा जानता हूँ। हमारे सीमान्तके भीतरके तिब्बती-भाषाभाषी लोगोंको किन्नर लोग जाड़ (जाट) कहते हैं, और सीमापारके तिब्बतियोंको हुणिया या हूण। हूणोंका सम्बन्ध तिब्बती लोगोंके साथ क्यों जोड़ा गया ? वास्तविक हूण भारतवर्षमें कभी आये ही नहीं। वह उभय मध्य-एसियासे उत्तर ही उत्तर रहे। जो यन्ता या हेपताल भारतमें आये, उनके श्वेत-हूण नामका यही अर्थ था, कि उनका सम्पर्क हूणोंसे देरतक रहा। बिसुनने अपने चरवाहे साथियों और साथिनोंको बातें ही नहीं बतलाईं, बल्कि साथ लाई मट्ठेको सुखाकर सूखे चमड़ेकी तरह चीमड़ छुरेकी छोटी-छोटी टुकड़ियोंको भी उनमें बाँटा।

(३)

बिसुन अपने बापके साथ कई सालोंतक तिब्बत जाया करता। वह अब २४ वर्षका जवान था। यदि जेठा भाई होता, तो सम्भव है अगले जीवनका उसे ख्याल न आता और उसे अपने घरको सम्भालना पड़ता। तिब्बतकी इन यात्राओंमें वह तिब्बती भाषा और चाल-व्यवहार समझनेमें पक्का हो गया और हर साल उस समयकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा करता, जब कि उसे कैलास-मानसरोवरकी ओर प्रस्थान करना पड़ता। पश्चिमी तिब्बतके साथ व्यापार करनेवाले केवल कनौर जैसे स्थायी निवासी लोग ही नहीं थे, बल्कि खम्बा लोगोंका तो सारा जीवन ही इसी व्यापारपर आधारित था। खम्बाका शब्दार्थ है खामवाला—खाम चीनकी सीमापर अवस्थित तिब्बतका पूर्वी प्रदेश

है। इनके पूर्वज कभी खामसे आये हों, इसकी सम्भावना कम है, क्योंकि इनकी भाषा और वेष-भूषापर उसका कोई प्रभाव नहीं देखा जाता। खम्बा लोग पूरी तौरसे घुमन्तू हैं। जाड़ोंमें वह दिल्ली, अमृतसर और मैदानके दूसरे शहरोंमें पहुँचते हैं, और गर्मियोंमें मानसरोवरकी भूमि उनके पैरोंके नीचे रहती है। हलकी सूती छोलदारी उनका बारहो महीनेका घर है। घड़ीकी सूईकी तरह हर महीने उनके पैर एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुँचते रहते हैं। वह किनकी प्रजा हैं, यह कहना मुश्किल है। हमारे सिरकीवाले मैदानी यायावर सहस्राब्दियोंसे पश्चिमी एसियाके भिन्न-भिन्न देशोंमें अपने बन्दरों-भालुओं या छोटी-मोटी दूसरी क्रय-विक्रयकी चीजोंको लिये घूमा करते थे। जबतक राजनीतिक और दूसरी कड़ाइयाँ चीनकी महादीवार जैसी बाधक नहीं बन गयीं, तबतक उनका सम्पर्क अपनी जन्मभूमिसे रहा, पीछे पूर्वकी ओर सिन्धु पार करनेकी जगह वह पश्चिमकी ओर बढ़ते गये, और मध्य-एसिया और ईरानमें लोली, रूसमें सिगान, युरोपके कितने ही देशोंमें रोमनी, इंगलैण्डमें जिप्सी और स्वयं अपनी भाषामें रोम (डोम) के नामसे प्रसिद्ध हुये। यद्यपि चेहरे-मोहरेमें खम्बासे रोम भेद रखते हैं, लेकिन दोनोंके जीवनमें बहुत समानता है। खम्बा लोगोंको अभीतक इसकी जरूरत नहीं थी, कि वह अपनेको चीन या भारतमेंसे किसीकी प्रजा घोषित करें। लेकिन, अब हमारी सीमापर लाल रेखा खिंच गई है, इसलिये उनके स्वच्छन्द जीवनका प्रवाह अब उसी तरह चल नहीं सकता। मधुपुरीमें बारह-चौदह परिवार खम्बा लोगोंके बस गये हैं। वह तिब्बतकी दस्तकारीकी कुछ चीजें लाकर गर्मियोंमें यहाँ आनेवाले देशी-विदेशी सैलानियोंके हाथ बेचते हैं, और जाड़ोंमें दिल्लीकी किसी सड़कपर अपनी चीजोंको छान देते हैं। तिब्बतमें नया परिवर्तन होते ही हमारी पुलिसकी निगाह उनके ऊपर गई, और दिल्लीमें पहले ही साल मंगोलायित मुखमुद्रावाले जो दस-बीस आदमी मिले, उनके लिये जबरदस्ती विदेशी कहकर फोटोके साथ पास-पोर्ट बना दिया गया। उस साल मधुपुरीके इन लोगोंमें बड़ी खलबली मच गई। उन्हें तिब्बत या चीनकी प्रजा कहा गया। कितनोंहीने तिब्बतको कभी देखा नहीं, यद्यपि घरमें वह तिब्बती भाषा बोलते हैं।

तिब्बतकी सरकारसे खम्बा लोगोंका इतना ही सम्बन्ध था, कि तिब्बतमें

जाने पर वहाँके अधिकारियोंको वह भारतकी कोई सौगात दे देते थे। भारतमें वह भी नहीं करना पड़ता था। लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं, कि उनकी कोई सरकार नहीं थी। उनका राजा अपना गोवा (मुखिया) होता था, जिसे मानने-न-माननेके लिये हरेक स्वतन्त्र था, किन्तु वह अपनी स्वतन्त्रताको हर वक्त बरत नहीं सकता था। गोवा उनके शासन-यन्त्रका निरंकुश मुखिया नहीं था, इसलिये अयोग्य गोवाको खम्बा जनसाधारण उसके पदसे हटा सकता था। लेकिन, अपनी जातिके भीतर कोई अराजकता नहीं फैला सकता था। गोवा सदा कोई धनी व्यापारी होता था। खम्बोंका स्थायी निवास न होनेका यह मतलब नहीं, कि उनकी अपनी भूमि-सीमा नहीं होती। पैरके नीचे किसी देशकी भी जो भूमि आ जाती, वही उनकी भूमि थी। सहस्राब्दियोंके तजर्बे और झगड़ोंके कारण उन्होंने अपनी-अपनी भूमिकी सीमा बाँध ली। कनौरके खम्बे वे थे, जो मानसरोवरसे सतलज होते शिमला और मण्डी तथा नीचेतक जाया-आया करते थे। इनका अपना अलग गोवा था। इसी तरह गंगोत्रीसे आनेवाली भागीरथीके किनारे होकर नैलंगके रास्ते तिब्बत जानेवाले खम्बोंका अलग गोवा था। भारतसे पश्चिमी तिब्बत जानेवाले सभी भागोंके खम्बोंके अपने अलग-अलग मण्डल और संगठन थे, और अब भी हैं।

खम्बाका जीवन बिसुनको बहुत आकर्षक मालूम हुआ। उन्हें कोई गाँवका खूँटा बाँधनेवाला नहीं था, न खेत अपनेसे चिपकाके रख सकता था। एक खम्बा तरुणके कथनानुसार—"हम जब तिब्बत जाते हैं, तो वहाँ चावल-मिठाई खाते हैं, जो कि वहाँके लोगोंके लिये दुर्लभ है; और नीचे जाते हैं, तो वहाँ भी महार्घ खाद्य भी हमारे लिये सुलभ होते हैं। हमारे जैसा खाना-कपड़ा न मानसरोवरके रहनेवाले खा सकते हैं, और न नीचेवाले। यदि एक जगह बस गये, तो हम इन दोनोंसे वंचित हो जायेंगे।" बिसुनसे किसी खम्बा तरुणने अपने जीवनकी महिमा गाई या नहीं, यह नहीं कह सकते। किसी गन्दे गाँवमें न रह वह बाहर खुले जंगल या उन्मुक्त भूमिमें अपना डेरा डालते। मोटे कपड़ेकी छोलदारी उनके लिये पर्याप्त थी, क्योंकि जहाँ अधिक वर्षा होती है, वहाँ वह वर्षामें रहते ही नहीं। बिसुनका खम्बोंसे परिचय अपने गाँवसे ही था। ऊपर जाते या नीचे लौटते समय उनकी छोलदारियाँ कनमूमें सालमें दो बार

जरूर पड़ा करतीं। उस वक्त वह अपनी छोटी-मोटी चीजें बेंचनेके लिये गाँवोंमें भी जाते। लेकिन, इन परिचित खम्बोंसे बिसुन(किसन)को कुछ लेना-देना नहीं था, क्योंकि वह कनौरको छोड़कर दूरकी उड़ान करना चाहता था। वह गुम्बामें भिक्षु होकर तिब्बतकी यात्रा कर सकता था, यद्यपि तिब्बतकी सीमा उसके गाँवसे दो ही दिनपर थी, लेकिन भिक्षुओंके पढ़नेके सभी बड़े-बड़े विहार ल्हासाके पास हैं, जहाँ तिब्बतके भीतरसे जाने पर महीनों लग जाते। इसलिये ल्हासाके यात्री भी नीचे उतर कर रेलसे सिलिगोड़ी पहुँच वहाँसे कलिम्पोंग होते तिब्बतका रास्ता पकड़ते हैं। गाँवके लोगोंमें कोई-कोई तीर्थयात्राके लिये बोधगया या बनारस गये थे, लेकिन वही जिनके पास काफी पैसा था। बिसुन-को इतनी जानकारी भी नहीं थी, और न उसको उसके लिये जरूरत थी। वह एक बार हर सालकी तरह अपने बापके साथ च्याँगथाँग—पश्चिमी तिब्बतसे शुरू होनेवाला तिब्बतका उत्तरी विशाल निर्जन मैदान—के घुमन्तू मेषपालोंसे ऊन खरीदनेके लिये गया। भेड़ों, ऊन और दूसरी चीजोंकी बिक्रीके लिये वहाँ ग्यानिमा आदि कितनी ही मंडियाँ हैं, जिनमें कनौर आदिके व्यापारियोंकी तरह खम्बा लोग भी जाते हैं। बिसुन देखने-सुननेमें अच्छा तरुण था। उसकी आँखोंपर बहुत हल्की-सी मंगोल मुखमुद्रा थी। वह कुरूप नहीं बल्कि हमारे मापसे सुन्दर तरुण कहा जा सकता था। शरीरमें भी स्वस्थ और कदमें औसतसे ज्यादा लम्बा था। कई यात्राओंमें जानेके बाद अब वह तिब्बती भाषाको अपनी मातृभाषाकी तरह ही आसानीसे बोल सकता था। ग्यानिमामें कई दिन रहते-रहते उसकी घनिष्ठता एक खम्बा तरुणीसे हो गई, जिसे प्रेममें बदलते देर नहीं हुई। पिता यह कैसे पसन्द करता? उसके घरमें सभी लड़कोंकी सम्मिलित बहू पहलेहीसे मौजूद थी। खम्बा लोगोंके लिये नितान्त अपराधकी बात नहीं है, यदि कोई तरुण या तरुणी अपनी जमातसे बाहर ब्याह कर ले, पर वह इसे पसन्द नहीं करते।

एक दिन दोनों तरुण-तरुणी रातको ग्यानिमासे भाग निकले। जहाँ २०-२० मीलपर गाँव हो, दो रास्ता आने पर कोई बतलानेवाला न हो, वहाँ यह दुस्साहस था। पर, साहसी बिसुन उससे हिम्मत हारनेवाला नहीं था। उसने पहले भी कैलास-मानसरोवरकी तीर्थयात्रा की थी। दोनों तिब्बतके बौद्धोंके भी

उतने ही पवित्र तीर्थ हैं, जितना भारतीय हिन्दुओंके। भागनेका समय उन्होंने ऐसा निश्चय किया था, जब कि दोनोंके परिवारोंको तुरन्त नीचेकी यात्रा करनी थी। वह उन्हें ढूँढ़नेकी कोशिश करते, तो पहली बर्फ पड़ जानेसे पशुओं-प्राणियोंके प्राण संकटमें पड़ जाते।

(४)

शरीरसे मेंहनत करनेके वह आदी थे। बिसुन ही नहीं, उसकी प्रेमिका भी मन भरका बोझ पीठपर लादे तान छोड़ती चल सकती थी। गदहा, भेड़-बकरियोंको कैसे लादा और रखा जाता है, इसे भी वह अच्छी तरह जानती थी। २७-२८ वर्ष पहलेकी बात है। उस समय गरव्यांगके व्यापारी और खम्बा भी मानसरोवर-प्रदेशसे बहुत भारी परिमाणमें ऊन, सोहागा, चँवर और दूसरी चीजें नीचे बेंचनेके लिये ले जाते थे। बिसुन और उसकी बीबीको मजूरी मिलनेमें कोई दिक्कत नहीं हुई। दीवालीके आसपास अल्मोड़ामें लगनेवाले एक बड़े मेलेमें गये। अपने मालिककी भेड़ बकरियोंके बोझोंकी देखभाल करते उन्होंने अपनी पीठपर भी २५–३० सेरका बोझा ले रखा था, जिसमें उनकी अपनी बिक्रीकी चीजें थीं। दोनों ही के लिये नीचेके पहाड़ और मैदान अपरिचित नहीं थे। घुमन्तू तो अपरिचित स्थानको जितना पसन्द करते हैं, उतने परिचितको नहीं। मालिकके कामको खतम कर अपनी मजूरी ले रानीखेतके रास्ते काशीपुर पहुँच उसने अपनी चीजोंको बेंच तथा पासके पैसेसे आगेके लिये सौदा खरीदा। रास्तेहीमें दूसरे खम्बा मिले, जिनसे एक सस्ता गदहेका बच्चा मोल ले लिया। कपड़ेकी छोलदारी बिना पूरा खम्बा नहीं बना जा सकता, किसी खम्बासे सस्ते दाममें उन्होंने पुरानी छोलदारी भी खरीद ली, और अब पक्के खम्बा-दम्पती बन मानसरोवरकी यात्राके लिये तैयार हो गये।

जबतक बाकायदा वह किसी खम्बा जमातमें शामिल न हो जायें, तबतक उन्हें बड़ी दिक्कतोंका सामना करना पड़ता। बिसुनने अपने किसी खम्बा बापका नाम भी बतला दिया और उसकी बीबी तो खम्बा लड़की थी ही। पर, दरमा खम्बोंके तो वह लोग थे नहीं, इसलिये अपने बाकायदा विवाह तथा समाजमें प्रवेशके लिये उन्हें गोवा और दूसरे खम्बा-प्रधानोंकी स्वीकृति

लेनी जरूरी थी, जिसका अर्थ था शराब-माँसका खूब एक अच्छा भोज देना। पहले साल वह ऐसी स्थितिमें नहीं थे, कि छोटा भी भोज दे सकते, लेकिन खम्बा चौधरियोंके लिये इसकी जल्दी भी नहीं थी। उन्होंने भोजको आगेके लिये उठा रक्खा।

बिसुनने अब बाकायदा खम्बा-जीवन बिताना शुरू किया। कितने ही साल वह मानसरोवरसे नीचे दिल्लीतककी व्यापार-यात्रा करता रहा। भोज भी कर लिया, और अपने गदहे और दूसरे सामानको अपने मित्रोंके जिम्मे छोड़ दोनों बुद्धगया और बनारसकी तीर्थयात्रा भी कर आये। खम्बा लोग यद्यपि छप्पन हाँड़ीका भात खाते हैं, लेकिन वह छल और धोखा नहीं जानते। उनका काम इधरसे उधर छोटी-मोटी चीजोंको लेकर बेंचना और आरामसे जीवन बिताना है। बहुत कमही को आकांक्षा होती है गोवा जैसा धनी बननेकी। बिसुनको अपने घरवालोंसे मुलाकात होनेका डर नहीं था, क्योंकि उसका विचरण-मार्ग उनके रास्तेसे बहुत दूर था। बाप थोड़े ही दिनों बाद मर गया, नहीं तो वह अपने बेटेकी खोज लगानेकी फिकर जरूर करता। छोटे-बड़े भाई अब उसे भूल गये, जैसे वह उन्हें भूल गया। घरमें काफी खेत थे, कनमूमें अपना अच्छा खासा मकान था, बहुतसे ढोर और पशु थे। लेकिन, बिसुनके लिये उनका कोई आकर्षण नहीं था। उसे वर्त्तमान जीवन इतना पसन्द था, कि कनमूकी कभी याद भी नहीं आती थी।

(५)

गरब्यांगका खम्बा बना रहना बिसुनको बहुत दिनोंतक पसन्द नहीं आया। एक बार वह तिब्बती दस्तकारीकी क्युरियोकी कुछ चीजोंको दिल्ली बेंचने गया, उसे वहाँ गंगोत्री-नेलंगके खम्बा मिले, और मालूम हो गया, कि मानसरोवरसे दिल्ली पहुँचनेका यही सबसे सरल और सुगम रास्ता है। अब वह इस खम्बा जमातमें शामिल हो गया। एक जगहके खम्बा अपनी नागरिकताको दूसरी जगहमें परिवर्तित कर सकते हैं। बिसुन समझदार तरुण था, और मिलनसार भी, इसलिये उसे इस जमातसे अपना सम्बन्ध स्थापित करनेमें कठिनाई नहीं हुई। नई खम्बा-जमातमें शामिल होनेसे जाड़ोंमें दिल्लीके अंग्रेजों

और विदेशियोंके हाथ अपने क्युरियोके बेंचनेका ही सुभीता नहीं था, बल्कि मधुपुरी पहुँचना भी उसके लिये आसान हो गया। कुछ खम्बा-परिवार घुमन्तू जीवनसे ऊबकर मधुपुरीमें ही बस गये थे। वह मानसरोवरकी दौड़ नहीं लगाते, बल्कि अपने सम्बन्धी दूसरे खम्बोंसे चीजोंको लेकर उन्हें सीजनमें मधुपुरीमें बेंचते, और जाड़ोंमें दिल्लीमें। बिसुनने मधुपुरी भी देख ली, और दो-चार दिन सड़कके किनारे छाता तान अपनी कुछ चीजोंको फैलाकर बेंचा भी। लेकिन, उसने जिसके लिये अपना घर छोड़ा था, उस घुमन्तू-जीवनको छोड़कर मधुपुरीके खूँटसे बँधनेके लिये वह क्यों तैयार होता?

अनचेती बात भी हो जाती है। पहाड़ोंका रास्ता खतरेका है। एक बार बकरियोंके चलनेके रास्तेपर जाते समय बिसुनका पैर फिसल गया, वह सैकड़ों हाथ नीचे खड्डेमें जा गिरा। खबर लगते ही और खम्बोंने भी आकर उसे बाहर निकाला। घुमन्तुओंके अपने वैद होते हैं, और अपनी दवाइयाँ। बिसुनने उनकी चिकित्सामें रहकर अपने प्राणोंको ही नहीं बचाया, बल्कि वह स्वस्थ भी हो गया; लेकिन, कूल्हेकी हड्डी ठीक नहीं हो सकी, और वह हमेशाके लिये लँगड़ा हो गया। लँगड़ा होने पर भी कोई बात नहीं थी, यदि वह अमन्द गतिसे चल सकता। इतनी मन्द गतिसे अब वह दिल्लीसे मानसरोवरतककी मंजिल नहीं मार सकता था और उसने उसी साल मधुपुरीमें बस जानेका निश्चय किया।

मधुपुरीके एक दर्जन खम्बा लोगोंमें एक घरकी और वृद्धि हुई। बिसुन अपनी बीबीके साथ यहाँके सबसे पुराने बाजारमें चार हाथ चौड़ी दुकानकी कोठरी किरायेपर लेकर बैठ गया। खाना-पीना-मौज-करना यही खम्बोंका जीवन है। यदि नफा कुछ अधिक हो गया, तो उसीके अनुसार साखर्ची बढ़ गई, इसलिये खम्बा लोग बहुत पूँजी इकट्ठा नहीं कर सकते। बिसुन साखर्च था, लेकिन फजूलखर्च नहीं। उसने अपनी छोटी सी दूकानमें आसपासके पहाड़ी लोगों तथा सैलानियोंके उपयोगकी कितनी ही चीजें सजा दीं। उनमें जहाँ तिब्बती प्याले, चायके टोटीदार गड़वे, मूर्तियाँ थीं, वहाँ चीनकी कलाकी भी छोटी-छोटी कितनी ही चीजें थीं। सुई-धागा, बटन, चाकू, दर्पण, कंघी, बालमें लगानेके रंग-बिरंगे डोरोंसे लेकर गदहों और खच्चरोंके गलेमें

बाँधनेवाले घुँघरू तक सभी चीजें वहाँ मिल सकती थीं। कोठरीके पीछे चार हाथ लम्बी तीन हाथ चौड़ी एक और कोठरी और उसके बाद एक और उतनी लम्बी तीसरी कोठरी थी। उसके बाद एक चौथा छोटा-सा ओसारा था, जिसमें कोयलोंपर वह अपना खाना बना लिया करते थे। बिसुनका गाँव चावलका देश नहीं था, वहाँ गेहूँ, नंगे जौ या फाफड़की रोटी खाई जाती, आलू बहुत होता, और साग-सब्जियाँ भी मिल जातीं। लेकिन घुमन्तू-जीवनमें किसी एक जगहके भोजनपर आदमी आग्रह कैसे कर सकता है? बिसुन तिब्बतमें पहुँचता तो वहाँ नंगे जौ (ऊवा)का सतू खाना पड़ता, नीचे जाता तो चावल भी खा लेता। मांस रोज थोड़ा-बहुत मिलना चाहिये। अब मजबूर हो, बिसुनको मधुपुरीमें रहना पड़ा, लेकिन अब भी पुराना घुमक्कड़ी जीवन याद करके उसे बहुत अफसोस होता है।

यहाँ बैठनेके दो ही साल बाद दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया। मधुपुरीका भाग्य खुल गया। बड़ी संख्यामें अंग्रेज और अमेरिकन सैनिक आने लगे, जिन्हें तिब्बत और चीनकी कलाकी चीजें बहुत प्रिय थीं। बिसुन अपनी दूकानपर बैठता, और उनकी बीबी अपनी पीठपर चीजोंको बक्समें डाले होटलोंमें फेरी करती। होटलके पास उसकी दूकान छन जाती, और रोजकी बिक्रीमें १५-२० रुपयेका नफा रहता। बिसुन अकेला नहीं था, उन्हीं तरहकी चीजें बेचनेवाले और भी खम्बा लोग मधुपुरीमें बसे हुये थे, और कुछ केवल सीजनके लिये भी वहाँ आकर सड़कके किनारे अपनी चीजें बेंचते। लड़ाईके वक्त जितना अच्छा अवसर मिला था, उससे बिसुन यदि चाहता तो १०-१५ हजारका अदमी बन जाता।

१९४७का अगस्त आया, अंग्रेज चले गये। अब कुछ विदेशी मिश्नरी और दिल्लीके दूतावासोंके थोड़ेसे गौरांग स्त्री-पुरुष ही सीजनमें यहाँ आते थे। उनके बलपर बिसुन अपनी चीजोंको कैसे बेच सकता था? मधुपुरीके और दूकानदारोंकी तरह खम्बोंके ऊपर भी साढेसाती सनीचर चढ़ा। यहाँ रहते जब अपनी पूँजीमेंसे खाना पड़ता, तो मनमें आशा रहती, कि जाड़ोंमें दिल्ली जानेपर शायद कुछ काम बन जाये। पर, दिल्ली जानेपर भी उससे बेहतर हालत नहीं होती। चायके कलापूर्ण बरतन तथा जिन दूसरी चीजोंको तिब्बत और

चीनी कहकर॰ खम्बा लोग बेंचते हैं, वह अधिकतर अमृतसर या दिल्लीमें ही बनती हैं। यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं, कि वह शोभा और गुणमें असली चीज से कम हैं। हाँ अगर कोई दाम देनेके लिये तैयार हों, तो तिब्बत या चीनकी बनी असली चीजें भी उनके पास मौजूद रहती हैं।

अंग्रेजोंके जानेके बाद मधुपुरीमें और व्यापारियोंकी तरह खम्बा लोगोंका भी जीवन संकटापन्न है। आज भी वह अपने शरीरकी ही रक्षित चर्बीको खा रहे हैं, और उनके भोजन-छाजनका स्तर काफी गिर गया है। लेकिन, जबसे चीनका लाल रंग तिब्बतमें पहुँचा, तबसे इनकी कठिनाई और बढ़ गई। हमारे सीमान्तोंके ऊपर कड़ाई रखी जाने लगी, तो उसका असर दिल्लीमें जानेवाले मधुपुरीके खम्बोंपर पड़ा। खम्बा बनानेवाली बीबी अपने एक लड़केको छोड़कर चल बसी, फिर बिसुनने दूसरी खम्बा स्त्रीसे शादी कर ली। उसके साले, सास और दूसरे सम्बन्धी भी कठिनाईमें हैं। इसी समय १९५१ में जब बिसुन (किसन) दिल्ली गये, तो पुलिसने जबर्दस्ती उन्हें चीनी प्रजा कहकर फोटो-सहित विदेशी पासपोर्ट या प्रमाणपत्र दे दिया। उस साल जब खम्बा जाड़ोंको बिताकर मधुपुरी लौटे, तो उनमें बड़ी खलबली मची हुई थी। दिल्लीमें पुलिस-अफ़सरसे उन्होंने कहा—हम चीन या तिब्बतके नहीं हैं, हम तो यहींके रहनेवाले हैं। मधुपुरीमें ही हममेंसे कितने पैदा हुये। पुलिस अफसरका कहना था—नहीं, तुम्हारा चेहरा ही बतलाता है, कि तुम हमारे देशके नहीं, बल्कि तिब्बतके हो, अतएव चीनके नागरिक हो। तुम्हें इस कागजको ले जाकर अपने यहाँके पुलिसको दिखलाना और उनकी देख-रेखमें रहना पड़ेगा। यह बात केवल मधुपुरीके खम्बा लोगोंके ही नहीं, बल्कि लदाख और स्पितीके लोगोंके साथ भी की गई। यदि मंगोल मुखमुद्रा किसीके विदेशी या चीनी होनेके लिये पर्याप्त है, तब तो हमारे देशकी नागरिकताके लद्दाखसे लेकर आसाम तकके लाखों नागरिकोंसे हाथ धोना पड़ेगा। मधुपुरीमें पैदा हुये खम्बा लोगोंने देखादेखी अपने कुछ लड़कोंको पढ़ाया है। दो एफ॰ ए॰ पास और एक बी॰ ए॰ तक भी पढ़ चुका है। यह परिगणित जातिके लोग हैं, लेकिन किसी नौकरीके लिये दर्खास्त देनेपर जैसे प्रमाणपत्र इनसे माँगे जाते हैं, उसे देखकर "न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी" वाली कहावत याद आती है।

जिस जीवनके आकर्षणने घरबार छुड़ाया, और जिसे भी छोड़नेके लि मजबूर हो बिसुनको मधुपुरीमें बसना पड़ा, वह अब ५० वर्षसे ऊपरके बिसुनको स्वप्नलोककी बात मालूम होती है। "करतल भिक्षा तरुतल वास" इससे कहीं अधिक अच्छा था। इसी साल छ महीनेसे बीमारीके कारण बिसुनने चारपाई पकड़ ली। कई इन्जेक्शन लिये, डाक्टरों और वैद्योंकी बहुत सी दवाइयाँ खाईं, कोढ़में खाजकी तरह चार-पाँच सौ रुपये खर्च हो गये। बीबी एक तरह निराश हो गई, लेकिन बिसुनने उस समय यमदूतोंको अपने दरवाजेसे भगा दिया। वह अब भी कमजोर था, लेकिन नवम्बरमें दिल्ली जाकर कुछ कमाई कर लानेके लिये परिवार-सहित वहाँ गया और १ अप्रैल १९५४ ई०को बिसुन उपनाम वाले किशनसिंहको वहीं अपनी जीवनलीला खतम करनी पड़ी।

बिसुनका सारा जीवन सुख और निश्चिन्तताका नहीं रहा, लेकिन इस सारे जीवनमें उसका हृदय हमेशा उदार रहा। मेहमाननिवाजी और जहाँतक हो सके अपनी और परायोंकी सहायता करना वह अपना कर्त्तव्य समझता रहा। चारों ओर निराशाओंसे घिरे रहनेपर आज भी वह अपने इस गुणको छोड़नेके लिए तैयार नहीं है।

१७. पेड़ बाबा

(१)

उत्तरी भारतके और बहुतसे स्थानोंकी तरह मधुपुरीमें वर्षाका मौसम १५ जूनसे १५ सितम्बरतक रहता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि १५ जूनको अवश्य वर्षा आरम्भ हो जायगी, और १५ सितम्बरके बादल एक भी बूँद न बरसनेकी कसम खा लेंगी। पर इस साल वह ठीक १५ जूनको शुरू हुई, और लगातार १५ सितम्बरके बाद भी बरसती रही। पहाड़ न होता, तो शायद इतनी वर्षासे भारी बाढ़ आ जाती, और लोगोंको बहुत तकलीफ होती। मधुपुरीमें ज्यादा और लगातार वर्षाका परिणाम होता है कहीं-कहीं भूपात, लेकिन इस साल वह भी बहुत कम मात्रामें हुआ। पहाड़के ऊपर सड़कें बनाना बड़ा खर्चीला काम है। उसे बराबर देखते रहना भी आवश्यक है। मधुपुरीकी नगरपालिका, शायद दूसरी नगरपालिकाओंकी ही तरह, मरम्मतके बारेमें अपना अलग ही सिद्धान्त रखती है। थोड़ी-बहुत टूट-फूटको कम खर्चमें मरम्मत करना उसे पसन्द नहीं है। सड़कपर दरारोंकी झलक दिखाई दे रही है, पानी कुछ-कुछ उनके भीतर घुसने लगा है, लेकिन जब तक दरार पूरी तौरसे फटकर आधी सड़क नीचे न गिर जाये, तब तक मरम्मतका नाम नहीं लिया जाता। सौ रुपयेकी मरम्मतको हजारका न बनाया जाये, तो ठेकेदार और दूसरे लोगोंको लाभ क्या होगा? अबकी बार ऐसी दो चार मरम्मतें जरूर हुईं, लेकिन नीचेसे आनेवाली मोटरें शायद एक दो दिनसे ज्यादा नहीं रुकीं।

मधुपुरीमें वर्षाका मतलब है सर्दीका भी बढ़ जाना। जहाँ दो-तीन दिन लगातार वर्षा हुई या आसमान बादलोंसे ढँका रहा और साथ ही कुछ हवा भी चल पड़ी, तो "पूस जाड़ा न माघ जाड़ा, जब्बे हवा तब्बे जाड़ा"की कहावत पूरी तौरसे चरितार्थ होने लगती है। इतनी ऊँचाईपर जाड़ा बढ़नेका मतलब साधारण जाड़ा नहीं है। लोग अपने बक्समें बन्द किये हुये गरम कपड़ोंको

निकालकर पहननेके लिये मजबूर होते हैं। आम तौरसे यह सैलानियोंका मौसम नहीं है, लेकिन पंजाबके लोग गर्मीको उतना भयंकर नहीं मानते, जितना वर्षाका, इसलिये खाली मधुपुरीको आबाद करनेके लिये वह यहाँ आ पहुँचते हैं। पर, उसका यह अर्थ नहीं, कि वह पहले सीजनमें आनेवालेकी संख्याको पूरा कर देते हैं। तो भी यह तो कहना ही पड़ेगा, कि वर्षाके महीनोंकी रौनक पंजाबी भद्रपुरुषों और महिलाओंके दमकी बरक्कत है।

अबकी वर्षाके जुलाई-अगस्तके महीनोंकी रौनक करनेके लिये एक और भी बात हुई। मधुपुरीमें तीन बाजार हैं, जिनमें पूरबके छोरवाला केवल सैलानियोंपर निर्भर न रह बहुत कुछ आसपासके पहाड़ी लोगोंपर निर्भर करता है, इसलिये वह बारहों महीना एक जैसा रहता है। बाकी दो बाजार अधिकतर सैलानियोंपर गुजर करते हैं। इनमें भी बिचला ही ऐसा है, जिसकी आधीके करीब दूकानें जाड़ोंमें खुली रहती हैं। शौकीनीकी या कीमती चीजें बेंचनेवाले लोग सैलानियोंके छोड़ते ही समझ जाते हैं, कि उनका अब मधुपुरीमें काम नहीं है। लेकिन, दाल-चावल बेंचनेवालोंके पास एक तो मधुपुरी छोड़ और कोई ठाँव नहीं है, दूसरे कभी-कभी उनकी कुछ बिक्री भी हो जाती है, इसी आशामें वह पड़े रहते हैं। दूसरे छोरकी बाजारमें जाड़ोंमें दूकानें और भी कम खुली रहती हैं। बिचला बाजार केन्द्रमें है, और उसीको सदर बाजार या चौक बाजार कहा जा सकता है। जुलाईके महीनेमें इसकी रौनकमें इतना ही अन्तर था, कि अब खरीदारोंकी उतनी भीड़ नहीं थी। यह केन्द्रीय जगह, अर्थात् मधुपुरीके सभी बंगलों-कोठियों और बाजारोंके बीचमें अवस्थित है, इसलिये इसका महत्व दूकानदारों और खरीदारों दोनोंके लिये बहुत है। पहाड़के किनारे पतली रेखा जैसी सड़कपर बाजारके घरोंके बसे रहनेके कारण थोड़ी ही दूरपर जंगलका होना स्वाभाविक है।

वर्षा या बादल कई दिनोंसे बराबर बने रहे। उनके तथा बढ़ी हुई सर्दीके कारण भी लोग बहुत आवश्यक होने ही पर बाहर निकलते थे। बाजारके पिछवाड़ेसे जानेवाली सड़कपर वैसे भी बहुत ही कम लोग मिलते थे। एक दिन किसीने देखा, सड़कके नीचे एक पेड़के ऊपर भगवे कपड़े टँगे हैं, एक छाता लगा हुआ है। यह यों ही नहीं टँगे थे। छत्तेके नीचे पेड़के तनेसे जहाँ दो

मोटी-मोटी डालियाँ दो ओर जाती थीं, उसपर लकड़ीके पटरे रखकर बैठनेकी जगह बनाई गई थी, और अगल-बगलमें रस्सी तानकर ऐसी मजबूत बाड़ बना दी गई थी, कि वहाँ बैठनेवालेके गिरनेकी सम्भावना नहीं थी। गौरसे देखनेपर मालूम हुआ, कि सिरसे पैरतक गेरुवेमें लिपटी एक मूर्ति वहाँ चुपचाप बैठी है। कानों-कान इसकी खबर दूसरों तक पहुँची, लेकिन एक-दो दिन तक लोगोंने उसे कोई महत्त्व नहीं दिया, यद्यपि इतनी वर्षा और उसके कारण हुई सर्दीमें पेड़के ऊपर किसी आदमीका रात-दिन बैठे रहना आश्चर्यकी बात थी। जब-तब एकाध स्त्री-पुरुषोंने पेड़के पास जाकर देखनेकी कोशिश की, मूर्ति पत्थर जैसी बिना सुगबुगाये बैठी थी। तीसरे-चौथे दिन खबर उड़ने लगी, कि एक तपस्वी महात्मा केन्द्रीय बाजारके पास पेड़पर बैठे तपस्या कर रहे हैं, जो न कुछ खाते-पीते हैं, और न किसीसे बोलते हैं। सबेरेसे अन्धेरा होने तक कितने ही लोगोंने जाकर देखा, पेड़बाबा पेड़की तरह ही स्तब्ध निश्चल बैठे हैं। उनका मुँह कैसा है, इसे लोग नहीं देख पाते थे। सप्ताह बीतते-बीतते पेड़बाबाकी करामात और कहानियाँ भी मशहूर होने लगीं—न वह कुछ खाते हैं, न उन्हें शौच जानेकी जरूरत है, वह बराबर ध्यानमें लीन रहते हैं।

बिना खाये-पीये हफ़्ते भर रह जाना कोई मुश्किल बात नहीं है। किसीने सन्देह प्रकट किया, कि शायद रातमें पेड़बाबाके पास कुछ खाना पहुँचता हो, इसपर कुछ लोग कसम खानेके लिये तैयार हो गये, कि हमने रातभर जागकर पहरा दिया, और देखा कि पेड़बाबा उसी तरह अपने आसनमें बैठे हुये हैं। वर्षाका दिन था, प्यास बुझानेके लिये भींगे कपड़ोंसे पानी मिल सकता था, तो भी साधक लोग कह रहे थे, कि वह पानी भी नहीं पीते।

(२)

एक हफ्तेके बाद दूसरा बीता। पेड़बाबा अभी भी उसी तरहसे अपने आसनपर जमे हुये थे। अब मधुपुरीकी उस सुनसान रहनेवाली सड़कपर मेला-सा लगने लगा। जिस वक्त वर्षा नहीं होती, उस समय तो मालूम होता था, सारी मधुपुरी उमड़ आई हो। स्त्रियाँ अलग फूलमाला या पूजाकी कोई दूसरी सामग्री लिये बैठी हैं, पुरुष भी उसी तरह भीड़ लगाये हैं। साधारण अशिक्षित

लोगोंकी संख्या बहुत कम थी। बाहरसे आये अपटुडेट तरुण-तरुणियाँ पेड़बाबाके पाससे नीचे-ऊपर जानेवाली सड़कोंपर भीड़ लगाये थे। जब पेड़-बाबाने एक मेला लगा दिया, तो मेलेकी सारी चीजें वहाँ एकत्रित होनी ही चाहियें। खानेकी चीजोंको लेकर खोंचेवाले भी पहुँचे। पानवाला भी वहाँ मौजूद और चना-जोर-गरमवाले बाजारकी सड़कोंको छोड़कर अब यहाँ अपने लटके गाने लगे। सिनेमा-तारिकाओंको मात करनेवाली तरुणियाँ बार-बार अपने हैण्डबेगसे सीसा निकालकर लिप्स्टिकको सुधारती रहतीं, और गम्भीर प्रकृतिके लोग कुछ और चर्चा छेड़े खड़े रहते। मधुपुरीमें प्रैक्टिस करनेवाले दो अच्छे वकील कोट-पैंट और फेल्टहैट लगाये खड़े पेड़बाबाकी ओर देख रहे थे। पाससे उनका कोई परिचित पुरुष रास्ते जा रहा था, उसे देखकर दोनों एडवोकेट साहबान अपनेको रोक नहीं सके, और उन्होंने अंग्रेजीमें पेड़बाबाकी ओर इशारा करके अपने परिचितको रोका। फिर पेड़बाबाकी महिमा गानी शुरू की। अब पेड़बाबाको वहाँ रहते तीन हफ्ते हो चुके थे। कोट, पैंट, हैट भले ही हो, और आधुनिक भक्ष्याभक्ष्यका भी चाहे ख्याल न हो, किन्तु थे दोनों वकील साहबान सनातनधर्मके माननेवाले। पेड़पर बाबाका गेरुवा नहीं लटक रहा था, बल्कि सनातनधर्मकी विजय-ध्वजा फहरा रही थी। लोग आँखोंके सामने धर्मके महाप्रतापको देख रहे थे। साधारण लोग कह रहे थे—यदि ऐसे महात्मा न होते, तो दुनिया चलती कैसे? उन्हींकी तरहकी भाषामें दोनों वकील साहब भी कह रहे थे—हाँ, धर्मके पालनेवाले ध्यानियों और तपस्वियोंसे संसार सूना नहीं है।

इतनी सर्दीमें चौबिसों घंटे पेड़पर भींगते रहना आश्चर्यकी बात तो थी ही, फिर इसे देखनेके लिये ऐसे लोग भी क्यों न जाते, जिनका इन बातोंपर विश्वास नहीं है। मेरे एक मित्र स्वयं वर्षों घोर तपस्या कर चुके थे। ऋषिकेशमें गंगा पार, जहाँ जंगलोंमें अब भी जंगली हाथी घूमा करते हैं, एक निर्जन स्थानमें वह पेड़बाबा बनकर कई महीने रहे थे। हाथी इन पेड़बाबाकी अपनी मर्जीके मुताबिक ही पूजा करते, लेकिन ईमानदार होते हुये भी पेड़बाबाने बहुत मोटा वृक्ष चुना था। जिन डालियोंपर अपने बैठने-लेटनेके लिये उन्होंने मचान तैयार कराया था, वह बड़ेसे बड़े हाथीकी सूँढ़की पहुँच से बाहर थी। हाथी रातके

वक्त इस तरफ आते थे, क्योंकि गंगा पास थी। वहाँ आदमियोंसे डर रहता था। एक बार नदी तटके चट्टानोंमें एक छोटा बच्चा फँस गया। कई घंटे तक हाथियोंने उसे निकालनेकी कोशिश की, लेकिन वह निकाल नहीं सके। सवेरा होते देख हाथियोंका झुण्ड बच्चेको वहीं छोड़कर चला गया। इन पेड़बाबाको अपनी करामात किसीको दिखानी नहीं थी, नहीं तो ऋषिकेश शहरके पास किसी पेड़को चुनते। दूध बेचनेवाले ग्वालियोंका डेरा उसी जंगलमें कुछ दूर पर था। उनसे पेड़बाबाने दूधका इन्तिजामकर लिया था। वह केवल दूधाधारी थे। निर्जन जंगलमें रहनेवाले पेड़बाबाकी कीर्ति ऋषिकेशमें भी पहुँची और बम्बईका एक श्रद्धालु सेठ दर्शन करनेके लिये उनके पास गया। न माननेपर भी बहुत आग्रह करके ग्वालियोंसे दूधका बँधान करके वह पैसे दे गया। वह पेड़बाबा ईमानदारीके साथ हिन्दू-धर्मकी सभी तपस्याओं और ध्यान-योगका अभ्यास करते रहे। उनको दूकान नहीं चलानी थी, और अब ६० से ऊपर पहुँचकर वह कट्टर नास्तिक हैं।

भूतपूर्व पेड़बाबाने भी इस नये पेड़बाबाको जाकर देखा। वह घरके भेदिया थे, या जिसमें वह स्वयं असफल रहे, उसमें दूसरे व्यक्तिको सिद्धि-लाभ करते देख ईर्ष्या हो आई, कह रहे थे : अगर तपस्या करनी थी, तो किसी जंगलमें जाता, यहाँ मधुपुरीके सबसे बड़े बाजारके सौ कदमपर पेड़बाबा बनना केवल धोखा-धड़ी है।

उनके मित्रने कहा—आखिर हिन्दुस्तानमें जहाँ भी देखिये, उत्तरसे दक्षिण और पूर्वसे पश्चिम तक धर्मकी छोटी-बड़ी दूकानें खुली हुई हैं। यह धर्मके सेठ लोग अपने सौदेके प्रचारके लिये नयेसे नये साधनोंका इस्तेमाल कर रहे हैं। अब तो उसीकी दूकानकी ख्याति बढ़ती है, जो अपने सौदोंको अँग्रेजीके रूपमें पेश करे, और उसके शिष्योंमें अँग्रेजीके डिग्रीधारी स्त्रीपुरुषोंकी काफी संख्या हो। अगर दो-चार गौरांग-गौराँगिनियाँ भक्त बन जायँ, तो कहना ही क्या है! करोड़-पति सेठ जानते हैं, कि धर्म और अन्धविश्वासका पल्ला जितना ही भारी रहे, उतनी ही हमारी खैरियत है। इसलिये इन महात्माओंकी महिमा गानेके लिये उनके पत्रोंके कालम खुले रहते हैं।

दोनों मित्र और उनकी ही तरहके कुछ और स्वतन्त्र विचार रखनेवाले

स्त्री-पुरुष भी मधुपुरीमें थे। यदि उनकी चलती, तो पेड़बाबाको महीने भर चुपचाप पेड़पर टँगे रह खाली हाथों ही जाना पड़ता। लेकिन, आजके "ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्"के माननेवाले भी चार्वाककी तरह नास्तिक नहीं होते। पेड़बाबा बोलते नहीं थे, और न वहाँ ऐसा प्रबन्ध था, कि उनसे एकान्तमें इशारेसे भी बात हो सके, नहीं तो इनमेंसे कितने ही उनके पास जाकर अपने भाग्यको दिखलाते, तथा कोई मन्त्र-तन्त्र प्राप्त करनेकी कोशिश करते, जिसमें उनकी आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सभी तरहकी व्याधियाँ दूर हो जातीं। पेड़बाबा नास्तिकों और बुद्धिवादियोंको देखकर यहाँ नहीं आये थे। वह जानते थे, कि मधुपुरी जैसी नगरी भी श्रद्धालुओंसे खाली नहीं, बल्कि भरी हुई है। दर्जन-दो-दर्जन नास्तिक हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, और उनकी बातोंको सुनकर कोई नहीं भड़क सकता। श्रद्धालु उन्हें मुँहतोड़ जवाब दे सकते हैं—यदि कुछ नहीं है, तो तुम भी जरा चौबीस घंटे ही इस वर्षा और सर्दीमें किसी पेड़पर बैठकर देख लो।

शायद एक ही हफ्ता बीता था, जब खबर लगी, कि पेड़बाबा दिनमें एक बार कुछ मिनटोंके लिये अपना मुँह खोलकर भक्तों और भक्तिनोंको दर्शन देते हैं। बाबाने इसके लिये दोपहरका समय चुना था। गेरुवे वस्त्रसे ढँकी मूर्ति कुछ मिनटोंके लिये सड़ककी ओर मुँह खोल देती। भक्त लोग गद्गद् हो जयकार करनेके लिये तैयार हो जाते थे; लेकिन उन्हें पहलेहीसे सचेतकर दिया गया था, कि बाबा मौन तथा ध्यानमें मग्न हैं, वह ऐसा हल्ला-गुल्ला सुनना नहीं चाहते। पेड़बाबाके सिद्ध होनेमें कोई सन्देह नहीं था। उनके बारेमें कुछ पतेकी बातें कौन लोगों तक पहुँचाता था? पेड़के पास कोई साधक दिखाई नहीं पड़ता था। तो भी बाबाकी चौबीस घंटेकी चर्या मधुपुरीकी सड़कोंपर सुनी जा सकती थी—अमुक वक्त वह दर्शन देते हैं, इसे भी लोगोंको मालूम कराया गया था, और यह भी कि बाबा पूरे एक महीने तक यहाँ तपस्या करेंगे। फिर उद्यापन करके उत्तराखंडमें हमेशाके लिये चले जायेंगे। हिमालयकी किसी गुफासे वह आये भी थे। उनकी आयुके लिये हजार वर्ष कहनेवालों और विश्वास करनेवालोंकी भी कमी नहीं थी। सचमुच उस एक महीनेमें मधुपुरीमें धर्मकी बाढ़ आ गई, आर्यसमाजियोंका मुँह फीका पड़ गया। यहाँके दूकान-

दारोंमें सनातनधर्मी और आर्यसमाजी दोनों थे। आर्यसमाजी अपने तर्कसे सनातनियोंको पछाड़ना चाहते थे, और यहाँ पेड़बाबा अचल और मौन रहकर उनके हजारों तर्कोंका जवाब दे रहे थे। आर्यसमाजियोंकी गृहिणियाँ भी भक्ति-भाव दिखलानेमें पीछे नहीं थीं। उस वक्त साफ दिखलाई पड़ा, कि मौखिक प्रोपेगेंडा आचारिक-प्रोपेगेंडासे बहुत निर्बल होता है। जिस तरह पेड़बाबाको सत्ययुगका ऋषि-मुनि कहा जा सकता था, उसी तरह उनके ज्ञान और विद्याको भी अनन्त बतलाया जा सकता था; क्योंकि मौन रहनेपर आदमीके ज्ञान-विज्ञानका क्या पता लग सकता है?

(३)

पेड़बाबाकी महीनेकी तपस्या पूरी हुई। पहलेहीसे निश्चित हो चुका था, कि किस वक्त वह पेड़से नीचे उतरेंगे। उस समय पासके पर्वत-पृष्ठपर तिल रखनेकी जगह नहीं थी। सभी जगह जैंटलमैन और लेडियाँ, साधारण लोग-लुगाइयाँ, लड़के-लड़कियाँ भर गये थे। एकाधको फिसलकर गिरना भी पड़ा, लेकिन पेड़बाबाके प्रतापसे किसीको अंग-भंग होनेकी नौबत नहीं आई। पेड़-बाबाके दर्शनके लिये हिन्दू या भारतीय ही नहीं, बल्कि उस समय मधुपुरीमें रहनेवाले युरोपियन नर-नारियोंने भी अपनेको रोक नहीं पाया। पेड़बाबाका प्रचार इतना सुव्यवस्थित रीतिसे और चुपचाप हो रहा था, जिसके सामने मधुपुरीकी नगरपालिकाके चुनावका प्रचार भी कुछ नहीं था। सब बातोंमें एक तरहकी व्यवस्था और बाकायादगी देखी जाती थी। पेड़से उतरनेके समय न जाने कहाँसे बाजे भी पहुँच गये। वर्षाके इस महीनेमें मधुपुरीमें बहुत तरहके फूल मिलते हैं, उनकी मालाएँ लोगोंके हाथोंमें दीख पड़ती थीं। पेड़बाबा अब भी चेहरेको खोले नहीं थे। मध्य-एसियाका एक सिद्ध इसलिये अपने मुँहपर हमेशा हरे रंगका कपड़ा रखता था, कि लोग उसके मुखके तेजको सह नहीं सकेंगे। शायद पेड़बाबाका भी कुछ ऐसा ही ख्याल था। मधुपुरीके केन्द्रीय बाजारमें पेड़बाबाके पेड़के पास ही एक नई विशाल इमारत बनी थी, जिसमें दूकान रखनेके लिये बड़े-बड़े हाल थे। आखिर मधुपुरीके मकान-मालिक भी तो धर्मके माननेवाले हैं। इस समय नई बनी दूकानें आबाद नहीं थीं। एक

हालमें लाकर पेड़बाबाको रक्खा गया। पेड़बाबा अब मुँह ढाँके एक पैरपर खड़े थे। उन्हें पूरे भागवतकी कथा सुननी थी, और समाप्तिपर हजार ब्राह्मणों-का भोज कराना था। मधुपुरीके स्थायी निवासी वैसे तो आजकल बराबर मन्दीकी शिकायत करते रहते हैं, लेकिन उनके खाली हाथोंमें इस समय पेड़-बाबाके लिये न जाने कैसे पैसेकी बाढ़ आ गई थी। उन्होंने दिल खोलकर पेड़बाबाके यज्ञमें पैसा दिया। एक दर्जन ब्राह्मण कथा कहनेके लिये बैठा दिये गये। उन्हें दोनों वक्त पूड़ी-मिठाई और अच्छा भोजन मिलता, जिसका प्रबन्ध हलवाइयोंसे कर दिया गया था। पेड़बाबा एक टाँगपर खड़े दिनभर—जान-कारोंका कहना है रातको भी—खड़े रहते। पूड़ी-मिठाई खानेवाले ब्राह्मण अब उनके तेज और तपस्याके बारेमें प्रचार करनेमें सबसे आगे थे। बातकी बातमें लोगोंने पाँच हजार रुपये जमा कर दिये। कथा और यज्ञके लिये जो थाली रख दी गई थी, उसमें भी रुपयों, अठन्नियों और चौअन्नियोंकी वर्षा होती रहती थी।

पेड़बाबाके यज्ञ और दर्शनका लाभ उठानेका जिन्हें मौका मिला था, वह कह रहे थे, कि पेड़बाबाके नजदीक जानेहीसे आदमीके मनमें दिव्य भाव पैदा हो जाते हैं। कुछ गीता पढ़े हुये लोग कहते—वहाँ आसुरी सम्पत्ति रह नहीं सकती, वहाँ तो केवल दैवी सम्पत्तिका वासा है। मधुपुरीमें यह बात नहीं, कि केवल विलासी ही आया करते हैं, यहाँपर इस वर्गका उद्धार करनेका बीड़ा उठानेवाले कितने ही हिजहोलिनेस, शंकराचार्य और पहुँचे हुये सिद्ध भी आते हैं। विशेषकर जब मधुपुरी गोरे हाथोंसे निकलकर काले हाथोंमें आई, तबसे गेरुवाधारी या जटावाले महात्माओंका यहाँ अभाव नहीं रहता। अब तो शंकराचार्य लोग यहाँ आकर वर्षावास करने लगे हैं। आखिर राजभवन तो महात्माओंकी वाणी या चरण-रजसे सत्ययुगमें भी शून्य नहीं थे, फिर इस कलियुगके जंगम तीर्थ हमारे साधु-महात्मा कैसे संसार-पंकमग्न इन विलासी जीवोंको डूबनेके लिये छोड़ सकते हैं? लेकिन, पेड़बाबा और दूसरे महात्माओंमें बड़ा अन्तर था। मधुपुरीके सैलानी प्रायः सभी मध्य-वर्गके होते हैं, शिक्षित ही नहीं, बल्कि उनमें शत-प्रतिशत अंग्रेजीके जानकार होते हैं—महिलाओंमें शायद कुछ सेठानियाँ ही अंग्रेजी भाषासे वंचित हों।

ऐसे लोगोंके ऊपर स्थूल हथकण्डे काम नहीं आते। उनपर अंकुश रखनेके लिये विद्या और ज्ञानकी अवश्यकता होती है। इसलिये अपटुडेट टैकनीक रखनेवाले साधु-महात्मा ही उनको अपनी ओर खींच सकते हैं। जिस वक्त पेड़बाबाके आनेकी खबर मधुपुरीमें पहले-पहल फैली, उस वक्त कितने ही लोग—जिन्हें श्रद्धाहीन नहीं कहा जा सकता—भी कहने लगे थे : "यह बहुत क्रूड टैकनीक (भद्दा हथकण्डा) है। पेड़पर बैठकर आजकल कितने ही बन्दर भी भींग रहे हैं, लेकिन कोई उनके पीछे मारा-मारा नहीं फिरता।" सज्जनोंको यही विश्वास था, कि अद्वैतब्रह्म पर बारीकीसे सर्मन देनेवाला ही शिक्षितोंको अपनी ओर खींच सकता है। पेड़बाबा यदि हफ्तेके भीतर सिद्धिलाभ करना चाहते, तो अवश्य निराश होना पड़ता। लेकिन, उनका महामन्त्र था—"आये हैं तेरे दर पै, तो कुछ करके उठेंगे।"

पेड़बाबा कुछ करके उठे, यह सन्देहवादियोंको भी मानना पड़ा। वह मधुपुरीमें जबतक रहे, बराबर मौन रहे, लेकिन उनकी सन्निधि मात्रसे लोगोंने बहुत लाभ उठाया। लोभ तो उन्हें छू नहीं गया था। रुपयोंकी वर्षा हो रही थी, लेकिन उनको छूना तो क्या, उधर ताकना भी वह पसन्द नहीं करते थे। जो कुछ आया, सब दान-पुण्यमें लुटाया। इस दान-पुण्यके सबसे बड़े पात्र मधुपुरीके ब्राह्मण देवता थे, जो यहाँके सबसे सताये हुये लोग थे। विलासपुरीमें उनको भूखे ही मर जाना पड़ता, यदि अब भी पुराने ढर्रेके दूकानदार यहाँ न होते। इधर भागवतकी कथा हो रही थी, उधर भोजकी तैयारी बड़े जोर-शोरसे की जा रही थी। भूखों-भिखमंगोंके भोजन करानेका उतना फल थोड़े ही होता है, जितना भूसुरोंको भोजन और दक्षिणा देनेका।

वैसे पहले ही सप्ताहमें पेड़बाबाके प्रति नास्तिकता रखनेवालोंका जोर घट गया था। लेकिन, उनके उतरकर एक टाँगसे खड़े होकर कथा सुननेके सप्ताहके बीतते-बीतते तो किसी नास्तिककी मधुपुरीमें खैरियत नहीं थी। शिक्षित-अशिक्षित, तरुण-वृद्ध, स्थायी-निवासी-सैलानी सभीमें भक्तिकी बाढ़ आ गई थी। चारों ओर उसका इतना प्रखर प्रकाश फैल रहा था, कि लोगोंकी आँखें चौंधिया गई थीं। सिनेमाघर हो, या क्लबघर, सड़क हो या बँगला हर जगह केवल पेड़बाबाकी चर्चा थी। भारतीयोंके घरोंहीमें नहीं, एंग्लो-

इण्डियन और युरोपियन-परिवारोंमें भी पेड़बाबाका बखान हो रहा था—कुछ लोग नुकताचीनी भी कर रहे थे, लेकिन एक मत होकर नहीं। कैथलिक लोग साधुओंकी करामातोंपर विश्वास रखते हैं। अभी इसी साल तो इतालीके किसी गाँवमें मदोन्नाकी मिट्टीकी मूरतकी आँखोंसे कई दिनों तक आँसू बहे थे। हजारों नर-नारियोंने अपनी आँखों उसे देखा था, और अखबार क्यों झूठ बोलने लगे? उनके कहनेके अनुसार रसायनिक विश्लेषण करनेपर वह आँसू बिल्कुल मनुष्यके आँसुओं जैसे थे। कैथलिकोंको अगर पेड़बाबामें सन्देह हो सकता था, तो इसीलिये, कि पैगन (काफिर) साधु ऐसी करामातका धनी कैसे हो सकता है?

भागवत-समाप्तिका समय नजदीक आ रहा था। कथाको यदि अर्थ-सहित कहा जाता, तो और समय लगता। उसका सिर्फ पारायण हो रहा था, जिसे पेड़बाबा अपनी सर्वज्ञताके कारण समझ सकते थे, नहीं तो भागवतके पाठ करनेवालोंमें भी बिरले ही कुछ समझ पाते थे। सबकी इच्छा यही थी, कि कथा जल्दी समाप्त न हो, और पेड़बाबा कुछ और दिनों तक हमारे बीचमें बने रहें।

यज्ञ समाप्तिका दिन आया। उस दिन मधुपुरीके नागरिकोंने अपनी श्रद्धाका चरमरूप दिखलाना चाहा। जितने भी बैण्ड बाजे मौजूद थे, उन सबको किरायेपर कर लिया गया। आज बाबाका जलूस निकलनेवाला था। साधारण बनियोंकी तो बात ही क्या, पश्चिमी ढंगमें रंगे आधुनिक शिक्षा-दीक्षामें निष्णात फैशन और शौकीनीकी महंगी चीजोंके बेचनेवाले दूकानदारोंमेंसे भी अधिकांशने अपनी दूकानोंको उस दिन सजाया था। सड़कपर कई जगह तोरण लगाये गये थे। यद्यपि मधुपुरीकी माल-सड़कपर मोटरका चलना जिला-मजिस्ट्रेटकी विशेष आज्ञाके बिना नहीं हो सकता लेकिन, पेड़बाबाके लिये मजिस्ट्रेट क्या लाटसाहबकी भी इजाजत आसानीसे मिल सकती थी। प्रदेशके लाटसाहब स्वयं एक धर्मप्राण महापुरुष हैं, जो हर समय हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू गौरवका गान करते यही अफसोस करते हैं, कि वह शेष-नागकी तरह सहस्र-जिह्व नहीं हुये। लेकिन पेड़बाबाको यह सब बातें पसन्द नहीं थीं। उन्हें मोटरकी क्या आवश्यकता? मौन थे, तब भी उनके भावोंसे

आदमी स्वयं समझ लेते थे, कि वह कह रहे हैं—मेरे पास सबसे बड़ी मोटर मेरे दोनों पैर हैं, जिससे मैं हिमालयके सर्वोच्च शिखरोंपर विचरा करता हूँ। बाबाके बैठनेके लिये मोटरका नहीं रिक्शाका प्रबन्ध किया गया। कभी मुँह जरा-सा खोले और कभी ढँके वह उसी पर नर-नारियोंकी भीड़में मधुपुरीकी सड़कपर एक छोरसे दूसरे छोरतक गये। उनकी चरण-रेणु मालरोडपर हमेशाके लिये बिखर गई। रास्तेमें हर जगह पुष्प-वर्षा होती, कपूरकी आरती कदम-कदमपर उतारी जाती। भक्त लोग उनके चरणोंमें कहीं साष्टांग दंडवत् करते, कहीं उनकी चरणधूलि लेकर अपनी आँखों और सिरमें लगाते। पेड़बाबा मौन उसी तरह कई घण्टे जलूसमें रहे। सचमुच यह किसी करामातसे कम नहीं था। पेड़बाबा बोलते भी, तो उनके पास एक ही जीभ थी, पर यहाँ हजार-हजार जीभ उनकी तरफसे बोलनेके लिये तैयार थीं। "पेड़बाबाकी जय" सभी जगह होती रही, लेकिन आर्यसमाज मन्दिरके पास जब जलूस पहुँचा, तो लोग बड़े जोर-जोरसे "सनातन धर्मकी जय" करने लगे। आर्यसमाजके लिये यह चैलेंज था, इसमें शक नहीं। सनातन धर्मकी इस समय पाँचो घीमें थीं, और उससे फायदा उठानेमें हिन्दू संस्कृतिके इजारेदार भी किसीसे पीछे नहीं थे।

भोज हुआ। सरकारने भोजमें आदमियोंकी संख्या कानून द्वारा सीमित कर दी है। पेड़बाबाके भोजमें उस संख्यामें एक नहीं दो सुन्नेकी वृद्धि थी। कानूनके धनीधोरी सरकारी अफसर मधुपुरीमें मौजूद थे, लेकिन मजाल क्या, कि वह इसमें बाधा डालकर अपनेको हिरण्यकशिपुकी सन्तान साबित करते। हलवाइयोंको पहले ही पैसा मिल गया था और उन्होंने तरह-तरहके पकवान बनाये। उनकी दूकानोंमें इतनी बिक्री द्वितीय महायुद्धके समाप्त होनेके बाद शायद ही किसी दिन हुई हो। वह सचमुच निहाल हो गये। वस्तुतः निहाल होनेवालोंमें मधुपुरीके हलवाई और ब्राह्मण दो ही थे, वैसे धर्म-लाभसे निहाल होनेवालोंमें मधुपुरीके सारे निवासी शामिल थे। अब वह पेड़ सूना हो गया था। धर्मप्राण लोग कुछ सोच रहे थे, कि बाबाकी तपस्याके प्रतीक इस पेड़को भी कोई अचलकीर्तिका रूप देनेका इन्तिजाम किया जाये। बुद्धने पीपलके पेड़के नीचे ध्यान करते परमज्ञानको लाभ किया था, इसके कारण पीपल युग-युगके लिये पवित्र वृक्ष बन गया। मधुपुरीका वह बान वृक्ष भी कुछ उसी तरहका

महत्व रखता है। बान वृक्षकी सारी जातिको पेड़बाबाका वृक्ष बनाना भक्तोंकी शक्तिसे बाहर था, क्योंकि वह ऐसी ही जगह हो सकता है, जहाँ सालमें कमसे कम एकाध बार हिमवृष्टि हो जाये, या वह न हो तो तापमान हिम-विन्दुसे कुछ रातोंतक जरूर नीचे रहे। बाबाके पेड़को सूना देखकर लोगोंको दुःख होता था, इसलिये किसीने वहाँ भगवा कपड़ेकी एक छोटी-सी झण्डी गाड़ दी थी। अब तो वह मकान भी सूना होने जा रहा था, जिसमें इतने दिनोंतक हरि-कथा होती रही, जयजयकार होता रहा, और सुबहसे शामतक हजारों नर-नारियोंकी भीड़ बनी रहती।

हरेक त्यौहार और महोत्सवका कभी न कभी अन्त होता ही है। एकाएक जन-कल्लोल और आनन्दकी बाढ़के बाद नीरवता छा जानेसे चारों ओर उदासी-ही-उदासी दीखने लगती है। पेड़बाबाके मधुपुरी छोड़नेका दिन आ गया। एक बार फिर भक्त नर-नारियोंने अपने आराध्य देवका दर्शन कर लेना चाहा। बाबा घरसे बाहर सड़कपर आये। सामने सिनेमाघर था। आजकल सिनेमा सबसे बड़ा तीर्थ है, उसके सामने सभी धर्मोंके देवालय फीके हो गये हैं, और जहाँ नंगी तारिकाओंकी तस्वीरें किसी देवीसे कम भक्तोंको अपनी ओर आकृष्ट नहीं करतीं। लेकिन, उस दिन सिनेमा और उसकी तारिकायें भी पेड़-बाबाके सामने फीकी पड़ गईं। कोई उधर झांकनेकी चाह नहीं करता था। सभी पेड़बाबाकी, भगवे कपड़ेके भीतर ढँकी लम्बी मूर्तिको देख रहे थे। मौन रहनेपर भी कुछ लोग पेड़बाबाके बहुत नजदीकी हो गये थे। जिसमें अधिक भक्ति होगी, वह देवताका सान्निध्य प्राप्त करता ही है। बाबाके पास कोई साजोसामान नहीं था, वही गेरुवे कपड़े और एक काला छत्ता अब भी उनके पास था, जिसे लेकर वह पेड़पर विराजमान हुए थे। बाबाकी चलती, तो मधु-पुरीसे नीचेके शहर तक पैदल ही जाते, लेकिन भगवान्‌को भी भक्तोंका आग्रह कभी-कभी मानना ही पड़ता है। उनके लिये कार ठीक करनेमें दिक्कत क्या थी? मधुपुरीमें कार रखनेवाले पचासो मौजूद थे, जो सभी अपना अहोभाग्य समझते, यदि बाबा उनकी कारमें पैर रख देते। किसी पुण्यात्माको अपनी कार देकर सेवा करनेका मौका मिला। बाबा मधुपुरीसे विदाई ले रहे थे। वह वीत-राग थे, दुःख सुख, लाभालाभ, जयाजयमें उनकी समबुद्धि थी। लेकिन, उनके

सानिध्यसे जिनकी आत्मा पवित्र हुई थी, जन्म-जन्मके पाप दूर हुये थे, वह तो बीतराग नहीं थे। सबकी आँखें गीली नहीं, वर्षाकी बूँदोंकी तरह आँसू बहा रही थीं। हमारे पूर्व-परिचित हैटधारी दोनों वकील साहबान भी वहाँ पहुँचे हुये थे। उनकी भी आँखें गीली थीं। कितने ही मुँहसे और कितने ही मूक हृदयसे यही बार-बार प्रार्थना कर रहे थे—बाबा मधुपुरीको न भूलना, फिर हम पापियों को आकर एक बार दर्शन देना।

कारपर चढ़कर बाबा नीचेके नगरमें पहुँचे। वहाँ भी उनके स्वागतके लिये लोग तैयार थे। किन्तु यह नागरिक और नागरिकायें नहीं, बल्कि एक दर्जन सिपाहियोंके साथ पुलिसके इन्सपेक्टर और थानेदार। उन्हें टेलीफोनसे पहले ही खबर मिल चुकी थी। पहाड़से उतरते ही बाबाकी कारके पीछे एक और कार भी चल रही थी। नगरके भीतर घुसते ही इंसपेक्टरने कारके रोकनेका हुकुम दिया। कार पूरी तौरसे रुक नहीं पाई थी, तभी चारो ओरसे उसे पुलिस के जवानोंने घेर लिया। इंसपेक्टरने हाथ पकड़कर कुछ जोर दे कारसे उतारते हुये कहा—पेड़बाबा, मधुपुरीके लोगोंको तुमने निस्तार कर दिया, अब चलो हमारे जेलका निस्तार करो।

पेड़बाबा डाकुओंके गरोहका सरदार निकला, किन्तु कौन कह सकता है, मधुपुरीको उसने तार नहीं दिया?

१८. सुलतान

(१)

कोई पुरी या विलासपुरी योंही नहीं सज जाती। उसके भोगके लिये जितनी व्यक्तियोंकी अवश्यकता होती है, सजानेके लिये उससे कई गुना अधिक हाथोंकी जरूरत पड़ती है। खाने-पीनेकी चीजोंको प्रस्तुत करनेके लिये रेस्तोंराँ, होटल, बाबर्ची, खानसामे, सागवाले, गोश्तवाले, मिठाईवाले चाहियें। मधुपुरीको सर्व-कला-सम्पूर्ण बनानेके लिये जिन लोगोंकी अवश्यकता होती है, उनमें दर्जी और धूने (धुनियाँ) भी हैं। यहाँ आनेवाले विलासियोंके लिये हंसतूलके गद्दे ही नहीं, बल्कि रूईकी भी कोमल तोशकोंकी अवश्यकता पड़ती है। फिर ठिकाना नहीं किस वक्त नीचेका माघ-पूस आ जाये, जिसे हटानेके लिये कई कम्बलोंसे अधिक सुखद रजाई होती है। तकियोंकी भी जरूरत पड़ती है। इस प्रकार मधुपुरीके अभिन्न अंगोंमें धूने (धुनिये) भी हैं। इसलिये यदि हरसाल बरसमें आठ महीने सुलतानको मधुपुरीमें देखा जाये, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। उसके हाथमें धुननेका धनुका और डम्बल जैसा लकड़ीका लोढ़ा देखकर पुरानी कहानी याद आ जाती है। कोई धुना अपने इसी प्रभावशाली वेषमें सबेरे ही सबेरे कामकी तालाशमें जा रहा था। रास्तेमें एक सियार मिल गया। सियारने सोचा, "यह तो अवश्य कोई शेरका शिकारी है, अब मेरे जानकी खैरियत नहीं। इस समय एक ही बचनेका उपाय है, कि मैं इसकी खुशामद करूँ" और उसने दरबारी कवियोंकी भाषामें कहा।

कहाँ चले दिल्ली-सुलतान। हाथे धनुहा तीर-कमान॥

धुनेकी जानमें जान आई। वह समझ रहा था, कि यह तो जंगलका राजा शेर है, और मुझे खाये बिना नहीं रहेगा। प्रसन्न होकर उसने कहा :

बड़ेकी बात बड़े पहचान।

लेकिन, सुलतानको देखकर यह पुरानी कहावत याद आते ही एक टीस सी लगती है।

सुलतान औसतसे अधिक नाटा, किन्तु कदमें बौना नहीं है। उसकी उमर अब ५० के करीब पहुँच रही है, पर देखनेमें उससे कहीं अधिक बूढ़ा मालूम होता है। वह दुबला-पतला केवल आयुके कारण नहीं है। शायद जवानीमें भी उसकी देहपर माँसकी मोटी तह कभी नहीं जमी। बचपनमें ही चेचकसे उसकी एक आँख जाती रही, इसलिये रीतिके अनुसार उसे नवाब कहलानेका भी अधिकार है; पर, सुलतानका दर्जा नवाबसे कहीं बढ़कर है। अल्ला और रसूलके माननेके कारण उसके चेहरेपर छोटी सी बकरदाढ़ी भी है। उसका धनुहा उसके कदसे ज्यादा बड़ा मालूम होता है, लेकिन उसे ले चलनेमें उसको कोई परिश्रम नहीं पड़ता। मधुपुरीमें वह किस जगह रहता है, यह नहीं कहा जा सकता। शायद अपनी तरहके मजूरी करनेवाले धूनों या दूसरे लोगोंकी कोठरियोंमें किसीके साथ रहता होगा। लेकिन, कभी-कभी उसे सूर्योदय होते केन्द्रसे दो-दो-तीन-तीन मील दूरकी कोठियोंमें तीर-कमान लगाये देखा जाता है। दूरके और नजदीकके भी बंगलेवाले सुलतानको रोम-रोमसे आशीर्वाद देते हैं। यदि वह न आता, तो उसको ढूँढ़नेके लिये छ मील लम्बी बसी मधुपुरीमें कहाँ-कहाँ घूमना पड़ता। अथवा धुननेकी तोशक-रजाईको तीन मील दूरकी दूकानमें भेजना पड़ता, जो मजूरी भी ज्यादा लेती, तरदुद भी करना पड़ता और तिसपर भी इसमें सन्देह है, कि रुई एक साल भी बराबर जमी रह सकती। सुलतान जिस रजाई या तोशकको भर देता है, मजाल क्या है, कि वह कपड़ा फटनेसे पहिले खिसक जाये। एक तरहसे यह उसके घाटेका सौदा है, क्योंकि रूई जितनी ही जल्दी-जल्दी खिसकती रहे, उतना ही उसे जदा काम मिलेगा, उसकी धुनाईकी दर ८ आना सेर है। लेकिन, इतना घाटा सहकर सुलतानने अपनी साख जमा दी है—जो एक बार उससे काम करा लेता है, उसकी नजरमें दूसरा धुना जँचता ही नहीं।

वह पासके किसी मैदानी जिलेका है। गाँव या शहरका यह नहीं कह सकते। कसाई, धूने या खानसामे गाँवके होनेपर भी अपनेको शहरका बतलाना अभिमानकी बात समझते हैं। एक कसाई—जो भी सिरपर छाबड़ीमें मांस रक्खे मधुपुरीके कोने-कोनेमें घूमा करता है—केवल अपनेको शहरी ही नहीं बतलाता, बल्कि एक दिन उसने न जाने किस प्रकरणमें यह भी जड़

दिया—हमारी औरतें सिनेमा देखने नहीं जाया करतीं। शहरमें रहते किसी कसाईकी भी स्त्री सिनेमा देखने नहीं जायेगी, यह विश्वास करनेकी बात नहीं है। दुनियाके किसी धर्मने सिनेमा-बहिष्कारका फतवा नहीं दिया। वह यह भी कह रहा था, कि हमारी स्त्रियाँ घरसे बाहर नहीं निकलतीं। इससे जरूर मालूम होता था, कि वह शहरका निवासी है। गाँवमें होनेपर ऐसा करना किसी मजदूर-पेशा मुसलमानके लिये भी बहुत कठिन है, चाहे वह कसाईका पेशा ही क्यों न करता हो? इस्लामने यदि धर्मके तौरपर और हिन्दू-धर्मने रवाजके तौरपर पर्देका जबर्दस्त प्रचार किया, तो भी उसका प्रभाव धनी लोगों-पर ही पड़ा, गरीबोंको अपनी मशक्कतकी कमाई खानी थी, वह ऐसी शौकीनी-को अपना कर कैसे घरके आधे हाथोंको लुंज कर देते? सुल्तानको इस तरहका कोई अभिमान नहीं था। उसका चेहरा देखते ही आदमीके हृदयपर करुणा बरसने लगती है, और यदि काम न भी हो, तो कोई काम देनेकी तबियत करती। पर, सुलतानने धुनना छोड़ और कोई काम नहीं सीखा। यदि वह गद्दीदार कुर्सियोंकी मरम्मत कर सकता, बेंतसे उन्हें बुन सकता या रंग-बार्निश लगा सकता, तो इसमें शक नहीं उसे और भी काम मिलते।

(२)

अगस्त १९४७ में जब भारतका विभाजन करके पाकिस्तान स्थापित हो गया, और उसके कारण कितनी ही जगहोंपर सीमान्तके दोनों तरफ निरीह नर-नारियोंकी निर्मम हत्या हुई, तो उससे मधुपुरी प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकी। विभाजनसे पहलेकी मधुपुरी बिना भेदभावके सभी तरहके विलासियों-विलासिनियों तथा उनके लग्गू-भग्गुओंका स्वागत करनेके लिये तैयार रहती थी। वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें भारतीयोंके उच्च कुलोंमें चाहे जो भी छूआ-छूत रही हो, पर दो महायुद्धोंके बाद वह बिल्कुल मिट गई। बेटी न सही, लेकिन रोटी सबकी एक हो गई। मधुपुरी छोटी-बड़ी किसी सरकारकी ग्रीष्म-राजधानी नहीं थी, ऐसा होनेसे वह घाटेमें नहीं थी, क्योंकि सरकारी वातावरण न होनेसे यहाँ शुद्ध विलासी लोग आते थे, जिनमें गोरांगोंकी संख्या सबसे अधिक थी। उनके बाद राजा-नवाबोंका नम्बर आता था। क्लबोंमें, रेस्तोरां और होटलोंमें उनके कीमती सुराके चषक एक दूसरेसे मिलकर खन-

खनाते थे। गोरांगोंके साथ कालोंको उतनी आजादी नहीं थी, और केवल किसी सरकारी मन्त्रीको ही इस तरहका कभी-कभी सौभाग्य प्राप्त हो सकता था। बावर्ची और खानसामे भारतवर्षमें सबसे अच्छे और महँगे चट्टग्रामके बरुआ बौद्ध या गोआके ईसाई होते थे, लेकिन उनको रखनेकी शक्ति सभी गौरांगोंके पास नहीं थी। एक तरह इन पेशोंपर मुसलमानोंका आधिपत्य था। हिन्दू राजा हों, मुसलमान नवाब हों, या अंग्रेज सेठ या अफसर, सबके यहाँ मुसलमान बैरा-खानसामा थे। हिन्दू, विशेषकर ऊपरकी जातवाले, इस पेशेमें हाथ ही नहीं लगा सकते थे। कोई रानीसाहिबा यदि ज्यादा धार्मिक विचार रखनेवाली हुईं, तो उनके यहाँ ब्राह्मण रसोइया भले हो जाये, जिसका काम साथ-साथ बंगलेके कमरों और फर्नीचरको गंदा करना भी होता था। मुसलमान बैरा चाहे साहेबके लिये उसे अभक्ष्य माँस भी तैयार करना हो, कोई आनाकानी नहीं करता था। हाँ भोजनमें वह भागीदार नहीं बन सकता था। चार-चार पाँच-पाँच पीढ़ियोंसे यही काम करते-करते ये लोग रसोईखाने और मेजकी बारीकियोंको समझ गये थे। चीनी और शीशेके कीमती बर्तन उनके हाथोंमें बहुत कम टूटते थे। अपने मालिकके सामने खूब साफ-सुथरी बगलेकीपर जैसी पोशाक पहनना उनके स्वभावमें हो गया था। अपने धर्मके प्रति उनमें बड़ी भक्ति थी। उनमेंसे अधिकांश रोज नमाज पढ़ते थे। जुमा (शुक्रवार) के दिन मधुपुरीकी अब खाली-सी पड़ी सारी मस्जिदें भर जाया करतीं। इतना होते भी उनमें दूसरे धर्मोंके प्रति उतनी घृणा नहीं थी, और न मुसलमान होनेके कारण वह अपनी अलग जबर्दस्त जमातबन्दी करनेके लिये तैयार थे। मधुपुरीके मकानों और सड़कोंके बनानेवाले मजदूर अधिकांश बाल्ती (कश्मीरी) मुसलमान थे, जिन्हें यहाँके लोग लदाखी कहा करते थे। वह छूआछूतमें हिन्दुओंसे किसी प्रकार कम नहीं थे। अपने देशमें वह दूध तक भी हिन्दूके हाथका नहीं पी सकते। पर, थे बड़े सीधे-सादे, मधुपुरीके सबसे डरपोक बनिये भी उन्हें चार गाली दे सकते थे। यदि विभाजनसे २५ वर्ष पहले देखा जाता, तो मालूम होता, कि मधुपुरीमें साम्प्रदायिकता या मजहबी कटुताका कहीं नामोनिशान नहीं है।

मुस्लिमलीगने मुसलमानोंकी अलग जाति होनेका प्रचार करना शुरू

किया, बढ़ते-बढ़ते उसने देशके बँटवारेकी माँग की। लीगी मध्य-वर्गके मुसलमान मधुपुरीमें आते ही थे, उनके सम्पर्कसे मुसलमान व्यापारियों और फिर मुसलमान जनसाधारणपर प्रभाव पड़ने लगा। "मुस्लिमलीग जिन्दाबाद" "कायदे आजम जिन्दाबाद" "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारे यहाँ भी जब-तब सुनाई देने लगे। द्वितीय महायुद्ध समाप्त होते-होते, पाकिस्तानका आन्दोलन बहुत जोर पकड़ने लगा, और बँटवारेसे एक ही साल पहले यहाँतक नौबत आ गयी, कि मधुपुरीके हिन्दुओंको पाकिस्तान बिल्कुल आँखोंके सामने दिखाई देने लगा। अब लदाखी मुसलमान भी मुस्लिमलीगके झण्डेके नीचे थे। मधुपुरीमें आनेवाले लोगोंमें घासाहारी बहुत कम ही होते हैं। यहाँ माँसका जितना खर्च है, उसीके अनुसार माँस-विक्रेताओंकी जरूरत पड़ती है। सिक्ख हलाल होनेके कारण मुसलमानके हाथके माँसको भक्ष्य नहीं समझते, पर बाकी हिन्दू हों या ईसाई, सभी हलाल माँस खानेसे परहेज नहीं करते। इतने लोगोंके लिये माँस तैयार करनेके वास्ते यहाँ कसाइयोंकी बहुत काफी संख्या रहती थी। कसाई हिन्दुओंकी उन जातियोंमेंसे हैं, जो हिन्दुस्तानमें इस्लामके आते ही उसके झण्डेके नीचे चले गये। माँस और हड्डीवाले शरीरपर छुरा कैसे चलाना चाहिये, इसका उन्हें बचपनसे ही अभ्यास होता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि वह बड़े युद्धवीर होते हैं। पर हिन्दू उनकी खूनखारीसे डरते हैं। लीगका आन्दोलन चरमसीमापर पहुँचा था। पहले माँसको बहुत ढाँककर ले जाना पड़ता। जानवरको स्वास्थ्यके ख्यालसे भी हर जगह काटनेकी इजाजत नहीं थी। कसाइयोंने हिन्दुओंको धमकी दी, हम शहरके चौराहेपर गाय काटेंगे। हिन्दू कुछ करनेकी शक्ति नहीं रखते थे, अँग्रेज लीगियोंकी पीठ ठोंक रहे थे। कुछ दिन तो ऐसी नौबत आ गयी, कि सचमुच ही लाला लोग चौराहेके पासकी अपनी दूकानोंको छोड़कर भाग गये। चारों ओर महा आतंकका राज्य था। मुसलमान जनसाधारण यह ख्याल नहीं करता था, कि पाकिस्तान मधुपुरीसे बहुत दूर है। उसके बन जाने पर भी मधुपुरीके मुसलमानोंके लिये उससे कोई फायदा नहीं होगा, क्योंकि वह वहाँ जा नहीं सकते। मालूम नहीं, कभी पाकिस्तानके हिमायतियोंके सामने उन्होंने यह सवाल भी रक्खा। यदि रक्खा हो, तो उन्होंने बतला दिया होगा, कि

ऐसी नौबत आने पर हम सब पाकिस्तान चले चलेंगे। उनके कहनेके अनुसार पाकिस्तान पृथिवीपर दूसरा स्वर्ग होकर उतरनेवाला था।

अभी विभाजनकी सीमा निश्चित नहीं हुई थी, लेकिन पश्चिमी पंजाबके सम्पन्न हिन्दू पहले हीसे निष्क्रमणकी तैयारी करने लगे। उनके लिये सबसे सस्ते और आरामके रहनेके स्थान हिमालयकी विलासपुरियाँ थीं, विशेषकर वह, जो पंजाबसे बहुत दूर नहीं थी। लाहौर और दूसरे शहरोंके हजारों परिवार भागकर उस साल (१९४७ ई०) की बरसातमें मधुपुरीमें चले आये। सारे मकान और औट-हौसतक ठसाठस भर गये। पंजाबी हिन्दुओंको अपने प्रदेशमें मुसलमानोंके साथ संघर्ष करनेका तजर्बा था, इसीलिये वहाँके बनियें भी उतने डरपोक नहीं थे, जितने कि मधुपुरीके। अपने संख्या-बलका भी उनको पूरा भरोसा था। कहाँ यहाँके लीगी मुसलमान चौरस्तेपर गाय काटनेकी धमकी देकर ढीली धोतीवाले लालोंकी नींद हराम किये हुए थे, और कहाँ पंजाबियोंने आते ही लेनेका देना शुरू कर दिया। हफ्ते ही दो हफ्तेमें मुसलमान समझने लगे, जब दो-चार जगह पंजाबी सिक्खों या हिन्दुओंने उन्हें पीट दिया और कहीं सुनवाई नहीं हुई। अब वह रोआँ गिराकर रहने लगे। "पाकिस्तान जिन्दाबाद" की जगह "पाकिस्तान भागो"का नारा बुलन्द हुआ।

मध्यम-वर्गके लीगी मुसलमानोंकी भी हिम्मत टूट गयी, किन्तु उनको भरोसा था—हम पाकिस्तान पहुँच जायँगे। मधुपुरीमें आये पंजाबी हिन्दू-सिख टकटकी लगाये देख रहे थे, कि लाहौर किधर जाता है—अधिकांश लोग लाहौर शहरके रहनेवाले थे। उन्हें हदसे ज्यादा उम्मीद थी, कि रावी पश्चिमी पाकिस्तानकी सीमा बनेगी, तथा लाहौर अवश्य हिन्दुस्तानमें चला आयेगा। आखिरी फैसला सुनानेसे पहले ही पंजाबमें खूनकी धारायें बहने लगीं। रेडियोसे जब सुना कि लाहौर पाकिस्तानको दे दिया गया, तो शरणार्थियोंका खून खौल उठा। बेचारे मधुपुरीके अधिकांश मुसलमान अब समझने लगे थे, कि पाकिस्तान हो जाये, तो भी उससे हमें कुछ लेना-देना नहीं। हमें तो वहीं जीना और मरना है जहाँ हमारी अनगिनत पीढ़ियाँ सोई पड़ी हैं। उनके मालिक अधिकांश जहाँ रहते हैं, वहीं उनकी जीविका चल सकती है। वह अपनी गलतीको पूरी तौरसे समझने लगे थे, लेकिन, इसे कौन सुनता है। यदि पाकिस्तानमें हमारे भाइयोंके

खूनकी नदी बह रही है, तो यहाँ भी हमें उसका बदला लिये बिना नहीं रहना चाहिये। बिल्कुल कबीलेशाही युगकी मनोभावना लोगोंमें जाग उठी—अपराधी व्यक्ति नहीं, बल्कि उसका सारा कबीला है। मधुपुरीमें भी उसी काण्डको दोहरानेका उपक्रम हुआ। यहाँके अधिकारी बहुत चाहते थे, कि ऐसा न होने पाये। लेकिन, यह मामूली तेज हवा नहीं, बल्कि तूफान था, उसे कहाँ तक रोका जा सकता? आखिर यहाँ मुसलमानसे १५–२०—ज्यादातर मजदूरोंमें तर—बलिके बकरे बने। मधुपुरीके बिखरे हुये घरोंमें उन्हें रखना खतरेसे खाली नहीं था, इसलिये एकान्तमें स्थित एक बहुत-से बँगलोंवाली इस्टेटमें उन्हें निकाल-निकालकर पहुँचाया गया।

सुलतान कभी "पाकिस्तान जिन्दाबाद"के नारेमें शामिल नहीं हुआ था। उसे समझमें ही नहीं आता था, कि पाकिस्तान यदि हमारे गाँवमें नहीं बनता, तो उससे हमें क्या लाभ? वह बहुत बोलने-चालनेवाला आदमी नहीं था, नहीं तो लोग उसे काफ़िर कहनेसे भी बाज न आते। वह समझता था, मैं यदि किसीका बुरा नहीं करता तो मेरे साथ कोई क्यों बुरा करेगा?

लेकिन, जब उसके पड़ोसमें ही पाँच मुसलमान किरपानसे काट दिये गये, तो उसका विश्वास भी डगमगाने लगा, और पुलिसकी रक्षामें वह भी शरणार्थियोंके कैम्पमें पहुँचा। सरकारने खाने-पीनेका प्रबन्ध किया था, लेकिन पहलेसे कोई तैयारी नहीं थी, इसलिये आध पेट भी भोजन नहीं मिलता था। इस उथल-पुथलसे मधुपुरीके चार-पाँच हिन्दू नेता और व्यापारी बन गये। मुसलमानोंकी चल-सम्पत्तिका अधिक भाग इनके हाथमें चला गया। रक्षाके लिये जो पुलिस और पलटन आई थी, वह भी पाकिस्तानमें हिन्दुओंके ऊपर होते अत्याचारोंकी अतिरंजित खबरोंको सुनकर मधुपुरीके निरीह मुसलमानोंके प्रति दया दिखानेके लिये तैयार नहीं थी। सैनिकोंके सामने दूकानोंसे कीमती कालीन, कपड़े, फर्नीचर और दूसरे सामान लूटे जाते, पर वह किसीको नहीं रोकते। धनी लोगोंने तो लाखसे १० लाखके मालिक बननेके लिये अपना बाकायदा प्रबन्ध कर लिया था, और थोड़ा-बहुत लूटनेवाले लोगोंकी चीजें भी कुछ ही समय बाद मिट्टीके मोल इन्हींके हाथोंमें चली गई, क्योंकि उन्हें रखनेमें तलाशी और पकड़े जानेका भय था।

खैरियत यही हुई, कि मधुपुरीमें यह आँधी दो-तीन दिनसे अधिक नहीं रही। नाहककी खून-खराबीको लोगोंने छोड़ दिया, और पुलिस-पलटनने भी उसके रोकनेमें सफलता पाई। इस तूफानमें मधुपुरीने अपने इतिहासके सबसे योग्य और सर्वप्रिय प्रबन्धकको खो दिया। पागलपनमें सभी कैसे यह समझनेके लिये तैयार हो सकते थे, कि मुसलमान घरमें पैदा होनेपर भी उस पुरुषमें धार्मिक पक्षपात छू नहीं गया था। सुलतान अपने दूसरे धर्म-भाइयोंकी तरह यद्यपि इस्टेटके औट-होसमें रहनेके लिये मजबूर था, लेकिन सबसे पहले मना करनेपर भी जो आदमी बाहर निकला, वह सुलतान ही था। हाँ, एक दूसरे भी वृद्ध मुसलमान थे। अंग्रेजी सरकारके बहुत बड़े अफसर होकर पेन्शन ले मधुपुरीको ही उन्होंने अपना निवास बनाया था। वह उसकी विलासितासे नहीं, बल्कि सदा-बसन्तसे आकृष्ट हुये थे। उन्होंने समझा "मेरे हृदयके अन्तस्तलमें भी जब जरा भी मजहबी तअस्सुब नहीं है, तो मुझे क्यों किसीका डर होना चाहिये ? और यदि डर हो भी, तो मरनेसे बढ़कर और क्या हो सकता है। ७० वर्षका होकर और प्राणोंका लोभ करना मेरे लिये अच्छा नहीं।" तूफान जब अपनी चरम शक्तिपर पहुँचा हुआ था, उस समय भी यह वृद्ध अकेले ही मधुपुरीकी सड़कोंपर घूमते। उनके हित-मित्रोंने बहुत समझाया, लेकिन वह एक भी बात माननेके लिये तैयार नहीं थे। अन्तमें मधुपुरीके मुखियोंने चुपचाप उनके पीछे दो-तीन आदमी लगा दिये। यदि उन्हें यह मालूम होता, कि यह लोग मेरी रक्षाके लिये चल रहे हैं, तो वह कभी इसे नहीं पसन्द करते।

(३)

पाकिस्तान बन गया। तूफानके अगले ही साल मधुपुरीके बैरा-खानसामों-मेंसे कितने ही पाकिस्तान चले गये। मधुपुरीके बैरा-खानसामा हिमालयकी विलासपुरीके अभ्यासी थे, इसलिये पाकिस्तानमें भी उन्होंने वैसा ही स्थान ढूँढ़ना चाहा, लेकिन वहाँ एक मात्र मरी ही थी। वहाँ जानेपर उनकी क्या हालत हुई, यह १ अगस्त १९५० अर्थात् तूफानके सालसे तीन वर्ष बादके एक पत्रसे मालूम होगा।

"बखीजमतसरीफ भाई सबीर बकस इस तरफ अपना भाईका सलाम और

दुवा कबूल करना (।) बाकी अपनी भाबीके तरफसे सलाम कबूल करना (।) कैती है के मेरा सलाम हात जोड़कर कबूल करना (।) बाकी भाई जी सब खैरीयेत है (।) आपकी खैरीयेत हमेसा खुदासे नेक चाता हूँ (।) खुस रहो सलामत रहो (।) बाकी आपका खत हमको तारीख ३१-७-५० को मीला (।) पड़कर दीलको भौत खुसी हुई (।) खुदा आपको बी खुश रखै (।) इस तरे मालूम हुआके मेरा भाई सबीर बकस मेरे पास बैठा है (।) बाकी अगर आपने बहीनके वासते इस तरे करा है जीसतरे आप लीखते हो के सब जैजाद बहीनके नामपर करा दीइ है तो भाई जी आपने भौत ही अछा कीया (।) मैं इस बातसे भौत खुसी हूँ (।) बड़ा अछा आपने कीया (।) खुदा आपको नेकी देगा (।) बाकी जब आप पाँच दीनकी छुटीपर गये थे तो घर बी गये होंगे (।) बाकी भाईजी घरका खयाल सबसे पैले रखना (।) जो कुछ हो अपने छोटे भाईको बी सहारा देना (।) आपको मालूम हो के मैं कोसीस कर रहा हूँ (।) जीनदगी रहेगी तो इनसाअला मुलाकात जरूर होगी (।) आप कोई तराका खयाल ना करना (।) ये जुदाइ कीसमतकी बात है (।) लेकीन खुदाये सुकरिया हो के हम आप तन-दुरुस्त रहेंगे तो फीर बी मील जावेंगे (।) बाकी आपकी भाबी तो रात दीन यहीं कैती है के चलो घर चलो (।) अगर हो सकता हो तो मुझको सबीर बक्स के पास छोड़ आवू (।) इस तरै कैती है (।) सो भाईजी कोई फीकर ना करना। मगर घरका खयाल रखना (।) अपनी इजत घरसे है (।) और सबको अपनेसे अछा समजो (।) बाकी गलती माफ हो तो जरा खत लीखनेवालेको मेरा भौत भौत सलाम पौछे (।) और जरा अपनी हीनदीको साफ लीखें क्योंके मेरी समजमें बड़ी मुसकीलसे आती है (।) बाकी भाईजी जब आपका काम वहाँपरसे खतम हो जायगा तो सीदा अपने घरको चलना (।) खबरदार इधर-उधरका खयाल ना करना (।) सबर और सूरसे सब कुछ होता है (।)

"फकत सबको मेरा सलाम कैना जो कोइ आपके पास मिलने आता होगा। और मैंने येक खत देहली भी भेजा है (।) जवाब आनेपर वहाँका हाल लीखूँगा (।) जादा सलाम आपको (।)"

१९४७के अगस्तमें मधुपुरीके मुसलमानोंपर जो आतंक छाया था, उसके कारण उनमेंसे कितने ही पाकिस्तान चले गये। उनका ख्याल था, कि वहाँपर

भी वह नया घर आबाद कर लेंगे। जाड़ोंमें पहाड़के नीचे किसी गाँवको अपना गाँव बना लेंगे, और गर्मियोंमें पाकिस्तानकी पर्वतीय विलासपुरी उनको काम देगी। पर, जितनी संख्यामें भारतमें विलासपुरियाँ थीं, और जितने सैलानी यहाँ आते थे, उतने कोइ-मरीमें नहीं आ सकते थे। इसके कारण उन्हें पछतानेके लिये मजबूर होना पड़ा, जैसा कि ऊपरके पत्रसे मालूम होगा। जो पाकिस्तान नहीं जा सके, उन्होंने भी चार साल तक मधुपुरीकी तरफ झाँकनेकी हिम्मत नहीं की। वहाँ उन्हें अपने प्राणोंका डर मालूम हो रहा था। तीनों बाजारोंमें एक भी मुसलमानकी दूकान नहीं दिखाई पड़ती थी, और न सड़कोंपर वह चलते-फिरते मिलते थे। लेकिन, सुलतानका भय तो उसी साल हट चुका था। जब कैम्पसे मुसलमान स्त्री-पुरुषोंको लारियोंपर बैठाकर नीचे भेजा जा रहा था, तब भी उसने नीचे जाना पसन्द नहीं किया, और नवम्बर तक मधुपुरीमें ही अपने तीर-धनुषको लिये घूमता रहा। उस साल बरसातमें जो रंगमें भंग हुआ, उसके कारण दूसरा सीजन जम नहीं पाया। सैलानियोंकी कमी रही, लेकिन उनसे कई गुना अधिक शरणार्थी अब मधुपुरीमें आ गये थे। सुलतानको कामकी कमी नहीं रही, क्योंकि शरणार्थियोंको अभी अपने रहनेका कोई ठाँव-ठिकाना मालूम नहीं था, और उन्हें जाड़ोंको भी यहीं बिताना था, जिसके लिये रजाइयोंमें रुई भरवानेकी जरूरत थी।

(४)

तूफानने मधुपुरीकी लक्ष्मीको लूट लिया, यह बात नहीं मानी जा सकती। उसकी श्रीका ह्रास तो १९४६ में ही होने लगा, जब कि अग्रसोची अंग्रेज दूकानदार और दूसरे अपनी सम्पत्तिको मिट्टीके मोल बेंचने लगे, और उस सालकी गर्मियोंमें अंग्रेज बहुत कम संख्यामें आये। यदि अगस्तका तूफान न आया होता, तो भी मधुपुरीके भाग्यमें वही बदा हुआ था, जिसे अब देखा जाता है। एक-ब-एक पैसेवाले विलासियोंकी संख्या कम होने लगी। सबसे बड़े अवलम्ब गौरांग नर-नारी दालमें नमकके बराबर रह गये। रियासती राजाओं और जमींदारी ताल्लुकदारोंकी आमदनीपर वज्र मार गया। सरकारकी उदारतासे जो पेन्शन या क्षतिपूर्तिकी रकम मिली, यद्यपि वह कम नहीं थी है, लेकिन ये सामन्त अपने भविष्यको अब निश्चिन्त नहीं समझते, इसलिये

समझदार एक-एक पैसोंको सँभल-सँभलकर खर्च करते हैं। पहले जैसी साखर्ची उनमें देखी नहीं जाती। इसका प्रभाव मधुपुरीके सारे जीवनपर पड़ना स्वाभाविक है।

सुल्तान हफ्ते भर भयका शिकार रहा और कैम्पकी नजरबन्दी तो उसने दो-तीन दिनसे अधिक नहीं स्वीकार की। उसके घरमें बुढ़िया छोड़ कोई नहीं है। उस तूफानमें उसका लड़का और बहू बिखर गये। लाहौरमें वह कहींपर रोटियाँ तोड़ रहे होंगे। लेकिन जिस तरहके जीवनको बेटा बिता रहा है, वह नहीं चाहता, कि उसमें बापको भी बुलाकर शरीक करे। अगर वह लिखे तो भी सुल्तान मधुपुरी छोड़कर जानेके लिये तैयार नहीं है। आँखकी ओटमें कितनोंको स्वर्ग दिखलाई पड़ता है, लेकिन सुल्तान ऐसे स्वर्गका कभी विश्वासी नहीं हुआ। वह पहलेकी तरह तड़के अब दूरके बँगलोंमें नहीं पहुँचता, और ८ बजे रोटी खाकर ही अपनी कुटिया छोड़ता है। साथमें शायद ही कभी रुमालमें बँधी रोटी लाता है। महँगाई और उससे भी ज्यादा कुछ वर्षोंके चीनीके अकालने लोगोंकी उदारताको खतम कर दिया, और शायद ही कोई बाबू सुल्तानको एक प्याला चाय देनेकी इच्छा प्रकट करता है। सुल्तानको अपनी मजूरीसे काम है। दो घण्टेमें पाँच सेर रुई धुन भरकर रजाई बना देना उसके बायें हाथका खेल है, जिसका मतलब है ढाई रुपया मजूरी, यदि तागा भी चलाये, तो १२ आना और। लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं है, कि दिनके आठ घण्टेमें वह चौबीस रुपया कमा लेता है। दिनमें यदि एक भी काम मिल जाये, तो इसके लिये वह खुदासे बहुत-बहुत शुक्रिया अदा करता है।

सुल्तानका चेहरा बड़ा भोला-भाला है। उसकी बात सीधी-सादी होनेपर भी बड़ी प्रभावशाली होती है। उसे मधुर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसके चेहरे और बात दोनोंमें एक तरहकी टीसका पता लगता है। सुल्तान उसके बारेमें किसीसे कहना नहीं चाहता, शायद समझता है, कहनेसे मेरी तकलीफोंको कोई बाँट थोड़े ही लेगा। उसकी बुढ़िया गाँवमें रहती, बेटेके लिये हर वक्त रोती खैर सल्लाह जाननेके लिये बराबर चिट्ठी लिखवाती रहती है। लाहौर आजसे छ ही वर्ष पहले कितना नजदीक था, शामको चढ़े और सबेरे लाहौरमें मौजूद। बेटा-बहू लाहौरमें रहते हैं, लेकिन वह बुढ़ियाके लिये दूसरा लोक है, जहाँ

मरकर जानेकी भी उसे सम्भावना नहीं है। सुलतान छोटा-मोटा दार्शनिक है। अपने मनको वह किसी तरह समझा लेता है। अपने जाति-भाई कबीर साहबके कुछ शब्द भी जानता होता, तो इस समय उसे बहुत संतोष होता।

सुलतान मजहबकी तरफसे उदासीन है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु वह शुक्रवारको भी बराबर मस्जिदमें जानेवालोंमें नहीं था। रोजा रख लेता है, वह उसकी प्रकृतिके अनुकूल है। सभी गरीबोंके लिये सुलभ भी है, क्योंकि बिना सवाबकी उमीदके भी उनके घरमें रोजे बराबर ही हुआ करते हैं। उसका सबसे अधिक मेल-जोल अपने जैसे मजदूरोंके साथ है। धोबियोंके घरमें काम न होनेपर वह घण्टों बैठा क्या-क्या बातें करता रहता है। सुलतानके चेहरेपर यदि कभी हँसी देखनी हो, तो ऐसे ही समय वह देखी जा सकती है। हजाम, माली, चौकीदार, जमादार ये सब उसके अपने वर्गके हैं, चाहे वह हिन्दू हों, मुसलमान हों या ईसाई; उनके बीचमें बैठकर वह बिल्कुल आत्मीयता अनुभव करता है। उसे काम दिलानेमें भी आखिर वही सहायता देते हैं, और वह भी उनके कामको कम मजूरीपर कर देता है। उसके रहनेका स्थान चाहे तीन मील दूर हो, लेकिन वह सूर्यास्तके बाद ही लौटनेका संकल्प करता है।

एक दिन सुलतानको देखा, वह रिक्शेमें नधा हुआ है। धुना कारीगर होता है, और रिक्शा खींचनेवाला आदमी नर नहीं, पशुकी श्रेणीमें गिरा। सुलतानको रिक्शा खींचते देखकर बड़ा धक्का लगा। खींचनेवालेको नहीं, बल्कि देखनेवाले को। वह मान-अपमानसे परे हैं। दूसरा होता तो इस समय अपने मुँहको दूसरी ओर फेर लेता, लेकिन सुलतानने बाबूको अपनी ओर गौरसे देख जबर्दस्ती मुस्कुरानेकी कोशिश करते हुये कहा—"काम नहीं था। इस भाईने कहा, कि हमारा आदमी चला गया है, चले आओ।" यदि सुलतानको धुनाईका काम मिलता, तो वह रिक्शा खींचने क्यों जाता? उसके जाति-बिरादरीवाले कभी इसे नहीं पसन्द करते? मधुपुरीमें एक भी मुसलमान रिक्शा खींचनेवाला नहीं मिल सकता, मैदानके शहरोंमें चाहे साइकल या हाथके रिक्शोंको कितने ही मुसलमान मजूर चलाते हों। क्या सुलतान अब इस अवस्थाको पहुँच गया? कारीगरीका काम छोड़ अब केवल देह-बलका सहारा ही पेट भरनेके लिये रह गया है। वह जवान भी नहीं है, और न बलवान् ही।

निश्चय ही यदि किसी चढ़ाईपर रिक्शेको ले जाना हुआ, तो उसके लिये बड़ी मुश्किल हो जायेगी। मजूरोंको डाक्टरसे राय लेनेकी जरूरत नहीं पड़ती, लेकिन सुलतान अगर नगरपालिकाके डाक्टरसे अपने दिलकी परीक्षा कराता, तो वह जरूर कहता, कि रिक्शा खींचना छोड़ दो, नहीं तो किसी वक्त भी मौत आकर तुम्हें दबोच लेगी। सुलतानने मौतसे कभी नहीं भय खाया। उसे जबतक जीना है, तबतक पेटका कोई इन्तिजाम करना है। ऊपरसे नीचेकी श्रेणीमें जानेवाला सुलतान अकेला नहीं है। मधुपुरीमें विशेषकर और सारे देशमें भी इस विषयमें उसका अनुगमन करनेवाले लाखों हैं, और वह करोड़ोंपर पहुँचनेवाले हैं, यदि आर्थिक स्थिति ऐसी ही रही। उन पढ़े-लिखे लोगोंसे सुलतान जैसे लोग हजार गुना बेहतर हैं, जिन्होंने अपने कामके लिये रेखा खींच ली है, और कलम चलानेके सिवाय दूसरे कामको न जानते हैं, न करना चाहते हैं। सुलतानके परिचितोंको उसके पतनपर हँसना नहीं चाहिये। उसने अपने तीर-धनुषको अपनी कोटरीमें रख रक्खा है, जहाँसे वह किसी भी समय उन्हें उठाकर फिर फेरी लगा सकता है।

१९. मास्टरजी

(१)

पहाड़के लोग बहुत कम नीचेके मैदानोंमें जा बसनेकी हिम्मत करते हैं। सभी पहाड़ समुद्रतलसे बहुत अधिक ऊँचे होनेके कारण ठंडे होते हैं, यह बात नहीं है। वस्तुतः चार हजार-पाँच हजार फुटकी ऊँचाईपर जहाँ हिमद्रवित नदियाँ बहती हैं, ऐसे स्थान हिमालयमें बहुत कम ही हैं, और उन्हींको ठंडा कहा जा सकता है। पहाड़में बहती नदियोंके तटसे ऊपरके गाँव भी अधिकांश दो-तीन हजार फुटसे ज्यादाकी ऊँचाईपर नहीं होते और गर्मीकी पहुँच तीन हजार फुट तक है। यह भी जरूरी नहीं, कि सारे पहाड़ हरे-भरे घने जंगलोंसे घिरे और आसानीसे जीविका कमानेके साधनवाले हैं। पहाड़में पैदा हुये बच्चोंको ऊँची-नीची जमीनपर चलनेकी आदत हो जाती है। अतिशयोक्ति हो सकती है, लेकिन पहाड़ी लोग आमतौरसे शिकायत करते हैं, कि पहाड़में हम २०-३० मील एक दिनमें जा सकते हैं, लेकिन मैदानमें १० मील चलनेमें ही हमारे पैर लड़खड़ाने लगते हैं। मैदानी लोग इसको उलटी दिशामें कहते हैं और सौ-दो सौ गजकी साधारण चढ़ाई आ जानेपर भी हाँफते हाँफते इस देशको कोसने लगते हैं। यह बात नहीं कि यहाँके लोग पहाड़के खूँटेमें इतनी कड़ाईके साथ बँधे हुये हैं, कि वह कहीं दूसरी जगह जानेके लिये तैयार ही नहीं होते। भाग्यवादी कहते हैं "दाना छितराना तहाँ जाना जरूर है", लेकिन उसीको यथार्थतया कहनेपर हम कह सकते हैं, कि रोटीके लिये आदमी कहाँ-कहाँ नहीं जा सकता। हमारे लोग उसीके कारण कुली बनकर फीजी, मार्शस, दक्षिण-अफ्रीका ही नहीं, बल्कि दक्षिणी अमेरिकाके गायना और ट्रिनिडाड टापूतक पहुँचे। हिमालयकी पर्वतश्रेणियोंके अन्त होनेपर कहीं-कहीं उससे सटी हुई और कहीं-कहीं उससे विलग सिवालिककी क्षुद्र पर्वतश्रेणी हैं। एक स्थानपर इन दोनों पर्वतश्रेणियोंके बीचमें काफी फासला अतएव बीचमें काफी जमीन घिर गई है, जहाँ किसी समय घोर जंगल थे, यहाँ हाथी, बाघ और सिंह भी घूमा करते थे। ऐसी जमीनको संस्कृतमें

द्रोणी और हिन्दीमें दून कहते हैं। यद्यपि इस द्रोणीमें भयंकर जंगली जानवरोंका डर था, और उससे भी भयंकर मलेरियाके मच्छर रहते थे; लेकिन जब आदमियोंका गुजर न हो सका, तो उसकी पहुँचमें जितने भी जंगल थे, उन्हें साफ करके उसने खेतोंकी सीढ़ियाँ बना दीं पर जंगलोंके कटनेसे कितने ही चश्मे सूख गये और अनेक स्थानोंपर भूपात हुये। एकसे दो, दोसे चार, चारसे आठ होकर आदमीका बढ़ना मामूली बात है। अन्नका ठिकाना न रहनेपर पहाड़से लोग द्रोणी (दून) के भयंकर जंगलोंमें घुसे।

द्रोणीमें आ बसनेवाले पहाड़ी आदमियोंमें कितने ही ब्राह्मण-परिवार थे, कितने ही अछूत, हरिजन या शिल्पकार भी। पर, सबसे अधिक शोषित-उत्पीड़ित नर-नारी सबसे अधिक भूखकी मार सह सकते हैं। इसी संघर्षमें उनकी सन्तानें अधिक संख्यामें होश सँभालनेसे पहले ही चल बसीं, इसलिये वह अधिक संख्यामें द्रोणीमें नहीं रह सके। द्रोणीकी अवश्यकता यदि पहाड़-वासियोंको थी, तो भींटे जैसी क्षुद्र पहाड़ियोंके नीचे जो मैदानी गाँव, कस्बे और शहर थे; वहाँपर भी सन्तान-वृद्धि और भी तेजीसे हो रही थी। इस प्रकार १८वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें ही ऊपर और नीचे दोनों तरफसे लोग अनादिकालसे सुरक्षित द्रोणीके महावनकी ओर दौड़ने लगे, दोनोंमें होड़ लग गई। मैदानके लोग अपनी संख्या-बलके कारण प्रवासमें भी अधिक गये, इस प्रकार किसी समय पहाड़ियोंकी समझी जानेवाली द्रोणीपर अब देसवालियोंका बहुमत हो गया—पहाड़के लोग नीचेके प्रदेशको देस या मधेस और वहाँके लोगोंको देसवाली या मधेसिया कहते हैं।

१९ वीं शताब्दीके प्रथम चरणमें ही द्रोणीपर अंग्रेजोंका शासन स्थापित हो गया। उन्होंने इसके आबाद करनेमें ज्यादा मुस्तैदी दिखलाई, जिसका एक कारण यह भी था, कि नेपालसे छीने हुये हिमालयके भागकी ठण्डी जगहोंको देखकर अंग्रेजोंको ख्याल आया, कि यहाँके जलवायुमें गौराङ्ग लोग फल-फूल सकते हैं, यहाँपर उनका उपनिवेश वैसे ही बसाया जा सकता है, जैसे आस्ट्रेलिया, अफरीका, कनाडा, न्युजीलैण्ड आदिमें। कम-से-कम अफ्रीकामें तो असली निवासियोंकी संख्या कम नहीं थी, पर मुट्ठी भर गोरोंने जा उसे दखल कर अपना उपनिवेश बना लिया। अंग्रेज समझते थे, हमारे पास नये-नये हथियार

हैं, जो हमेशा हमारे ही पास रहेंगे, और नैटिव (काले लोग) हमारी गुलामीके लिये हमेशा तैयार रहेंगे। वह यही स्वप्न आसामसे काँगड़ा-कास्मीरत तकके लिये १९ वीं शताब्दीके सारे उत्तरार्धमें देखते रहे। उनके सामने सिर्फ एक ही समस्या थी: गोरे उपनिवेशी तभी यहाँ स्थायी तौरसे बस सकते हैं, जब कि यहींसे वह अपनी जीविका जुटा सकें। गौरांगोंकी जीविकाका तल बहुत ऊँचा होता है, और परतन्त्र देशोंमें तो अपने देवत्वको साबित करनेके लिये उसे और भी ऊँचा रखना पड़ता है। इंगलैण्डमें भूखे मरते बेकार गरीबोंकी संख्या कम नहीं थी, लेकिन अंग्रेज कभी नहीं पसन्द करते थे, कि वह लोग काले लोगोंके देशमें आवें। वह रसोइया-खानसामा होकर गोरोंको यहाँ आने नहीं देना चाहते थे। जीविकाके प्रबन्धके लिये ही उन्होंने जगह-जगह चायके बगीचे स्थापित किये, मेवोंके बागोंके तजर्बे किये, ताँबा-लोहाकी खानोंको चालू किया। खानकी चीजोंमें इंगलैण्डके कारखानोंसे मुकाबिला था, जिनके सस्ते मालके मुकाबिलेमें यातायातके साधनोंसे दूरके इन कारखानोंको सफलता नहीं मिल सकती थी। पर, अंग्रेज अपना प्रयास छोड़नेके लिये तैयार नहीं थे। १९ वीं शताब्दीके द्वितीय पाद समाप्त होते समय एक बार फिर उपनिवेश कायम करनेकी धुन तेज हो गई। हॉगसन बार-बार सुझाव देकर निराश हो गया था, क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनीके धनीधोरी उपनिवेशके पक्षमें नहीं थे। बूढ़े हॉगसनने अपने प्रयासको सफलताकी ओर बढ़ते देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। किन्तु इसी समय सन् ५७ का भयंकर विद्रोह शुरू हो गया, जिसके कड़वे तजर्बेने अंग्रेजोंके दिमागसे हमेशाके लिये हिमालयमें गोरा-उपनिवेश बसानेका स्वप्न निकाल दिया। अब उनका इतना ही ध्यान था, कि हिमालयकी ठण्डी जगहोंमें, जहाँका जलवायु और वृक्ष-वनस्पति इंग्लैण्ड जैसे हैं, मधुपुरी जैसी जिन विलासपुरियोंका सूत्रपात हुआ है, उन्हें और आगे बढ़ाया जाये।

विलासपुरियोंको सेवकोंकी ही अवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि खाने-पीनेकी दूसरी बहुत-सी चीजें भी नजदीक मिल सकें, तो और अच्छा। द्रोणीके जंगल १९ वीं शताब्दीके प्रथमपादमें कटने लगे, जिसकी गति और तेज हो गई। पहलेका एक गाँव बढ़कर अब शहरका रूप लेने लगा, जहाँ तराजू उठानेका काम देसवाली बनियोंने ले लिया, और सूदखोरीका काम भी उन्हींके हाथमें

चला गया। द्रोणीमें देसवालियों या पहाड़ियोंमें किसकी प्रधानता हुई, यह वहाँकी भाषा ही बतला देती है। पहाड़ी लोग भी यहाँ आकर अब नीचेकी मैदानी भाषा बोलने लगे, और केवल ब्याह-शादी करनेमें ही पहाड़ीका ख्याल करते थे। वह खेतीमें भी देसवालियोंका मुकाबिला नहीं कर सकते थे, क्योंकि किसानों और खेत-मजूरोंमें अधिक संख्या नीचेसे आनेवालों की थी। बड़ी-बड़ी दैविक और भौतिक आपदाओंको झेलते बड़ी मुशक्कतसे जिन खेतोंको पहाड़ियोंने तैयार किया था, उनमेंसे भी कितने ही देसवाली महाजनोंके हाथमें चले गये, और गाँवोंके कितने ही लोग जीविका ढूँढ़नेके लिये द्रोणीमें स्थापित हुये नये शहरकी ओर भागे।

(२)

एक पहाड़ी गरीब ब्राह्मण-परिवार शहरमें आ बसा था। ४ रुपये महीनेकी चपरासीगीरी उस समय बड़े भाग्यकी चीज समझी जाती थी। वस्तुतः १९०० ई० के ४ रुपये १९४० के १६ रुपये और १९५३ में ६४ रुपयेके बराबर थे, यदि गेहूँके दरसे उसके मूल्यको आँका जाये। पर, ४ रुपयेमें वह ब्राह्मण-परिवार—माँ-बाप और अपने चार लड़के-लड़कियों—का पालन-पोषण कैसे करता था, यह समझना सुगम नहीं है। इसी परिवारके दो लड़कोंमें बड़े हमारे मास्टरजी थे, जो वर्तमान शताब्दीकी प्रथम दशाब्दीमें पैदा हुये थे। उस समय स्कूलोंकी संख्या बढ़ चली थी। मास्टरजीके पिता मुश्किलसे दस्तखत कर सकते थे, लेकिन वह विद्याके महातमको समझते थे। स्कूल भी अपने मोहल्लेमें ही था। उन्होंने अपने लड़कोंको स्कूलमें बैठा दिया। मास्टरजी साधारण बुद्धिके विद्यार्थी थे, पर किसी साल परीक्षामें फेल नहीं हुये, यह कम नहीं था। पिताने पेट काटकर मुश्किलसे बड़ेको हिन्दी मिडल पास करवाया। यदि शहरमें न होते, तो शायद उनकी पढ़ाई प्राइमरीसे ऊपर नहीं जाती। पिताने सोचा था—मिडल तक पढ़ लेगा, तो कहीं पढ़ाकर अपने लिये खाने-कमानेका रास्ता निकाल लेगा।

मास्टरजीने १६ वर्षकी उमरमें मिडल पास किया, लेकिन माँ-बापने उससे चार वर्ष पहले ही उनका ब्याहकर दिया था। ब्याहमें देर करना उन्हें पसन्द

नहीं था, और जिनके घरमें लड़कियाँ हों, वह क्यों देर होने देंगे ? गाँव होता, तो ब्याहके लिये दस-पाँच कोस दूरके गाँवोंमें वर ढूँढ़ना पड़ता, लेकिन इस शहरमें पहाड़ी ब्राह्मणोंके नाना गोत्रों और आस्पदोंके परिवार रहते थे। लड़कीको मास्टरजीके पिता-माता बराबर देखते थे, वह दूरके रिश्तेदारके घर की थी। दोनोंकी उमरमें पाँच-छ वर्षका अन्तर था, लेकिन आयुके पहले भागमें लड़के-लड़कियाँ बुद्धिमें एक दूसरेसे होड़ लगाने लगती हैं, जिसमें लड़कियोंकी चाल अधिक तेज होती है।

हिन्दी मिडल पास करनेके बाद गरीब लड़केको अंग्रेजी स्कूलमें कैसे दाखिल किया जा सकता था ? पिताने फीस माफ कराकर मुश्किलसे किसी तरह बेटेको मिडल तक पहुँचाया था। अब आगे पढ़ानेकी उनमें शक्ति नहीं थी। लड़का उतना तेज भी नहीं था कि मिडल पास करनेपर उसे छात्रवृत्ति मिलती। प्रथम विश्वयुद्धके आर्थिक संकटकालमें परिवारने बड़ी मुश्किलसे अपने शरीर और प्राण इकट्ठा रख पाया था। शताब्दीके आरम्भमें किसीने रसोंइया मिडलचीकी भविष्यद्वाणी की थी, लेकिन अभी वह भविष्यद्वाणी पूरी नहीं हो सकी थी, खासकर इस द्रोणीमें, और मास्टर साहबको एक प्राइमरी स्कूलमें काम मिल गया। चपरासी पिताको अपने साहेबकी सिफारिशसे यह सफलता मिली। मास्टरजी बच्चोंको पढ़ाने लगे। अभी उनकी उमर १७ वर्षकी थी। कद ज्यादा छोटा तथा शरीरसे दुबले-पतले होनेके कारण वह मास्टर जैसे दिखलाई नहीं पड़ते थे। अपने पदको साबित करनेके लिए उन्हें जरूरतसे अधिक छड़ीका सहारा लेना पड़ता था। इस समयसे बहुत पहले ही शिक्षा-विशेषज्ञ यह मान गये थे, और शिक्षा-विभाग इसका प्रचार भी करता था, कि दिमागमें विद्याको घुसानेके लिए छड़ी अनावश्यक ही नहीं, बल्कि हानिकारक चीज है। पर, जब पाठ न याद करके किसी लड़केने गुस्सा दिला दिया, या बार-बार गैर हाजिर रहता रहा, तो छड़ीपर हाथ गये बिना कैसे रह सकता था ? शिक्षाविभागके छोटे-बड़े अधिकारी जब स्कूलकी जाँच करनेके लिये आते, तो बराबर ध्यान रक्खा जाता, कि छड़ी स्कूलके भीतर कहीं दिखाई न पड़े।

मास्टरजीको अपने शहरसे दूर जंगलके पासके एक गाँवमें नौकरी मिली थी,

जहाँ पहले ही सालके क्वारमें मलेरियाने उन्हें धर दबाया, और शरीरपर जो थोड़ा-बहुत मांस था, वह भी गल गया। पिता और ससुरालके लोगोंको भी चिन्ता हुई, लेकिन शहरमें तो पहले हीसे पढ़े-लिखे लोग अध्यापकीके उम्मीदवार थे। मास्टर साहबको दो साल गाँवके स्कूलमें ही रहना पड़ा, तब शहरकी म्युनिसिपैलिटीके स्कूलमें स्थान तो अभी नहीं मिला, लेकिन कोशिश करनेका यह फल हुआ, कि वह ट्रेनिंग स्कूलमें भेज दिये गये, और वहाँसे लौटनेपर म्युनिसिपल स्कूलमें जगह मिल गई।

मास्टरजीको शहरमें जगह मिलनेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। यही नहीं कि अब वह अपने घरपर रहते स्कूलमें पढ़ानेको जाते, बल्कि उनकी पत्नी भी साथ थीं। पहाड़के ब्राह्मण-राजपूत साँवले बहुत कम ही होते हैं। मास्टरजी गोरे थे और उनसे ज्यादा गोरी उनकी बीबी थीं। बल्कि, इतना ही कहना उनके साथ अन्याय होगा। वह षोडशी होते समय सुंदरी नहीं अतिसुंदरी थीं। मास्टरजी उनके सामने कुछ नहीं थे। पर कभी भी पत्नीने इसके लिए असन्तोष नहीं प्रकट किया। शहरमें आकर अब केवल आनन्द ही आनन्द था, इस बातकी एक गरीब परिवारसे कैसे आशा की जा सकती थी? पिता अब उतनी ही पेन्शन पा रहे थे, जितनी उन्हें मास्टरजीके पैदा होनेके वक्त तनखाह मिलती थी। मास्टरजीको १९ रुपया मिलता था। यदि कोई ट्युशन मिल जाता, तो ४–५ रुपया और आ जाते, लेकिन शहरमें केवल हिन्दी जाननेवालेको ट्युशन कहाँ मिलता, जब कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग सस्तेमें ट्युशन करनेके लिए तैयार थे। पिताने किसी तरह कर्ज करके लड़कियोंका ब्याह कर दिया, जिसे चुकानेमें उन्हें कई साल लगे थे। छोटे लड़केका भी ब्याह हो चुका था। माता-पिता और बेटे-बहुएँ मिलाकर छ ही मुँह परिवारमें नहीं थे। शहरमें आनेपर मास्टरजीको पहला लड़का हुआ, दूसरा उसके तीन वर्ष बाद फिर दूसरे साल एक लड़का और अगले साल एक लड़की—सब चार बच्चे हो गए। इस वक्ततक माता-पिता भी चल बसे, और मास्टरजी स्वयं अपने घरके सरदार थे, जिसका मतलब केवल अपने परिवारका सरदार होना था। आर्थिक संकटकी स्थितिमें संयुक्त परिवार अधिक दिनोंतक टिक नहीं सकता, इसीलिए छोटा भाई अलग हो गया था। अपने शहरके

स्कूलमें अधिक तरक्कीकी मास्टरजीको कोई आशा नहीं थी। उन्हें किसीने बतलाया, कि मधुपुरीमें स्कूलके मास्टरोंकी तनखाह अधिक है, और वहाँ पहाड़ी-भत्ता (हिल-अलौंस) भी मिलता है। लेकिन, मास्टरजीको मधुपुरीकी सर्दीका डर था, साथ ही वह यह भी जानते थे, कि वह अधिक खर्चीली जगह है। मधुपुरी बारह-चौदह मीलपर थी, जहाँ सबेरे जाकर शामको लौट आया जा सकता था। मास्टरजी अनेक बार मधुपुरी देख चुके थे। खर्चका भय जरूर था, लेकिन नगदके रूपमें वहाँ ड्यौढ़ी तनखाह थी। उनको अपनी स्त्रीके गृह-प्रबन्धपर पूरा विश्वास था—मास्टरजी इस बातमें असाधारण सौभाग्यशाली थे। वह कभी अपने घरको इतनी कम आमदनीमें सँभाल नहीं सकते थे, यदि उन्हें ऐसी स्त्री न मिली होती। स्त्रीने विश्वास दिलाया, कि हम वहाँ यहाँसे अच्छी हालतमें रहेंगे, तो उन्होंने कोशिश की। अध्यापकोंकी माँग पहले भी बनी रहती थी, और अब तो वहाँ शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी। मास्टरजीको नौकरी मिल गई।

मधुपुरीके एक छोरपर अवस्थित स्कूलमें जब वह पहले पहल गये, तो उनके मनमें कुछ असंतोष हुआ। तीनों बाजारोंमेंसे किसीके स्कूलमें होते, तो वहाँ शायद कोई ट्यूशन मिल जाता। पर, यहाँ कुछ सुभीते भी थे—पासके जंगलसे वह ईंधन लकड़ी मुफ्त ले सकते थे। बहुतसे खाली औट-हौस थे, जिनमें एक-दो कोठरीका मुफ्त मिल जाना मुश्किल नहीं था। उन्होंने यथा-लाभ संतोष कर लिया। दूसरे महायुद्धकी मँहगाईका प्रभाव पड़ा। मँहगाई भत्ता मिलता था, पर सारी तनखाह घरके खानेके लिये पर्याप्त नहीं होती थी। घरमें सिर्फ एक वक्त रोटी बनती, उसीमेंसे लड़कोंके कलेऊके लिये दो-चार रख दी जातीं। इस तरह अपने ही नहीं, बच्चोंको भी आध पेट रखकर कैसे काम चलता? उधर लड़ाईके कारण तरह-तरहकी फौजी नौकरियाँ मिल रही थीं, तनखाह भी अच्छी थी, और राशन तथा कपड़ेके दामको तनखाहमेंसे काटा नहीं जाता था। मास्टरजी ३२ वर्षके हो चुके थे। लेकिन, लड़ाईकी उस माँगमें यह आयु कोई बाधक नहीं हो सकती थी। शायद वह कोशिश करते, तो सिपाही भी बन सकते थे, पर लड़ाईमें खुशीसे जाकर मरना किसको पसन्द होता है? पहाड़ी सिपाहियोंके पढ़ानेके लिये हिन्दी मास्टरोंकी भी

अवश्यकता थी। यदि मास्टरजी मधुपुरीमें न होते, तो उन्हें कभी ऐसी नौकरीका पता नहीं लगता। हिन्दी मिडल पास हों चाहे नार्मल पास हों, अध्यापक पूरे कूपमंडूक होते हैं, उन्हें अपने स्कूल और घरकी दुनियासे बाहरका कोई पता नहीं रहता। अखबार पढ़नेका शौक नहीं होता, और शौक भी हो, तो उतनी कम तनखाहमें वह उसे खरीद कैसे सकते हैं? उनकी कूपमंडूकता कहाँ तक पहुँची हुई है, यह इसीसे मालूम होगा, कि एक मिडल स्कूलके प्रधानाध्यापकने अपने ही स्कूलसे मिडल पास और अब अपनी कृतियोंसे भारतसे बाहर भी प्रसिद्ध व्यक्तिका नाम भी कभी नहीं सुना था।

मास्टरजी एक दिन फौजी स्कूल-मास्टर होकर मधुपुरीसे चले गये। पत्नीने जब यह सुना, कि लाम (युद्ध-क्षेत्र) में नहीं जाना है, तो उन्होंने भी जानेकी इजाजत दे दी।

(३)

मास्टरजी अब अपने जिलेसे दूर एक छावनीमें रहते थे। फौजी रंगरूट ही उनके विद्यार्थी थे। तरुण सिपाही बहुत कम ही आते थे, क्योंकि उनकी अवश्यकता युद्ध-क्षेत्रमें थी। कोशिश करते तो मास्टरजी भारतसे बाहर भी जा सकते थे, और तब उनका वेतन-भत्ता और बढ़ जाता था, लेकिन युद्ध-क्षेत्रके पास जाना उन्हें पसन्द न था। कुछ दिनों बाद उन्हें आसामकी एक छावनीमें भेज दिया गया। उनको यह नया जीवन पसन्द नहीं था। उन्हें हर वक्त अपनी प्यारी बीबी और चारों बच्चे याद आते थे। पत्नी चिट्ठी-पत्री लिख सकती थीं, पति-संसर्गका ही यह लाभ था। उनकी भाषा शुद्ध हिन्दी नहीं, बल्कि रोट्टी-बेट्टीवाली कौरवीसे मिश्रित थी। मास्टरजीको अपने विद्यार्थियोंसे पूरा संतोष था उनमेंसे शायद ही कोई तीन महीनेसे अधिक उनके पास रहता। यदि किसीने अक्षर सीख लिया या टो-टाकर कुछ पढ़ना शुरू किया, तो वाह-वाह; नहीं तो यहाँ स्कूलके डिप्टी-इन्सपेक्टर साहबका डर नहीं था, कि अयोग्य कहकर मास्टरजीकी तरक्की रुक जाती। रंगरूट विद्यार्थियोंपर उन्हें छड़ी तोड़नेकी भी अवश्यकता नहीं थी। स्कूलका समय चार घण्टेसे अधिक नहीं था। सिपाहियोंके लिये जो मेस (भोजनालय) था, उसीमेंसे समय-समयपर पका-पकाया भोजन मिल जाता, जो कि घरके भोजनसे बुरा नहीं था।

मास्टरजी छूआछूतमें अपने पूर्वजोंका अनुसरण करनेवाले थे, लेकिन यहाँ मेसमें रसोई बनानेवाले उनके अपने पहाड़ी ब्राह्मण थे, इसलिये उसमें कोई एतराज नहीं हो सकता था। आवश्यकता पड़नेपर आपत्कालमें वह अपनी जन्मभूमिसे दूर छूआछूतके नियमको कुछ शिथिल भी कर सकते थे।

यहाँ पहुँचकर कुछ ही महीनों मास्टरजी निश्चिन्त रह सके। जापानने हमला कर दिया। सिंगापुरके नौसैनिक अड्डेको अजेय समझा जाता। था वहाँ अंग्रेजोंने अपने दो अजेय सैनिक पोत भेजे थे, लेकिन अजेयता पलक मारते-मारते फुसकी राख बन गई। जापानी वाहिनी तेजीके साथ बर्मापर चढ़ी और अंग्रेज वीर-बांकोंको वहाँसे भागनेकी भी फुर्सत नहीं मिली। अंग्रेज इस बातकी पूरी कोशिश करते थे, कि छावनियोंमें बैठे सिपाही इन घोर पराजयोंके बारेमें कुछ न सुन पायें। मास्टरजीकी छावनीमें यद्यपि अखबारों द्वारा इन खबरोंको भीतर जाने नहीं दिया जाता था, लेकिन इस तरहकी खबरोंके तो पंख होते हैं, और वह हवाई जहाजसे भी तेज गतिसे सभी जगह पहुँच सकती हैं। छावनीमें पराजयकी बातोंके करनेकी सख्त मनाही थी, लेकिन जहाँ प्राणोंका संकट सामने दिखलाई पड़े, और आदमीके हृदयमें कोई उच्च भावना या कर्तव्य काम न कर रहा हो, तो चर्चा रुक कैसे सकती थी? दूसरे सिपाहियोंकी तरह मास्टरजीको भी परेशानी होने लगी।

इङ्गलैण्डके महामन्त्री चर्चिल तथा मित्रशक्तियोंके दूसरे प्रधान-मन्त्री और अमेरिकाके प्रेसीडेंट धूँआँधार व्याख्यान दे रहे थे—"हम फासिस्तोंकी तानाशाहीके खिलाफ हैं, हम जनतन्त्रता चाहते हैं, मनुष्यको गुलाम नहीं बल्कि स्वतन्त्र देखना चाहते हैं। हमारी लड़ाई मानव-स्वतन्त्रताकी लड़ाई है। हिटलर, मुसोलिनी और तोजो दुनियाके सभी लोगोंको गुलाम बनाना चाहते हैं।" हिन्दुस्तानियोंके कानोंमें यह लम्बी-चौड़ी बातें व्यंगके रूपमें पड़ती थीं। चर्चिलका अंग्रेजी शासन मनुष्यको कितना गुलामीसे आजाद करता है, इसे भारतका बच्चा-बच्चा जानता था। मास्टरजीको दुनिया-जहानका कोई पता नहीं था, न उनके जिलेमें गांधीजीके आन्दोलनका कभी जोर रहा कि उससे उन्हें राजनीतिक बातोंको सुननेका मौका मिलता। लेकिन अंग्रेज हमें गुलाम रक्खे हुये हैं, हमारे साथ पशु जैसा बर्ताव करते हैं, इसलिये वह सबसे घृणाके पात्र हैं—वह

भाव सभी भारतीयोंकी तरह मास्टरजीके भी खूनमें मिला हुआ था। अंग्रेज अपने सिपाहियोंके सामने ऐसे व्याख्यान देते भी नहीं थे। "फौजी अखबारमें" कभी चर्चिल या रूजवेल्टके किसी भाषणका कोई अंश भले ही छप जाये, पर भरसक कोशिश की जाती थी, कि जनतन्त्रता और स्वतन्त्रता जैसे शब्द सिपाहियोंके कानोंमें न पड़ने पावें। छावनीमें जो रेजिमेंट पड़ी थी, उसके कर्नलने कई बार अपनी गोराशाही हिन्दीमें सिपाहियोंके सामने भाषण दिये, जिनमें इसी बातको दोहराया था—बादशाहका हम लोग नमकखार हैं। बादशाह भगवान्‌के समान है। भगवान्‌की खिदमत करनेसे जो फल होता है, वही फल बादशाहकी सेवासे होता है। हमारा बादशाह अपने बच्चोंकी तरह हमारे ऊपर प्यार रखता है। अफसर और सिपाही किसीको कोई तकलीफ न हो, इसका उसे बराबर ध्यान रहता है। महारानी खुद हिन्दुस्तानी बहादुरोंसे जाकर मिलती हैं, बहादुरीके लिये उनकी छातीपर अपने हाथसे तमगे लगाती हैं; अस्पतालोंमें जाकर अपने हाथसे मरहम-पट्टी करनेमें भी वह नहीं हिचकिचाती। बादशाह और महारानीका हमें खैरख्वाह रहना है। हमारे लिये यह लड़ाई कोई चीज नहीं है"। आजसे २५ वर्ष पहले हम इससे भी बड़ी लड़ाई जीत चुके हैं।

गोरे कर्नलकी बातोंका सिपाहियोंपर क्या प्रभाव पड़ता? वह किसका नमक खा रहे हैं; इस बातका उन्हें पता नहीं था। हाँ, इतना जरूर जानते थे, कि हम भूखसे बचने, अपने पेटके लिये फौजमें भरती हुये। यदि फौजमें भरती होनेवाले सभी जवानोंका मरना निश्चित होता, तो इसमें शक नहीं वह ऐसा कभी न करते। पर, वह जानते थे, कि लड़ाईमें जानेवाले सभी नहीं मर जाते, शायद हम भी न मरनेवालोंमेंसे हों, और हमारे गाँवके चन्दरसिंहकी तरह लड़ाईके बाद पेन्शन लेकर घर लौट जावँ। पहले महायुद्धसे अबके महायुद्धमें बहुत अन्तर था। उस महायुद्धके पहले देशमें वह स्वतन्त्रताकी लहर नहीं थी, जिसे कि असहयोग और सत्याग्रहने गांधीजीके नेतृत्वमें देशके कोने-कोनेमें फैला दिया था। पहले महायुद्धमें सेनामें भारतीय सिपाहीसे सूबेदार-मेजरतक पहुँचनेकी ही आशा रखते थे। पर, अब कितने ही लेफ्टनेंट ही नहीं, कप्तान और मेजर भी थे। कुछ कर्नल भी थे, लेकिन अंग्रेज उनपर विश्वास नहीं कर सकते थे, इसलिये रेजिमेंटकी कमाण्ड उन्हें देना पसन्द नहीं करते थे।

कितने ही हिन्दुस्तानी अफसरोंको वह भारतीय सिपाहियोंमें राजभक्ति फैलानेके कामपर लगाये हुये थे। अफसर चाहे गोरे हों, या काले, वह सिपाहियोंसे अपनेको बहुत ऊँचा समझते थे, लेकिन पश्चिममें हिटलर और पूर्वमें जापानके विजयोंको देखकर भारतीय अफसरोंकी आँखें अन्धी नहीं रह सकती थीं। उधर देशके बड़े-बड़े नेता हजारोंकी संख्यामें जेलोंमें बन्द कर दिये गये थे, अगस्त-आन्दोलनसे परेशान अंग्रेजोंने बलिया जैसे कितने ही स्थानोंमें प्रथम युद्धके पंजाब-काण्डको दोहराना शुरू किया था। यह सब बातें भारतीय अफसरोंसे छिपी नहीं थीं। अंग्रेजोंके बुरे बर्तावको अब भी वह उसी तरह देख रहे थे। राजभक्तिके प्रचार करनेवाले अफसर भी व्याख्यानमें चाहे कुछ भी कहते हों, किन्तु एकान्तमें असली बात भी बतला देते थे।

मास्टरजी, और कितने ही अपने साथी मास्टरों और विद्यार्थियोंकी तरह दिनपर दिन परेशान होते जा रहे थे। जब बर्मासे भागनेवाले हजारों भारतीय बड़ी बुरी अवस्थामें भूखे-प्यासे हड्डियोंको घसीटते मनिपुरके रास्ते उनकी छावनीके पाससे गुजरे, तो उनको नींद हराम हो गई। वह यही समझने लगे, कि जिस लामसे हम इतना डर रहे थे, अब उसके मुँहमें पड़ने जा रहे हैं। कलकत्तामें जापानी बम गिरनेकी खबर सुनकर तो उन्हें विश्वास हो गया, कि किसी दिन भी हमारे ऊपर कोई बम फटेगा।

(४)

मनिपुरको युद्धक्षेत्रका रूप लेना पड़ा। अब पासमें मास्टरजीके स्कूलकी अवश्यकता नही रह गई और उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, जब उन्हें अपने जिलेकी छावनीमें बदल दिया गया। अब वह घरमें रहते, पढ़ानेके लिये छावनी जाते। उनकी आर्थिक अवस्था पहलेसे बेहतर थी। पूछनेपर वह यही कहते, कि लड़ाई इसी तरह और चलती रहे। पर, लड़ाईको तो बन्द होना ही था। उसके बन्द होनेके साथ ही दो-तीन सर्टिफिकेटोंके साथ मास्टरजीको छुट्टी मिल गई। उन्होंने समझा था, अंग्रेजोंकी इन सेवाओंके लिये बहुत लाभ मिलेगा। प्रथम महायुद्धके बाद कितनों हीको लाभ मिला भी था। लेकिन, द्वितीय महायुद्धके समाप्त होते-होते तो अंग्रेज हिन्दुस्तानसे अपना बोरिया-बधना

सँभालने लगे। जब अपना ही ठिकाना नहीं, तो अपने खैरखाहोंके लिये वह क्या कर सकते थे? बड़े-बड़े खैरखाहोंके लिये भी कुछ करनेमें असमर्थ थे। कितने ही महीनों मास्टरजीको घरमें बेकार बैठा रहना पड़ा। फिर मधुपुरीमें उन्हें वही नौकरी फिर मिल गई, तो जानमें जान आई। वह समझते थे, फौजी सेवाओंके लिये उन्हें अब नायब-मुदर्रिस (सहायक-अध्यापक) से तरक्की देकर प्राइमरी स्कूलका मुख्याध्यापक बननेका तो जरूर मौका मिलेगा। फौजमें जाते वक्त भी उनके मनमें यह ख्याल था। लेकिन, सारी सेवाओं और चार वर्षों बाद फिर वही नायब-मुदर्रिसी मिली।

मास्टरजीकी चार सन्तानें थीं, जब कि वह फौजकी नौकरीमें गये थे। अब एक तरफ तनखाहकी आमदनी कम हो गई थी, और दूसरी ओर प्रतिवर्ष एक नया मुँह उनके घरमें प्रकट होने लगा। पहले ही साल मधुपुरीमें पाँचवाँ लड़का पैदा हुआ, अगले साल छठा। और इस तरह परिवारकी संख्या-वृद्धिके साथ-साथ तकलीफोंकी वृद्धि होने लगी। मास्टरजीको अभी तक नौ बच्चे हो चुके हैं, और उनकी संख्या कहाँ तक पहुँचेगी, यह नहीं कहा जासकता। सभी मुखोंमें अवश्यकताके अनुसार अन्न नहीं डाला जा सकता। आटा-चावल सवासेर-डेढ़ सेर बिकता है। सबेरे डेढ़ सेर चावल-डेढ़ सेर आटे और शामको ढाई सेर आटेका खर्च अगर मास्टरजी और उनकी पत्नीका खून सुखा दे, तो इसमें अचरज क्या? ऊपरसे लड़कोंको पढ़ाना भी है। फीस यदि आधी माफ हो जाती है, तो किताब और कपड़ेका खर्च तो चाहिये ही। इस साल नवें और आठवें दर्जेमें पढ़नेवाले दो लड़के फेल हो गये। अब उनकी फीस माफ नहीं रह सकती। बड़े लड़केने किसी तरह मेट्रिक कर लिया, उसे रोजाना ६ सेर चावल-आटेके बोझमेंसे कुछको हलका करना था। बहुत कोशिश करने-पर उसे डाकखानेमें चिट्ठीरसा (डाकिया) का काम मिला, सो भी केवल सीजन भर के लिये।

महँगाई लेकर मास्टरजीकी तनखाह आजकल ६५ रुपये है, जो प्रथम युद्धसे पहलेके १६ रुपये और मास्टरजीके जन्मके समयके ४ रुपयेके बराबर है। ११ प्राणियोंका इतने रुपयेमें वह कैसे भरण-पोषण करते हैं, इसे इन पंक्तियोंके पाठक ही शायद बतला सकते हैं। मास्टरजीकी उमर अभी ४४-४५ ही की

है, लेकिन इसी समय वह ६० वर्षके मालूम होते हैं। उनकी आँखें न जाने किस ओर देखती रहती हैं, चेहरा हर वक्त मलेरियाके बीमार जैसा मालूम होता है। मिलनेपर हँसनेकी कोशिश करते हुये हाथ जोड़ते हैं। सबसे अधिक बोझ उनकी पत्नीको ढोना है। नौ बच्चोंकी माँ होने और इस तरहकी मुसीबतोंसे गुजरते रहनेपर भी उनके चेहरेपर हमेशा स्वाभाविक हँसी बनी रहती है, जिसके कारण उनके सौन्दर्यकी अधिक क्षति नहीं हुई; लेकिन दरिद्रता और चिन्ताकी जो भट्ठी उनके दिलके भीतर जल रही है, उसके रहते उनके मुखपर यह मुस्कुराहट आती कैसे है?

२०. चंपो

(१)

किसी आधुनिक या पुरानी पुरीमें सबसे गन्दा काम करनेवाले नर-नारियोंकी भी अवश्यकता होती है। टट्टी-पेशाब माँ भी अपने बच्चोंकी उठाती है, लेकिन उसके कारण वह अछूत नहीं हो जाती। हर देशमें नगर होते हैं, जहाँ हजारों-लाखों परिवार इकट्ठा रहते हैं। सफाई-पसन्द देशोंके लोग अपने गाँवों-में भी स्वच्छताका बहुत ख्याल रखते हैं, लेकिन भारतके लोग—जो कि शुद्धाशुद्धका ख्याल करनेमें अपनेको दुनियाँमें बेमिसाल समझते हैं—अपने गाँवोंको जितने गन्दे रखते हैं, उतने दुनियाके पिछड़ेसे पिछड़े देश और लोग भी नहीं रखते। भारतीयोंकी एक अच्छी परिभाषा हो सकती है—जो वैयक्तिक शुद्धताका बहुत ख्याल रक्खें, लेकिन सामाजिक स्वास्थ्य और शुद्धताके नियमोंकी पूरी तौरसे अवहेलना करें। यहाँ गाँवके पासकी खुली जगह पेशाब पाखानेके लिये संरक्षित समझी जाती है। कस्बों और शहरोंमें ऐसा करके महामारीकों आवाहन करना होता, इसलिये वहाँ बहुत पहले हीसे टट्टी या संडासका प्रबन्ध था। दो हजार वर्ष पहले सम्भवतः हमारे गाँव-नगर उतने गन्दे नहीं थे, उस वक्त सफाईके कितने ही नियम पालन किये जाते थे। दूसरे देशोंमें सफाई करनेवाले लोगोंको घृणाकी नजरसे नहीं देखा जाता, यद्यपि वहाँ भी उन्हें मजूरी ज्यादा नहीं मिलती। आदमी पाखानेकी सफाई करके अपने हाथोंको धो लेता है, अवश्यकता होनेपर कपड़ा बदल लेता है, फिर उसके साथ खाने-बैठनेमें किसीको एतराज नहीं होता। हमारे यहाँ जो लोग सफाईके सबसे गंदे कामको करते हैं, वही सबसे नीच समझे जाते हैं।

आजसे सवासौ वर्ष पहले जब जंगलमें मंगल करनेके लिये मधुपुरीकी नींव पड़ने लगी, उस समय पाखाना साफ करनेवालोंकी भी यहाँ अवश्यकता पड़ी। आस-पास जंगल बहुत और बीचमें दूर-दूरपर दस पाँच बँगले थे। यदि बसने-वाले भारतीय परम्पराको अपनाते, तो वह जंगलको टट्टीके लिये इस्तेमाल कर

सकते थे। पर, अंग्रेज इसके अभ्यस्त नहीं थे। उनके घरोंमें पाखानेका प्रबन्ध आवश्यक था, बंगलेसे अलग नहीं, उसी बाथरूम (स्नान-कोष्ठक) में जहाँ आदमी नहाता हाथ-मुँह धोता है। अगर पाखानेको अच्छी तरह साफ नहीं रखा जाता, तो शयनकक्षमें रहते दुर्गन्ध सही नहीं जाती। घर हो या शहर पाखानेको नजदीकसे नजदीक रखना बहुत आरामदेह ही नहीं, अस्वस्थतामें उसका लाभ भी बहुत है। सर्द जगहोंमें रजाईके नीचेसे निकलकर यदि बाहर दूरके पाखानेमें जाना पड़े, तो निमोनिया हुये बिना नहीं रहे। मधुपुरीके बंगलों-के लिये जिस तरह और सेवक-परिचारक आये, उसी तरह पाखाना साफ करनेवाले भी पहुँचे। नीचेके शहरोंमें उन्हें ५ रुपये तनखाह मिलती, यहाँ उन्हें १२-१५ रुपये मिलती। जहाँ आमदनी अधिक हो, वहाँ आदमी खिंचकर पहुँच ही जाता है। जिस तरह यहाँके रिक्शेवालों, बोझ ढोनेवालों, चौकीदारों और दूसरे सेवकोंका काम खास-खास जिलोंकी इजारेदारीमें है, उसी तरह पाखाना साफ करनेवाले भी अधिकतर बिजनौर जिलेसे आते हैं। पाखाना साफ करनेवालोंका मधुपुरीमें शुरूमें क्या नाम था? भंगी; हलालखोर, या क्या? किन्तु, आज सब लोग उन्हें जमादार कहते हैं। जो परिचित नहीं हैं, उनको पहले पहल यह नाम खटकता है। बिजनौर जिलेके जमादारोंने यहाँकी विलासपुरियोंमें ही नहीं बल्कि केदारनाथ और बदरीनाथमें भी इस कामको सम्भाल लिया है।

१९ वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें विलासपुरियोंको वह सुभीते नहीं प्राप्त थे, जो आज देखे जाते हैं। घरोंमें पानीका नल नहीं था, और भिश्ती पीने तथा नहाने-धोनेके लिये पानी लाते थे। सड़कोंपर बिजली क्या बत्ती भी नहीं थी, और जब पहले उसका रवाज हुआ, तो कहीं मिट्टीके तेलके चिरागके रूपमें। बहुत पीछे पानीसे बिजली पैदा की गई, उससे बंगलों और सड़कोंपर रोशनी ही नहीं हुई, बल्कि उसीके जोरसे धाराओंका पानी सबसे ऊँचे स्थानोंपर स्थापित जलनिधियोंमें रख कर नलकों द्वारा सारी पुरीमें पहुँचाया गया। कलिम्पोंग जैसी कितनी ही पहाड़ी पुरियोंके खास-खास भागोंमे तब तक कोई आदमी बिना फ़्लशका बंगला नहीं बना सकता, पर मधुपुरीमें उसका कोई निर्बंध नहीं है। जमादार फ़्लशको नहीं चाहेंगे यह स्वाभाविक है।

भारतमें रहते अंग्रेज जानते थे, कि हिन्दू या मुसलमान सभी हिन्दुस्तानी जमादारोंको सबसे छोटी जात मानते, उनके सम्पर्कसे परहेज करते हैं। शुरू-शुरूमें भारतमें आये कुछ अंग्रेजोंने अपने देश-भाइयोंको यह समझाना शुरू किया था, कि हमें उच्च वर्णके हिन्दुओंके रीति-रवाजको अपनाना चाहिये, यदि हम उनका सम्मान-भाजन बनना चाहते हैं। एकाध अंग्रेजोंने अपने लिये ब्राह्मण रसोइये रक्खे, और चौकीपर बैठकर खाना भी शुरू किया। लेकिन, वह चला नहीं। अंग्रेजोंकी संस्कृतिका तल अधिक ऊँचा था, क्योंकि नवीन युगके आविष्कारों, हथियारों, ज्ञान-विज्ञानमें वह अधिक आगे बढ़े थे। उन्हें जल्दी ही मालूम हो गया, कि हमें भारतीयोंकी नकल करनेकी अवश्यकता नहीं, भारतीय स्वयं हमारे पदचिन्हपर चलेंगे। "देर आयद् दुरुस्त आयद्" के अनुसार देर ही सही, पश्चिमकी बहुत-सी बातोंको हमारे देश-भाइयोंने अब स्वीकार कर लिया है, और जो अब भी उनसे अछूते हैं, उनके लिये शिक्षा और पैसा भर हाथमें आनेकी देर है। अंग्रेज अफसरों और बनियोंके रूपमें ही यहाँ नहीं आये थे, बल्कि उनके आनेके पहले ही युरोपसे पादरी ईसाई धर्मका प्रचार करने भारत पहुँचे थे। अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाके बाद शासकोंका धर्म होनेके कारण उन्हें आर्थिक और दूसरे तरहके बहुतसे सुभीते प्राप्त हुये। हिन्दू धर्मके गढको ढानेके लिये उन्होंने अपनी तोपें लगा दीं, लेकिन वह उतना कमजोर नहीं था, जितना कि उनका राजनीतिक दुर्ग। यदि कोई अपने धर्मको छोड़कर ईसाई बनता, तो उसे अपने सबसे प्रिय रक्त-सम्बन्धियों—माता-पिता, भाई-बहन, नाना-मामा—सबसे हमेशाके लिये नाता तोड़ना पड़ता; यह वे लोग थे, जिनसे स्वाभाविक स्नेह प्राप्त होता, और जिनके साथ अपना आर्थिक स्वार्थ भी सम्बद्ध था। यदि कोई जातकी जात धर्म-परिवर्तनके लिये तैयार हो, तभी यह रुकावटें हट सकती थीं। मुस्लिम-शासनके आरम्भमें ऐसा हुआ था जब कि कपड़ा बुननेवाली जैसी बहुत-सी शिल्पकार जातियाँ सामूहिक रूपसे हिन्दू धर्मको छोड़ गईं। पादरियोंको वैसी सफलता नहीं मिली। वह अछूत जातियोंको यह कहकर अपनी ओर खींचने लगे, कि हम मनुष्यको बराबर मानते हैं, किसीके साथ छूतछातका बर्ताव नहीं करते। उन्होंने अपने घरोंमें जिन जमादारोंको रक्खा, उनके हाथकी रसोई भी

वह खा सकते थे। दूसरे अंग्रेज भी, यद्यपि पादरियोंके इतना तो नहीं, पर अछूतको छूत माननेमें हिचकिचाते नहीं थे। आज भी, जब कि बहुत नौकर रखना मुश्किल हो गया है, कितने ही अंग्रेज या एंग्लो-इण्डियन-परिवारोंमें जमादार-जमादारिन बावर्ची-खानसामाका काम करते हैं। पौन शताब्दीसे हिन्दुओंके बड़े नेता कहते आये हैं, कि अछूतपन हमारे समाजका कोढ़ है, लेकिन जिस गतिसे उसे हटाया जा रहा है, उसे देखते तो शायद उसके दूर होनेमें पीढ़ियाँ लगेंगीं। वह जल्दी तभी दूर हो सकता है, जब कि अछूत समझे जानेवाले स्वयं अपने उद्धारका बीड़ा उठावें।

(२)

चम्पो जमादारकी लड़की थी, और भारतके स्वतन्त्र होनेके बाद पैदा हुई थी। उसके माँ-बाप मधुपुरीके केन्द्रीय बाजारवाली आबादीमें रहते थे। जमादार बहुधा मालिकसे नहीं, बल्कि घरसे सम्बद्ध हैं। नया बँगला बनते ही वहाँ जमादार रख लिया गया। एक शताब्दीके बीच चाहे बँगलेने कितने ही हाथ बदले हों, लेकिन जमादारकी चार पीढ़ियाँ बँगलेके साथ चिपकी रहीं। चम्पोके परदादी-परदादा जिस बँगलेमें पहलेपहल आये थे, उसका पहला मालिक कोई अंग्रेज था, लेकिन यह प्रथम महायुद्धसे भी पहलेकी बात है। हर बँगलेके साथ कुछ छोटी-छोटी कोठरियाँ या औट-हौस रहते हैं। यदि बँगला बाजारसे दूर जंगलमें है, जहाँ जमीनकी इफरात है, तो औट-हौस बँगलेसे हटकर, नहीं तो पासहीमें उसे बना दिया जाता था। औट-हौसकी छोटी-मोटी कोठरियाँ वर्षोंसे बँगलोंके किरायेपर न उठनेके कारण अधिकतर सूनी, बेमरम्मत होकर कितनी ही गिर-पड़ रही हैं। लेकिन, चम्पोका परिवार जिस बँगलेके औट-हौसमें रहता था, उसके लिए यह नौबत नहीं आ सकती, क्योंकि वह बाजारसे सटा था। पुराने समयमें इन कोठरियोंका उपयोग बँगलेके नौकर-चाकरोंके रहनेके लिए होता था, अब उनमेंसे किसीमें बिजलीसे चलनेवाली आटेकी चक्की लग गई, किसीमें दाल-चावलकी दूकान या चाय-रोटीका होटल खुल गया है, किसी-किसीमें बनिया-बाबू कई किरायेदार भी आ गये हैं। वैसे होता, तो बड़ी जातवाले जमादारके पासकी कोठरीमें

रहनेपर एतराज करते, लेकिन वह तो चम्पोके परिवारकी पैतृक कोठरी थी। वह सदासे वहीं रहते थे।

लड़के बहुत देरसे और बहुत मुश्किलसे समझ पाते हैं, कि अछूत क्या बला है। बच्चेकी जातिका हो या छोटी जातिका, छूत हो या अछूत, यदि परिवार अधिक धनी नहीं है, तो उसके लड़कोंमें छूतका भाव मुश्किलसे पैदा होता है। बच्चेकी समझ और उसकी जिद्के कारण लड़कोंको इकट्ठा खेलने दिया जाता है। जबतक वह स्वयं छूआछूतको न समझ पायें, तबतक समझाकर या डाँट-मारकर बच्चोंको उससे रोकना मुश्किल है। चम्पोका परिवार जिस बँगलेकी जमादारी करता था, उसके मालिककी लड़की चम्पो ही की उमरकी थी। दोनों बचपनसे खेलते आये थे। जब उसकी सहेली कोई खानेकी चीज माँसे पाती, तो हो नहीं सकता था, कि चम्पोको दिये बिना खाये। छूतछातकी तो बात ही क्या, जूठे-मीठेका भी उसे परहेज नहीं था। एकदिन दोनोंको दाँतकी कटी रोटी खाते देखकर सहेलीकी माँको बहुत बुरा लगा। वह नये विचारोंकी शिक्षिता महिला थीं। छूआछूतका उन्हें उतना ही ख्याल था, जितना कि पीढ़ियोंसे रहनेके कारण रक्तमें अब भी मौजूद रह गया था। साफ-सुथरा रहकर अगर जमादार खाना बना दे, तो उन्हें खानेमें कोई एतराज नहीं था। बड़ी जातिके लोग अछूतसे अपनी देहहीको छुआना नहीं पसन्द करते, बल्कि अपनी किसी चीजपर हाथ लग जानेसे उसे भ्रष्ट समझते हैं। सहेलीकी विदुषी माँ जमादारिनसे अपने सारे काम करवाती थीं। रोटी उसके हाथसे उन्होंने कभी नहीं पकवाई। जिन शर्तोंके साथ वह चम्पोकी माँसे रोटी पकवातीं, उनके माननेका मतलब था, चम्पोके परिवारको अपना पुश्तैनी पेशा छोड़ना, और भूखों मरना।

चम्पोकी पाँच वर्षकी सहेलीपर अपने कुलके कितने ही संस्कार पड़ने नहीं पाये थे। दोनों बाहर साथ बैठी गुड़िया खेलतीं, गाना गातीं, कूदती-फाँदती। सहेली कितनी ही बार चम्पोको लेकर अपने सोफेपर भी खेलती। उस समय घरके सयानोंकी त्यौरी चढ़ जाती, लेकिन जबतक दोनों सहेलियाँ अबोध थीं, तबतक उधर ध्यान नहीं दिया जाता। दोनों सहेलियाँ बच्ची ही थीं, आपसमें जब मेल होता, तब वह एक प्राण-दो शरीर बन जातीं, और

जब किसी कारण झगड़ पड़तीं, तो सहेली कह देती—"जा चम्पो, अब मैं तेरे साथ नहीं खेलूँगी।" आमदनीका नया रास्ता सभी चाहते हैं, और जिनकी आमदनी कम होती है, उन्हें तो मजबूर होकर ऐसा करना पड़ता है। चम्पोकी माँने दो-तीन मुर्गियाँ पाल ली थीं। चम्पोको सँभालने लायक देखकर बापने एक बकरी भी मोल ले ली। कुछ ही दिनों बाद उसके दो बच्चे हो गये। बकरी अच्छी जातकी तो नहीं थी, किन्तु नरके अच्छे होनेके कारण बच्चे लम्बे कानोंवाले बड़े-बड़े थे। यहाँ बँगलेमें खाली जगह कम ही थी। एक ओर करीब-करीब सीधा पहाड़ था, जिसके कारण वहाँ न कोई इमारत बन सकती थी और न साग-सब्जी लगाई जा सकती थी। बकरियोंको तीखी चढ़ाई-वाली जगह बहुत पसन्द होती है, बच्चे तो वहाँ फुदकते कूदते बड़े खुश होते हैं। चम्पो इस बँगलेके आगे-पीछेकी इसी थोड़ी-सी खाली जगहमें अपनी बकरियोंको चरानेके लिए ले जाती। चम्पोकी सहेली अर्थात् मालकिनकी लड़की अपनी नाराजीको बहुत दिनोंतक याद नहीं रख सकती थी। एक दो दिन बाद जब बकरियोंको पासमें चरती और चम्पोको रस्तेमें बैठी देखती, तो "चम्पो, चम्पो" कहकर वह उसके पास चली जाती। चम्पो बच्चोंको बुला लेती, और दोनों उसे गोदमें उठाकर खेलने लगतीं। बरसातमें घास और हरे-हरे पत्ते बहुत हो जाते। उससमय दोनों उन्हें अपने हाथसे नोंचकर खिलातीं। चम्पोको क्या मालूम था, कि बकरी और उसके बच्चोंपर किसका हक है, वह अपनी सहेलीसे कहती—एक बच्चा म्हारा और एक बच्चा थारा। फिर सहेली कहती—तेरीके दो बच्चे होंगे और मेरीके भी दो बच्चे होंगे। हम इसी तरह उन्हें चरायेंगे। मुहल्लेके सयाने लड़केने कह दिया—चम्पोके बापने ३० रुपयेमें बकरी खरीदी थी। वह योंही बच्चे थोड़े ही दे देगा। इसपर सहेली कहती—"मेरी अम्माके पास बतेरे रुपये हैं।" चम्पो भी कह उठती—"हाँ, बीबीजीके पास भौत रुपये हैं", दोनों हाथोंको उठाकर बतलाती—"इत्ते सारे रुपये हैं।"

दोनों बच्चियाँ जब एक ओर हो गई, तो लड़केको चुप होनेके सिवा और रास्ता क्या सूझता? अपनी विजयसे बहुत प्रसन्न हो, दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

पहाड़में वैसे भी जमीन विकट होती है, इस बँगलेमें तो चट्टानें और पहाड़ सीधे खड़े थे। वहाँ लड़कोंके लिए गिरकर चोट खा लेना बिलकुल आसान था ? दोनों सहेलियोंके घुटने कितनी ही बार फूटे थे, हड्डी नहीं टूटी, तो इसे संयोग समझना चाहिए। एक बार बकरीका एक बच्चा सीधी खड़ी चट्टानपर चढ़ गया। सहेलियोंको खेलकी सूझी। जिधर रास्ता ठीक था, उधरसे रोककर उन्होंने डराना शुरू किया। वह देखना चाहती थीं, कि बच्चा क्या करता है। बच्चा दूसरी तरफ कूदनेके लिए मजबूर हुआ, और १५ हाथ नीचे गिरनेपर उसकी एक टाँग टूट गई। चम्पोका ऐसा खेल माँ-बापको पसन्द नहीं आ सकता था। वह आशा रखते थे, छ महीनेमें हम बच्चेको बड़ा करके ४०-४० रुपयेमें बेंच देंगे, और बकरीका दाम निकल आनेके साथ ५० रुपया नफा भी हो जायेगा। चम्पोपर उस दिन बड़ी मार पड़ी। ६ वर्षकी बच्चीके लिये वह इतनी अधिक थी, कि डर था कहीं बच्चेकी तरह उसकी भी टाँग न टूट जाये। माँने दौड़कर अपने शरीरसे उसको ढाँक दिया और गुस्सेके मारे पागल बापने उसपर भी एक-दो हाथ छोड़े, गन्दी-गन्दी गालियाँ दीं, और कहा—तूने ही लड़कीको खराब कर दिया।

जमादारकी तबियत ठंढी होनेमें कई घंटे लगे। फिर माँने कहा—बड़े आदमियोंके बच्चोंके साथ रहनेमें हमारे बच्चे खराब हो जाते हैं। यही बात उलटी रीतिसे चम्पोकी सहेलीकी माँ भी दोहराती, जब उनकी लड़की अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ और बिस्कुटको पसन्द न कर उन्हीं चीजोंकी माँग करती, जिन्हें चम्पो खाती थी।

(२)

चम्पो अपने माँ-बापकी पहली लड़की थी। सभी माँ-बाप, विशेषकर इस परिवारके जैसे, शिशुग्रहसे बहुत डरते हैं। कोमल शिशु अभी दुनियाकी सर्दी-गर्मीको नहीं समझता, भूत-पिशाच, दैत्य-दानव शिशुके चारों तरफ मँडराया ही करते हैं। चम्पोके गलेमें कई गंडे पड़े हुए थे। उसकी माँने बड़ी चिरौरी-मिन्नत करके सयानोंसे पूजा कराई थी। एक बार चम्पोको हलका-सा बुखार आ गया। सयानेने बतलाया : बेमाता माई नाराज हैं, उसकी पूजा करो।

सयानेके कहनेपर चम्पोकी माँने बेमाताके लिए एक बकरा मान दिया। लेकिन, अब पहलेका जमाना थोड़े ही था, कि दो-चार रुपयेमें बकरीका बच्चा आ जाता। अब तो मधुपुरीमें ढाई रुपया सेर मांस बिकता था और बकरेका दाम उसके वजनके अनुसार होता है। बच्चे बकरेका मांस और भी महँगा था। वस्तुतः चम्पोके बापने जब बकरी खरीदी थी, तो उसके मनमें एक यह भी ख्याल था, कि उसीके बच्चेसे बेमाताके ऋणसे भी उऋण हो जाऊँगा। चम्पोकी माँने उस दिन पतिको समझा दिया—तुमने बकरेका लोभ किया था, चाहते थे छ महीनेमें बड़ा करके बच्चोंको बेंच दें, लेकिन बेमाता और इन्तिजार नहीं करना चाहतीं, इसीलिए उसकी टाँग टूटी।

उन्होंने बेमाताके लिए उस बच्चेकी बलि दे दी। बेमाताका आसपासमें कोई स्थान नहीं था, न चौरा था, न कोई मूर्ति, न पत्थरका ढोंग न कोई पेड़। बेमाता तो सब जगह आती रहती है, छोटे-छोटे बच्चोंके पास दिनमें दो बार फेरा दिये बिना उसके पेटका खाना हजम नहीं होता। खुश होनेपर वह बच्चोंकी रक्षा करती, किसी भूत-बैतालको पास फटकने नहीं देती, और नाराज होनेपर उठा ले जानेमें भी उसे देर नहीं लगती। बेमाताके लिए बकरेकी बलि घरके पिछवाड़े ही दे दी गई। मधुपुरीकी नगरपालिकाने जानवरोंके मारनेके लिए अलग स्थानमें घर बना रक्खे हैं। बेमाताके लिए अपने घरके पास बलि चढ़ाना कानूनके खिलाफ था, लेकिन चम्पोके माँ-बाप यही जानते थे, कि कोई कानून हमारी पूजा-पाठमें बाधा नहीं पहुँचा सकता। यह कहनेकी अवश्यकता नहीं, कि चम्पोका परिवार हिन्दू है, जैसे कि मधुपुरीके दूसरे अधिकांश जमादार। उनकी अपनी बिरादरीका एक अच्छा संगठन है। वह यह नहीं पसन्द करते, कि बिरादरीमेंसे कोई निकल जाये। जमादार पीनेके बहुत शौकीन होते हैं, मांस भी उन्हें बहुत प्रिय है। सूअरका मांस कुछ सस्ता मिलता है, शायद इसी ख्यालसे वह उसे ज्यादा पसन्द करते हैं। बिरादरीमें ब्याह-शादी हो या त्यौहार, या किसीने कोई कसूर किया हो, इस सबका मतलब है, बिरादरीवालोंको भोज और शराब। महीनेमें ऐसे एक-दो सामूहिक भोज और पान यहाँ होते ही रहते हैं। बिरादरीके लोगोंको बाँधकर रखनेके लिए यह कम सहायक नहीं होते।

उस दिन बेमाताके लिए बलि चढ़ाई गई। उस मांसमेंसे चम्पोकी माँने अपनी मालकिनको भी देना चाहा। पुराने बन्धन और मर्यादाएँ इतनी तेजीके साथ टूट रही हैं, इसका उदाहरण यहाँ सामने मौजूद है। मालकिनका परिवार न जाने कितनी पीढ़ियोंसे मांसका नाम सुननेके लिए तैयार नहीं था, लेकिन अब उनकी रसोई मांसके बिना सूनी-सूनी मालूम होती। उनको प्रसादसे क्या एतराज हो सकता था? यदि चम्पोकी माँ उसे अपने हाथसे, लेकिन जरा सफाईके साथ पकाकर लाती, तो वह उसे भी स्वीकार कर लेतीं। लेकिन, यह "सफाई" की शर्त बहुत कठोर थी, जमादारके कुलकी स्त्रीके लिए अपनी सफाईके बारेमें निश्चित पूरा विश्वास दिलाना आसान नहीं था। चम्पो परिवारके लोग दूसरे जमादारोंकी तरह "आज कमाया, आज उड़ाया" के माननेवाले थे, महीनेकी तनखाहके ऊपर वह बराबर कर्ज लिया करते, कपड़ेका दाम भी नहीं जमा कर पाते। चम्पोकी माँपर दया करके मालकिन अपनी कोई पुरानी साड़ी दे देतीं। इसी तरह अपनी लड़कीका उतरना चम्पोको पहननेके लिए मिल जाता। इन कपड़ोंको साफ रखनेके लिए साबुनका दाम कहाँसे आये? वह बहुत मैले-कुचैले रहते "सफाई" के खिलाफ गवाही दे देते।

चम्पो अपनी जातिके और बच्चोंसे अधिक भाग्यशालिनी थी। उसके मालिक छूआछूत नहीं मानते, इसलिए बचपनसे ही वह अपने मालिककी लड़कीके साथ जहाँ चाहती वहाँ खेलती रहती। यदि किसी बातसे कभी मालकिनका मन प्रसन्न न होता, तो भी वह उसे डाँटती-फटकारती नहीं थीं। अपनी लड़कीको यदि वह प्लेटमें खाना देतीं, तो चम्पोको पुराने अखबारपर रख देतीं, यदि लड़की मेजपर खाती, तो चम्पो वहीं पैरोंके पास फर्शपर बैठकर खाती। दोनोंके खानेकी चीजोंमें इस समय कोई भेदभाव नहीं रक्खा जाता। वह कहाँ बैठकर खा रही है, कैसे खा रही है, इसके बारेमें सोचनेकी चम्पोको जरूरत नहीं थी, जबतक कि उसे भी वही परौठा और वही तरकारी मिल रही है, जो कि उसकी सहेली खा रही है। उसे अपने मालकिनके लिए कृतज्ञ होनेकी भी अवश्यकता नहीं, कि मैं जमादारकी लड़की बड़ी जातिके मालिकके घरके भीतर बैठकर खा रही हूँ। उसने कभी देखा नहीं, कि

जमादारकी छाया पड़ जानेसे खानेहीकी नहीं, बल्कि पहननेकी चीजोंको भी शुद्ध करनेकी अवश्यकता पड़ती है। उसके पासकी कोठरियोंमें जो बाबू-बनियोंके परिवार थे, वह छूआछूत बहुत मानते थे। लेकिन, बँगलेके मालिक उनसे कहीं इज्जतदार और धनीमानी थे। जब वहाँ उसके साथ कोई छूतछातका बर्ताव नहीं किया जाता, तो अपनी माँ जैसी चीकट कपड़े पहननेवाली बनियाइनोंकी वह क्यों पर्वाह करती?

मधुपुरीमें वैसे अब वर्षोंसे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है, पर, हरेक माँ-बापपर उसे लागू करनेकी कोशिश नहीं की जाती। कानूनके धनी-धोरी समझते हैं, कि जिस माँ-बापको पर्वाह होगी, वह अपने आप अपने बच्चोंको स्कूलमें भेजेंगे। चम्पोको स्कूल जानेकी कोई अवश्यकता नहीं थी। उसका भी जल्दी ही अपने जैसे किसी छोटे लड़केसे ब्याह हो जाना था, फिर कुछ और सयानी होनेपर दूसरे जमादारके घरमें बहूके तौरपर रहेगी। फिर उसे भी किसी बँगलेमें झाड़ू-बहारू करना होगा, कमोडके गमलोंको साफ-सुथरा रखना पड़ेगा, और मर्दोंकी तरह अपनी कमाई करके खाना होगा। मधुपुरीमें सड़कोंकी सफाई नगरपालिकाके जमादार करते हैं, जमादारिनोंके लिए वहाँ कोई काम नहीं है। जब चम्पोको बड़ी होकर यही करना है, तो स्कूलमें जाकर पढ़नेसे उसे क्या फायदा था? लेकिन, उसकी सहेलीको बड़ी चिन्ता थी। उसके माँ-बाप समझते थे, लड़कीको दो साल पहले ही स्कूलमें बैठा देना चाहिए था, बहुत देर हो रही है। उनके वर्गमें दस-पाँच हजार तिलक-दहेज देनेहीसे काम नहीं चलता, बल्कि लड़केवाले देखते हैं, कि लड़की कितनी पढ़ी-लिखी है। यदि चम्पोकी सहेली अनपढ़ रह गई, तो चाहे वह कितनी ही अनिंद्य सुंदरी हो, उसे अच्छे और धनी वर्गके वर मिलनेकी सम्भावना नहीं है। माँ-बाप यद्यपि स्कूलमें नहीं भेज सके थे, किन्तु घरपर स्वयं और मास्टरको रखकर उसे पढ़ा रहे थे। लड़कीकी जब मौज होती तो पढ़ती, नहीं तो खेलने चली जाती और मास्टरको घण्टा पूरा करके लौट जाना पड़ता। स्कूलमें जानेपर वह ऐसा नहीं कर सकती थी, इसीलिए चम्पोकी सखी बहुत उदास होकर अपने दिलके दुःखको प्रकट करती—तब मैं तेरे साथ कैसे खेलूँगी? सारा दिन तो स्कूलमें बीतेगा, शाम-सबेरे कितना समय मिलेगा?

(४)

सहेली अब स्कूल पढ़ने जाया करती थी। कुछ दिनोंतक उसका मन नहीं लगा, कभी आधे ही दिनमें वहाँसे भाग आती, और चम्पोके साथ खेलने लगती। मुश्किल यह था, कि चम्पो पास हीमें रहती थी। यदि उनके खेलनेका स्थान सहेलीके माँ-बापकी आँखोंके सामने न होता तो दोनों बराबर खेलती रहतीं। चम्पोका मन उदास रहता। उसके और बहन-भाई थे, प्रतिवर्ष एक बच्चेके आनेकी घरमें औसत थी। चम्पो सबसे बड़ी थी। अपनेसे छोटोंके साथ खेलनेमें उसे आनन्द नहीं आता था। उसकी सहेली शिक्षित-परिवारकी लड़की थी, उसकी बातचीतमें उसे जितना मजा आता था, उतना दूसरी जगह कहाँसे आता? कभी-कभी सोचती, मैं भी क्यों न स्कूल जाया करूँ। लेकिन, माँ-बाप इसकी इजाजत नहीं देते थे। छोटे बच्चोंको सँभालनेका काम उसका था। बकरी हर साल दो बारमें चार बच्चे जनती, जिनके चरानेका काम भी उसीको करना था। चम्पो दिनभर टकटकी लगाये उसी रास्तेकी ओर देखती, जिससे उसकी सहेली पढ़कर लौटती। सहेली कभी-कभी दो-तीन और लड़कियोंके साथ हँसती-खेलती, कूदती-फाँदती आने लगी। उनको देखकर चम्पोके कलेजेमें काँटा-सा चुभने लगता। वह उसे एकमात्र अपनी सहेली रखना चाहती थी। उसकी सहेली पास पहुँचते ही हँसकर कहती—चम्पो, देख यह मेरी सहेली कुसुम है, और यह है गइतिरी। वह अपने भोलेभालेपनसे सहेलियोंको बतलाती—"यह मेरी बड़ी अच्छी सहेली चम्पो है। यह बहुत अच्छा गाना गाती है, अच्छी बात करती है। हम अन्धेरा होते तक साथ खेलते हैं।" सहेली दूर रहकर नहीं, बल्कि चम्पोके कन्धेपर हाथ रखकर बात करती। उसकी स्कूलकी सहेलियाँ उमरमें बड़ी नहीं थीं, लेकिन वह दूसरे ही वातावरणमें पली होनेसे वह जानती थीं, कि जमादारकी लड़कीको छूया नहीं करते।

चम्पोके सामने उन्होंने नहीं बतलाया, किन्तु पीछे समझाना शुरू किया—जमादारकी लड़कीको नहीं छूया करते। वह गन्दी होती है। पाखाना फेंकती है। तुम्हें ऐसा करते सुननेपर स्कूलकी बहनजी नाराज होंगी, हमारी दूसरी सहेलियाँ तुम्हें जमादारकी लड़की कहने लगेंगी।

"जमादारकी लड़की कहने लगेंगी"—यह सुनकर चम्पोकी सहेलीका

दिल दहल गया। वह चम्पोको अपनी सहेली मानती थी, लेकिन यह माननेके लिए तैयार नहीं थी, कि मैं भी उसीकी तरह जमादारकी लड़की हूँ। स्कूलकी सहेलियाँ अब अधिक और अधिक बँगलेमें आने लगीं। उन्होंने चम्पोके साथ खेलनेका रास्ता बन्द कर दिया। एक-दो बार उन्होंने धमकी दी : जमादारकी लड़कीके साथ अगर तुम खेलोगी, तो हम नहीं आयेंगे। इतना काफी था। चम्पोने देखा, उसकी सहेली उससे दूर हटती जा रही है। कुछ महीनों तक वह शामके वक्त अपनी कोठरीसे बँगलेमें पहुँच जाती। उसकी सहेली उसको कोई रूखा शब्द नहीं कहती, किन्तु अपनी नव-परिचिता सखियोंके साथ खेलनेमें इतना भूल जाती, कि उसे याद भी नहीं रहता, कि दरवाजेके पास उसकी चम्पो चाह भरी निगाहसे देख रही है। महीनों जब यही रुख रहा, तो चम्पो भी निराश हो गई। उसने समझ लिया, अब हम दोनोंका रास्ता कभी एक नहीं होगा।

मधुपुरीके अधिकांश जमादार बारहों महीनेके लिए यहींके निवासी हैं। यहीं म्युनिसिपैलिटीके बनवाये घरों या बँगलोंके औट-हौसोंमें वह रहते हैं। पाँच-पाँच छ-छ पीढ़ी हो जानेपर अब उनसे यही आशा की जा सकती है, कि वह अपने कस्बों या शहरोंको भूल गये होंगे, खासकर जब कि उन्हें ब्याह-शादी करनेके लिए भी मधुपुरीसे बाहर जानेकी जरूरत नहीं है। लेकिन, अपने पूर्वजोंके स्थानोंमें उनके कुलदेवता रहते हैं, उनके कितने जाति-बिरादरीके लोग हैं, जिनके साथ उनका सम्बन्ध टूटा नहीं है। वहाँ जाकर मिल आनेकी उनकी बराबर इच्छा रहती है। वहाँ जानेका सबसे बड़ा कारण अपने कुल-देवताकी पूजा है। जब तक वह हिन्दू हैं, तबतक अपने कुलदेवताके क्रोध या कृपाकी वह उपेक्षा नहीं कर सकते। चम्पो जबसे पैदा हुई थी, तबसे उसके माँ-बाप बिजनौर नहीं गये थे। कुलदेवताका उनके ऊपर ऋण था, कहीं देवताका धैर्य न टूट जाये। अबकी जाड़ामें चम्पोके माँ-बाप अपने सब बच्चोंके साथ बिजनौर गये। कुलदेवताकी पूजा की। भाईबन्दोंको शराबके साथ भोज दिया। लोगोंने नाचना-गाना किया। एक महीना बिताकर जब परिवार मधुपुरी लौटा, तो चम्पो नहीं थी। सामने होते ही मालिकने जब पूछा, तो जमादारिनने सिसक-सिसककर कहना शुरू किया—"चम्पो हमारी चली गई।

वह छोटी बीबीजीको बहुत याद करती थी। जिस दिन दोपहरको एक हिचकी आकर मेरी बच्ची सदाके लिए चुप हो गई, उस दिन बहुत जिद कर रही थी: मुझे मेरी सहेलीके पास ले चलो। मैं यहाँ नहीं रहूँगी।" इसी समय मालकिन भी आ गईं, वह अपने आँसुओंको रोक नहीं सकीं और कहने लगीं—"कैसी सुन्दर लड़की थी।"

—"हाँ बीबीजी। सब कहते थे, बड़े आदमी जैसी लड़की, वैसे ही बोलती भी थी।" चम्पोकी माँकी हिचकी बँध गई, आँचलसे उसने अपनी आँखोंको पोंछ लिया। मालकिनने सान्त्वना देनी चाही। भोलीभाली माँने करुण स्वरमें कहा—"मनको बहुत समझाना चाहती हूँ, लेकिन क्या करूँ, कलेजा फटने लगता है, जब मेरी चम्पो याद आती है। अब वह कभी नहीं दिखेगी, अब वह कभी छोटी बीबीजीके साथ नहीं खेलेगी।" चम्पोका खेलना तो पहले ही बन्द हो गया था। माँ-बापके सिरसे एकका बोझ कम हुआ, लेकिन अपने बच्चेको कौन बोझ समझता है?

२१. काठका साहब

(१)

मधुपुरी साहेबोंकी नगरी है। पहले इस पहाड़पर घना जंगल था। दो-तीन हजार फुट नीचे दो-चार पहाड़ी गाँव थे। वहाँके लोग वर्षाकालमें अपने पशुओंको चरानेके लिये इन टेढ़ी-मेढ़ी और एकाएक ऊँची हो गई पर्वत-श्रेणियोंपर आते थे। पुरीका आरम्भ किसी योजनाके अनुसार नहीं हुआ था। मध्य और पश्चिमी हिमालयको नेपालसे छीननेके बाद ईस्ट-इण्डिया कम्पनीने इसके महत्वको नहीं माना था। पर, कम्पनीके स्थानीय अफसर जानते थे, कि यहाँ पासहीमें इंगलैण्ड जैसा ठण्डा देश मौजूद है। वैयक्तिक तरीकेसे एक-दो साहेबोंने पहले अपने लिये लकड़ीके झोंपड़े यहाँ खड़े किये, जहाँ वह नीचेकी लूसे बचनेके लिये गर्मियोंमें आजाते थे। यह १८२० ई० की बात है। देखादेखी दूसरे साहेबोंको भी इसका महत्त्व मालूम हुआ, और फिर वह भी जहाँ-तहाँ उपयुक्त स्थान अपने लिये तैयार करने लगे। दस वर्ष बीतते-बीतते कम्पनीके अधिकारियोंको अपने कर्त्तव्यका ज्ञान आया, और उन्होंने सुव्यवस्थित रूपसे इस विलासपुरीको आगे बढ़ानेके बारेमें सोचना शुरू किया। यहाँ कम्पनीकी ओरसे एक अफसर नियुक्त कर दिया गया, जिसकी प्रभुता नगरके बढ़नेके साथ-साथ बढ़ती गई। १८५७ ई० के विद्रोहमें दक्षिण और देशी रियासतोंके बाद हिमालय ही अंग्रेजोंके लिये सबसे सुरक्षित स्थान था। उसके बाद कम्पनीकी जगह इंग्लैण्डकी रानीके नामसे शासन होने लगा। जहाँतक प्रबन्धका सम्बन्ध था, वह अब भी वैसा ही था। हाँ, १८ वीं सदीमें अंग्रेज हिन्दुस्तानमें अपनेको देवपुत्र नहीं समझते थे, और धनी तथा सामन्ती भारतीयोंके साथ समानताका बर्ताव करते थे। अब वह अपनेको साक्षात् स्वर्गसे आया समझते थे, इसीलिये काले आदमियोंको देखते ही उनकी तेवरी चढ़ जाती थी। वह बड़े-से-बड़े भारतीयको भी तुच्छ दृष्टिसे देखते थे, और उनके सामने सीधे ताकनेपर आदमी ठोकर खाये बिना नहीं रह सकता था।

कम्पनीके नौकर अंग्रेज नौकरशाह अपने क्षेत्रमें बादशाहसे किसी प्रकार भी अपनेको कम नहीं समझते थे। देशी लोगोंको उन्होंने ठोकर मार-मारकर सिखलाया, कि साहेबोंसे कैसा बर्ताव करना चाहिये। भारतमें रहते भी अंग्रेज जलमें कमलकी तरह निर्लेप रहते थे। देशियोंसे उनका कोई सम्पर्क नहीं था। १८ वीं सदीमें उन्हें हिन्दुस्तानी खानेमें रस आता था, पर अब उनकी कोशिश थी, कि विलायती चीजें ही उनके उपयोग में आवें। कुछ और समय बीता। अब भारतके शासनके लिये आई० सी० एस्० के फौलादी ढाँचेका जाल सभी जगह बिछा दिया गया। मधुपुरीमें इसी ढाँचेका कोई तरुण अब शासक बनकर आता था। १९ वीं सदीके तृतीय पादके बीतते-बीतते मधुपुरी बहुत कुछ आजकी शकलमें आगई थी। आदमी सीजनके समय बहुत होते, और बाकी समय भी थोड़े लोग यहाँ रहते थे। पहाड़के कितने ही गाँव भी मधुपुरीके साहेबके शासनमें थे। मुकदमा देखने और दूसरे कामोंके लिये वह नियुक्त किया जाता था। रोजके लिये काम न होनेसे वह हफ्तेमें एक बार यहाँ अपनी अदालत करने आता।

पहले जैसे-तैसे अंग्रेजको भी अफसर बनाकर भेज दिया जाता था। परन्तु, जब भारतीयोंमें भी कुछ नई चेतना फैलने लगी, उनमेंसे कुछ अंग्रेजी साहित्यको पढ़ने लगे, और जानने लगे, कि अंग्रेज भी हमारे जैसे ही आदमी हैं। ऐसी स्थितिमें अयोग्य अंग्रेज शासकको देखकर शासकोंके प्रति असम्मानका भाव पैदा हो सकता था। इसीलिये बहुत होनहार तरुण ढूँढ़-ढूँढ़कर इंग्लैण्डसे भारत भेजे जाने लगे—आई० सी० एस्० होकर आनेवाले इंग्लैण्डके साधारण तरुण नहीं होते थे। भारत आनेसे पहले उन्हें शासन करनेका सारा गुर सिखला दिया जाता। सन् ५७ को अच्छी तरह याद करानेके लिये झूठे-सच्चे उन स्थानोंको उन्हें दिखलाया जाता, जहाँपर अंग्रेज नर-नारियोंकी बड़ी क्रूरताके साथ हत्या की गई थी। अंग्रेजके शरीरमें भी अच्छे-बुरे सभी तरहके भाव उसी तरह होते हैं, जैसे दूसरोंके। कहीं वह मानवताका पाठ न पढ़ लें, इसलिये बड़े साहेब छोटे साहेबोंको देशी लोगोंसे अलग रहनेकी सीख देकर पक्काकर देते थे। जो भी हो, इन साहेबोंमें दो बड़े गुण थे : वह काम करने और काम लेनेकी क्षमता रखते थे, और समयकी पाबन्दी तो उनके खूनमें मिली-सी थी।

१० बजे कचहरी शुरू हो, ४ बजे वह बन्द होनी चाहिये, बीचमें १ बजे साहेब बहादुरको आध घण्टेके लिये लंच खानेकी छुट्टी मिलनी चाहिये। वह काम करनेके प्रत्येक दिनके साढ़े पाँच घण्टे बराबर अपने आफिस और अदालतमें बिताते थे।

मधुपुरीका बड़ा साहेब बनना बड़े सौभाग्यकी बात थी। उसे हिन्दुस्तानमें रहते इंगलैण्डका वातावरण मिलता था, अपनी जातिके ही चेहरे अधिकांश दिखाई पड़ते थे। जिलेमें कभी दो और कभी तीन अंग्रेज रहते, उतनेसे महफिल कहाँ जम सकती थी? और यहाँ हजारों गोरे और गोरियाँ सालके तीन महीने भरे रहते। उनके क्लब उसी तरहके नृत्य और गानसे मुखरित होते, जैसे लन्दनमें हैं। अवश्यकता और विलासकी सारी चीजें यहाँ उनके लिये मौजूद थीं। जब मधुपुरीमें मोटर नहीं पहुँची थी, तब बड़ा साहेब नीचेके शहरसे घोड़ेपर चढ़कर यहाँ ८ बजेसे पहले ही पहुँच कुछ हितमित्रोंसे मिलता, नये दोस्तोंको बनाता। यदि वह अविवाहित तरुण होता, तो उसके लिये यहाँ आये भारतके अपने वर्गके साहेबोंकी तरुण कन्यायें जयमाला लिये मौजूद थीं। नीचेके शहरोंमें साहेबोंने अपने चारों ओर कड़ी बाड़ लगा ली थी; चलने-बोलने-खाने-बातचीत करने-मिलने जुलने सबमें उनके क्षेत्र बहुत संकुचित थे, पर मधुपुरीमें आते ही उनके सारे बन्धन टूट जाते। उनके बन्धन-मुक्त असली रूपको काले लोग देख न लें, इसके लिये उन्होंने अपने क्षेत्रमें बेरा-खानसामा छोड़ दूसरे भारतीयोंका आना-जाना निषिद्ध कर दिया था। अपमान सबसे बुरी चीज है, लेकिन जब पीढ़ियोंसे आदमी उसका आदी हो जाता है, तो वह उसे स्वाभाविक-सा मालूम होने लगता है—अपमान करनेवालों और अपमान सहनेवालों दोनोंके लिये।

अंग्रेज महत्त्वपूर्ण पदोंपर अपने सुशिक्षित मध्य-वर्गके तरुणोंको ही रखते थे। सन् ५७ की तरह देशी पलटन कहीं बिगड़ न जाये, इसके लिये उन्हें पर्याप्त मात्रामें गोरे सैनिकोंको रखना पड़ता था, जो बड़े उजड्ड होते थे। नीचे उन्हें छावनियोंके भीतर ही बन्द रक्खा जाता था। मधुपुरीमें आकर उन्हें बहुत स्वतन्त्रता मिलती, जिसका दुरुपयोग वह भारतीयोंके साथ कैसे करते, यह अभी कलकी बात होनेसे उसे बहुतसे लोग जानते हैं। उनके निवासके

आसपासके लोग स्त्रियोंके लिये पूरी सावधानी रखते हुए भी बराबर डरते रहते, क्योंकि अंग्रेजोंका कानून उसके बनानेवालोंपर नहीं लागू होता था। मधुपुरीकी यही अवस्था प्रथम विश्वयुद्ध तक थी, और अंग्रेजोंके लिये यह स्वर्गपुरी और भारतीयोंके लिये अपमानपुरी बनी रही। हाँ, अपमानको सहनेके लिये तैयार कितने ही बनिये, ठेकेदार यहाँ होती सोनेकी वर्षामें हाथ मारनेमें पीछे नहीं रहते, और हजारोंकी तादादमें मजदूर तथा नौकर-चाकर मधुपुरीको कल्पवृक्ष समझते थे।

(२)

बड़े-बड़े युद्ध संसारमें हमेशा बड़े-बड़े परिवर्त्तन लाते हैं, लेकिन बीते युगोंमें विश्वयुद्ध नहीं होते थे। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धने एक देशमें नहीं बल्कि सारी दुनियामें नये युगोंका आरम्भ किया है। प्रथम विश्वयुद्धके बाद मोटरोंका प्रचार भारतमें जोरसे होने लगा, अंग्रेजोंके लिए इंगलैण्ड अब पृथिवीके छोरपर नहीं था। सभी सुख-सामग्रीके साथ सुसज्जित बड़े-बड़े जहाज उन्हें आरामसे एक ही महीनेके भीतर इंगलैण्ड पहुँचा देते थे। जब इंगलैण्ड छ महीनेके रास्तेपर था, और रास्तोंमें खतरे भी बहुत थे, उस समय अंग्रेजोंने अपने बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षाके लिए हिमालयकी विलासपुरियोंमें अपने विशेष स्कूल खोले थे। अब वह अपने लड़के-लड़कियोंको यहाँ रखनेके लिए मजबूर नहीं थे। ज्यादा छुट्टियोंके बितानेके लिए उन्हें तनखाह और सफर-खर्चके साथ इंगलैण्ड जानेकी छुट्टी मिलती, इसका भी प्रभाव विलासपुरियोंपर पड़ना जरूरी था। द्वितीय विश्वयुद्धने यदि अनाजको ४ सेरसे घटाकर एकदम २ सेर कर दिया, तो प्रथम विश्वयुद्धने भी उसी तरह हर चीजका दाम दूना बढ़ाकर मँहगाई फैला दी। भारतमें काम करनेवाले अंग्रेज नौकरशाहोंकी तनखाह लड़ाईके कारण हुई महँगाईके अनुरूप बढ़ चुकी थी, पर उन्होंने हल्ला मचाना शुरू किया, और इंगलैण्डके शासकोंको डर लगने लगा कि कहीं हमें नौकर मिलने कठिन न हो जायें। आई० सी० एस्०की परीक्षाओंमें प्रतिभाशाली अंग्रेज तरुण अब उतनी संख्यामें शामिल नहीं हो रहे थे, इससे भी उनका माथा ठनका। इसके लिए भारत-मन्त्रीने ली साहबकी अध्यक्षतामें एक कमीशन नियुक्त

किन्तु 'अन्धा बाँटे रेवड़ी' वाली बात हुई और ली-कमीशनका काम ली-लूटमें बदल गया। पहलेसे ही दुनियाके सभी देशोंसे अधिक वेतन पानेवाले आई० सी० एस्० नौकरशाहों और फौजी अफसरोंकी तनखाहें बहुत बढ़ी हुई थीं। ली-लूटसे केवल अंग्रेज नौकरोंको ही फायदा नहीं हुआ, बल्कि अब भारतीय भी आई० सी० एस्० और फौजी अफसर काफी संख्यामें होने लगे थे, जिन्हें भी ली-लूटसे पूरा फायदा उठानेका मौका मिला।

द्वितीय महायुद्धने आकर मधुपुरीको अन्तिम बार निहाल किया। पर, उसके समाप्त होते ही अंग्रेजोंको हसरत भरी निगाहसे भारत और उसमें बसाई अपनी विलासपुरियोंको देखते हुए यहाँसे बिदा होना पड़ा। फौलादी ढाँचेके हटते ही शासनकी इमारतके गिर पड़नेका डर था। कमसे कम गोरे प्रभुओंका स्थान लेनेवाले काले प्रभुओंकी यही धारणा थी। अगस्त ४७ से पहले सभी बड़े-बड़े कामोंको अंग्रेजोंने अपने हाथोंमें सँभाल रक्खा था, हिन्दुस्तानी आई० सी० एस्० भी यद्यपि अब काफी संख्यामें थे, लेकिन कितनी ही जगहोंपर उनके लिए 'प्रवेश निषिद्ध' था। एकाएक हजारोंकी तादादमें खाली हुई इन जगहोंको भरना था। जिस वक्त अंग्रेजोंका शासन था। उस वक्त हमारे नेता कड़ी नुक्ताचीनी करते कहा करते थे—"भारत दुनियामें सबसे गरीब देश है, यहाँकी प्रजाकी गाढ़ी कमाईपर इतने मँहगे नौकरोंका रखना सरासर अन्याय और अत्याचार है। अब ऐसा मौका मिला था, जब कि वह अपनी आलोचनाको कार्यरूपमें परिणत कर सकते थे। लेकिन, अगस्त-(१९४७ ई०) लूटने तो ली-लूटको भी मात कर दिया। तीन-तीन सौ रुपया महीने पानेवाले लोग एकदम डेढ़ और दो हजारवाले पदोंपर पहुँच गये। शामके डिप्टी साहब सबेरे कलक्टर साहब बन गये। इस लूटमें कोई-कोई अभागे भी रह गये, वह वही जो नये प्रभुओंके न भाई-भतीजे-भांजे थे, न हितमित्र, और न देखनेमें पुराने साहबों जैसे मालूम होते थे। यहाँ काम नहीं, सिर्फ चाम प्यारा था। योग्यता-अयोग्यताको थोड़ी देरके लिए ताकपर रख दिया गया था। अगस्तमें जो लूट शुरू हुई, वह अंग्रेजोंके रिक्त स्थानोंको भरने होके साथ नहीं खतम हो गई। अभी भी कितने ही पात्र छूट गये थे। योग्यताके अतिरिक्त दिल्लीके महादेवके शब्दोंमें "कुछ और गुण" भी उनमें मौजूद थे। गुणग्राहक न बनें,

यह कैसे हो सकता था ? हमारे महाप्रभुओंने पूर्व और पश्चिम दोनोंके दोषोंकी कदर करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया था। अंग्रेज खानदानी लाट भी उनके बराबर दरबार रचानेवाले नहीं थे। अब जिलेके अफसर और नेतासे लेकर प्रान्त और दिल्ली तकके देवताओंकी पंचोपचारसे पूजा होने लगी, आरती उतरने लगी। योग्यताके अतिरिक्त और भी जिस गुणकी अनिवार्यतया अवश्यकता थी, उसे भी लोग सीखने लगे। सिर्फ अगस्त-लूटके साहेब ही नहीं, बल्कि पुराने काले आई० सी० एसों० ने भी देख लिया, कि यदि आगे बढ़ना है, तो उस "कुछ गुण" को भी सीखना जरूरी है। वह अब टोपी उतार-कर सलाम करनेकी जगह पलँगपर लेटे या आराम कुर्सीपर बैठे मन्त्री और महामन्त्रीके चरण छू कर प्रणाम करने लगे। भारतीय शिष्टाचार वह भूल गये थे, लेकिन, सुबहका भूला यदि शामको घर आ जाये, तो उसे भूला नहीं कहना चाहिये। अफसरोंको अब अपने सरकारी कामसे भी अधिक नये देवताओंकी पूजा खुशामद करना जरूरी था। यदि अपना काम छोड़कर अपने इस परम कर्त्तव्यका पालन करनेके लिये वह प्रान्त या देशकी राजधानीमें चले जायें, तो इसकी कोई खोज-खबर लेनेवाला नहीं था। हर दण्डको व्यर्थ करनेवाले हथियार तैयार दो गये थे, सरकारी कायदा-कानूनेमें काफी गुंजाइश थी। अगस्त-लूटको पर्याप्त न समझकर उसकी अवधि और क्षेत्रको और अधिक बढ़ाया गया। जिन जिलोंमें पहले चार-पाँच बड़ी तनखाह पानेवाले गजेटेड आफिसरोंसे काम चल जाता था, वहाँ अब वह तिगुने हो गये। यदि उसीके अनुरूप नीचेके कर्मचारियोंकी वृद्धि नहीं हुई, तो नये साहेबोंको दस्तखत करने-के लिये कागज-पत्र कहाँसे मिलते ? इसलिये क्लर्कोंकी भी संख्या पंचगुनी कर दी गई। यह काम कोई अन्धेरेमें नहीं हुआ, स्वयं दिल्लीसे वहाँके महादेवने इसे शुरू किया। अखण्ड भारतमें अंग्रेजोंका शासन सबसे बड़ी तनखाह पानेवाले नौ सेक्रेटरियोंसे अच्छी तरह चलता था, नये महाप्रभुने उनकी संख्या २२ कर दी। पहलेके नेताओंके हाथमें शासन आते ही दुनियाका सबसे गरीब देश पलक मारते-मारते सबसे धनी देश बन गया, और लोगोंके घरोंमें न समाने वाली लक्ष्मीको दोनों हाथोंसे लुटाया जाने लगा, सो भी इस तरह, जिसमें वह अपनों हीके हाथोंमें पड़े।

(३)

मधुपुरीमें भी इस परिवर्तनका प्रभाव पड़ा। पुराने बड़े साहबकी जगह नये बड़े साहब आये, जिनके रंगमें फर्क जरूर है, लेकिन तनखाहमें कोई फर्क नहीं, जिनकी योग्यतामें कमी जरूर है, किन्तु रोबमें नहीं। यह भी पुराने साहबोंकी तरह ही जनतासे अलग रहना पसन्द करते हैं। चमड़ेके भ्रमसे अगर कोई आदमी उनके समीप जानेकी कोशिश करता है, तो पास पहुँचते ही उनकी आँखोंसे वह प्रचण्ड बिजलीकी करंट निकलती है, जिसके कारण आदमी को औंधे मुँह गिरनेकी नौबत आती है। यदि आँखोंको उसने नहीं देखा, तो फिर रूखे मुँहसे दो-चार बातें सुननी पड़ेंगी। अपने रोबको कायम रखनेमें आजके साहेब पहलेके अपने पूर्वजोंसे कहीं अधिक बढ़-चढ़कर हैं। अंग्रेज गये, लेकिन हमारे साहेबको मालूम है, कि शासन करनेका सबसे अच्छा ढंग वही अंग्रेजोंका ही था। दिल्लीके देवताओंने गला दबानेपर ही अंग्रेजीके स्थानपर हिन्दीको रखना मंजूर किया, पर इसकी बात १५ वर्ष बाद ही की जा सकती है। १९६५ ई० से पहले हिन्दीका उनके सामने नाम लेना अक्षंतव्य अपराध है। जब हिन्दी आयेगी, तब भी अंग्रेजीके अंक तबतक भारतवर्षमें चलते रहेंगे, जबतक कि महाप्रलय इस दुनियाको खतम नहीं कर देगी। उनके जनता और हिन्दी-प्रेमका ही उदाहरण है, जिन रियासतोंमें हिन्दी पहले सरकारी भाषा थी, अब वहाँसे उसे धत्ता बता दिया गया है, वहाँके जिला तथा प्रदेशके आफिसोंमें अंग्रेजीके टाइपिस्ट और स्टेनोग्राफर भरती किये गये हैं। कौन कहता है शासन जनताके लिये नहीं है? नौकरशाह अपनी सुविधाके लिये हिन्दीकी जगह अंग्रेजी नहीं स्थापित करवा रहे हैं, बल्कि वह चाहते हैं, कि सारी जनताको दुनियाकी सबसे उन्नत और एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय भाषाको घोलकर एक दिनमें पिला दें। मधुपुरीके नये साहब भी हिन्दीके बारेमें अपने प्रदेशके महामन्त्रीकी बातको माननेके लिये तैयार नहीं हैं। वह जानते हैं, कि हमारे महामन्त्री ऊपरके मनसे ही हिन्दीकी हिमायत करते हैं, वोटरोंको हाथमें रखना भी आखिर जरूरी है। वह भली प्रकार जानते हैं, कि यदि महामन्त्री हिन्दीको रखना चाहते, तो आफिसोंसे पहले अंग्रेजी टाइपराइटरोंको हटवाते, अंग्रेजी स्टेनोग्राफरोंको हिन्दी शीघ्रलिपि सीखनेके लिये मजबूर करते, कर्मचारियोंको हिन्दी सीखनेकी मियादको बराबर बढ़ाते नहीं जाते।

मधुपुरीके साहब कुछ बातोंमें वस्तुतः राजा हैं। उनकी आन-बान और ठाठ-बाटमें अपने पूर्वाधिकारियोंका खूब प्रभाव है। वह बढ़ियाँ अंग्रेजी सूट पहनते हैं, सिरपर सबसे अच्छी फैल्टहैट लगाते हैं। शरीर मोटा न होनेसे छरहरे जवानसे मालूम होते हैं, जिसमें रोजकी हजामत भी कम सहायता नहीं करती। हिन्दी बोलनेमें उन्हें कठिनाई मालूम होती है, और अंग्रेजीको इतना जीभ तोड़कर बोलते हैं, कि मालूम होता है, उनका जन्म इस देशमें नहीं हुआ था। घरके ही भेदिया चारों तरफ हैं, नहीं तो यह भी कहा जा सकता था, कि साहब बहादुरने आक्सफार्डमें अपनी पढ़ाई खतम की, इसीलिये वहींका एक्सेन्ट उनके मुँहपर चढ़ गया है। ऐसे पुरुषसे यह आशा कैसे हो सकती है, कि वह अपने दफ्तरमें हिन्दीको फूटी आँखों भी देख सकेगा। उन्हें न हिन्दीसे कोई वास्ता है, न इस देशकी साधारण जनतासे। वह तो अपने इस गद्दीपर बैठनेवाले पहलेके साहेबोंका ही पूरा अनुसरण करना चाहते हैं।

(४)

मधुपुरी अब वह पुरानी पुरी नहीं रही, तो भी यहाँ इंगलैण्ड हीं नहीं और दूसरे पश्चिमी देशोंके दूतावासोंके स्त्री-पुरुष सैकड़ोंकी संख्यामें आते हैं। उनके आनेसे मधुपुरीको लाभ है, कहनेकी अवश्यकता नहीं। दूसरे देश सैलानियोंको अधिक संख्यामें अपनी ओर खींचनेके लिये विज्ञापनपर लाखों रुपये खर्च कर देते हैं। यह तो साधारण बुद्धि भी कह सकती है, कि मधुपुरीके लिये किसी दूसरे तरहके बड़े साहेबकी अवश्यकता है। यहाँपर जो पहले साहेब थे, वह कुछ पुराने ढंगके वेष-भूषामें पिछड़े हुये थे। लोगोंसे मिलते वक्त उन्हें ख्याल नहीं होता था, कि हम किसकी गद्दीपर बैठे हैं। उनसे यहाँका कोई आदमी असंतुष्ट नहीं था। गोरे विदेशी भी उनकी तारीफ करते थे। लेकिन ऐसा आदमी मधुपुरीका शासक कैसे बना रह सकता है? इसीलिये ऊपरके महाप्रभुओंने अबके मधुपुरीमें बिल्कुल उसके अनुरूप आदमीको भेजा। रंग छोड़कर सभी बातोंमें वह पहलेके गोरे साहेबोंके ढाँचेमें ढले हुए हैं। लेकिन, सभी बातोंसे मतलब यह नहीं, कि सभी गुणोंमें भी। पहलेके साहेब वक्तकी पाबन्दी न करनेको महापाप समझते थे। वह इस पाबन्दीके फेरमें इतने रहते थे, कि अपने आरामके समयमेंसे भी काटकर उसमें खर्च

करते थे। आजके साहेबबहादुर पहलेके साहेबोंकी तरह ही हफ्तेमें एक दिन मधुपुरी पहुँचते हैं। कचहरीका समय १० बजेसे शुरू होता है, और लोगोंके पास जो समन जाता है, उसमें लिखा रहता है, कि यदि वक्तपर नहीं पहुँचे, तो मुकदमेका फैसला एकतरफा कर दिया जायेगा। लेकिन, वह स्वयं शायद ही कभी १२ बजेसे पहले मधुपुरीमें पहुँचते हैं। पहुँचकर भी कारपर चढ़कर आये साहेबबहादुरको थोड़ी देर अपने सैलूनमें विश्राम करनेके लिए चाहिए। चकवेकी तरह ललायित लोग उनके चन्द्रमुखको देखनेसे बंचित हो जाते हैं। १ बजे यदि वह इजलासकी कुर्सीपर बैठ जायें, तो बड़ा भाग्य समझिए। लंचके वक्त फिर थोड़ी देरके लिए कचहरी बन्द कर दी जाती है। तीन घंटे इन्तजार करनेवाले लोग अपने भोजनसे वंचित भले हो जायँ, यदि उन्होंने १० बजेसे पहले ही भोजन नहीं कर लिया है, लेकिन, साहेब कैसे पुरानी परिपाटीको छोड़ सकते हैं? लंचके बाद ४ बजे शामतक साहेब जरूर ही अपनी कुर्सीपर बैठे रहें, यह कोई जरूरी नहीं है। वह इससे पहले भी उठ सकते हैं। नियम दूसरोंके लिए बनाये गये हैं, मधुपुरीके सर्वेसर्वा साहेब बहादुर उसके पाबन्द नहीं है।

वक्तकी पाबन्दीमें ही हमारे बड़े साहेब पहलेके गोरे साहबोंसे बिल्कुल उलटे नहीं हैं, बल्कि कार्य-क्षमतामें भी उनका अपने पूर्वाधिकारियोंसे छत्तीसका सम्बन्ध है। अब भी पुराने क्लर्क कुछ मौजूद हैं, इसलिये गाड़ी किसी तरहसे चली जा रही है, नहीं तो वह किसी वक्त भी दलदलमें फँस सकती है। हमारे साहेब लेकिन एक बातमें अपने राष्ट्रीय भावोंका पूरा सबूत देते हैं। चाहे देशी हो, या युरोपीय, कोई किसी कामसे उनके यहाँ पहुँच जाये, तो पहलेके साहेबोंकी तरह दो नजरसे नहीं देखते हैं, और उसे इस बातके अनुभव करनेके लिये बाध्य करते हैं, कि वह किसी शासकके सामने खड़ा है। गौरांग साहब किसी दूसरे गौरांगको इजलासमें आनेपर हो नहीं सकता था, कि उसे कुर्सी न दिलवाये, परन्तु हमारे साहेब उनको भी वहाँ खड़े रहनेके लिये मजबूर करते हैं, जिनकी दिल्लीके देवता आरती उतारते हैं, और आशा रखते हैं, कि यदि वह प्रसन्न हो जायें, तो हमारे देशके ऊपर भी डालरोंकी वर्षा होने लगे।

है न यह काठके साहब?